121

3349

सन्मार्ग

वेदविशेषांक

ऋग्वेदः श्वेतवर्णः
स्याद्द्विभुजो रासभाननः

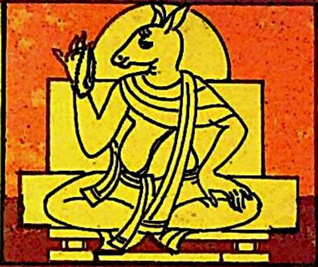

अक्षमालाधरः सौम्यः
प्रीतो व्याख्यापधोद्यतः

अजास्यः पीतवर्णः
स्याद्यजुर्वेदोऽक्षसूत्रधृत्

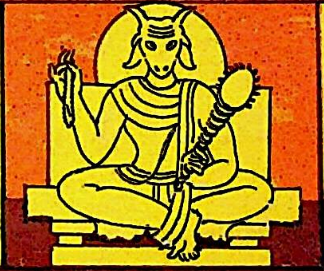

वामे कुलिशपाणिस्तु
भूतिदो मङ्गलप्रदः

नीलोत्पलदलाभासः
सामवेदो हयाननः

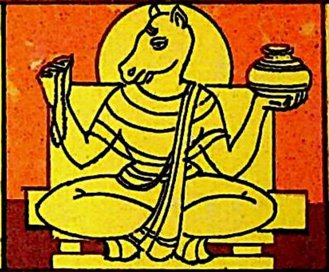

अक्षमालान्वितो दक्षे
वामे कुम्भधरः स्मृतः

अथर्वणाभिधो वेदो
धवलो मर्कटाननः

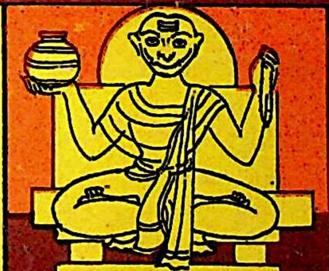

अक्षमालान्वितो वामे
दक्षे कुम्भधरः स्मृतः

अनन्ता वै वेदाः

॥ श्रीहरिः ॥

७५ वीं पुण्य वर्षगाँठ पर

धर्मावतार पूज्य गुरुदेव अनन्तश्री विभूषित

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के

श्री चरणों में

सम्पूर्ण परिवार का शत-शत साष्टांग प्रणाम

—लक्ष्मी नारायण डंग

“ा”, ७७, निपसी रोड, पेटिट हाल, बम्बई

वर्ग संख्या.................. प्राप्ति-संख्या..................
ग्रन्थ-कार्ड
श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान
ग्रन्थागार
नरिया, वाराणसी-५
ग्रन्थ नाम सन्मार्ग वेद विशेषांक
लेखक नन्दनन्दनानन्द सरस्वती

लेनेवाले का नाम	देनेकी तिथि	लेनेवालेका हस्ताक्षर	लौटानेकी तिथि

क्तित्व के लिए

ैव

टकस”

ग पहनिए

सटाइल्स

म्बई—४०० ००२

२०१

सटाइल्स

दादर (बम्बई)

॥ श्री हरिः ॥

अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज

की

७५ वीं वर्षग्रन्थि पर प्रस्तुत

3349

सन्मार्ग

वेद विशेषांक

वाराणसी, रविवार, श्रावण शुक्ल द्वितीया, संवत् २०३८ वि०, २ अगस्त, १९८१ ई०

प्रधान सम्पादक

स्वामी श्रीनन्दनन्दनानन्द सरस्वती

इस अंक के सम्पादक

डॉ० रेवा प्रसाद द्विवेदी

डॉ० कमलेशदत्त त्रिपाठी

प्रबंध संपादक

गोपाल पाण्डेय

संपादकीय कार्यालय
'सन्मार्ग' दैनिक
गोलघर, वाराणसी
पो० बा० १२८, फोन : ६३५२०

मूल्य : ८ रु०

प्रबंधकीय कार्यालय
'सन्मार्ग' दैनिक
तुलसी मंदिर, तुलसीघाट, वाराणसी
फोन : ६३४५८

श्री हरिः

धर्म की जय हो अधर्म का नाश हो

प्राणियों में सद्भावना हो विश्व का कल्याण हो

गो हत्या बन्द हो गोमाता की जय हो

卐

हर हर महादेव

प्रकाशक

महंत वीरभद्र मिश्र

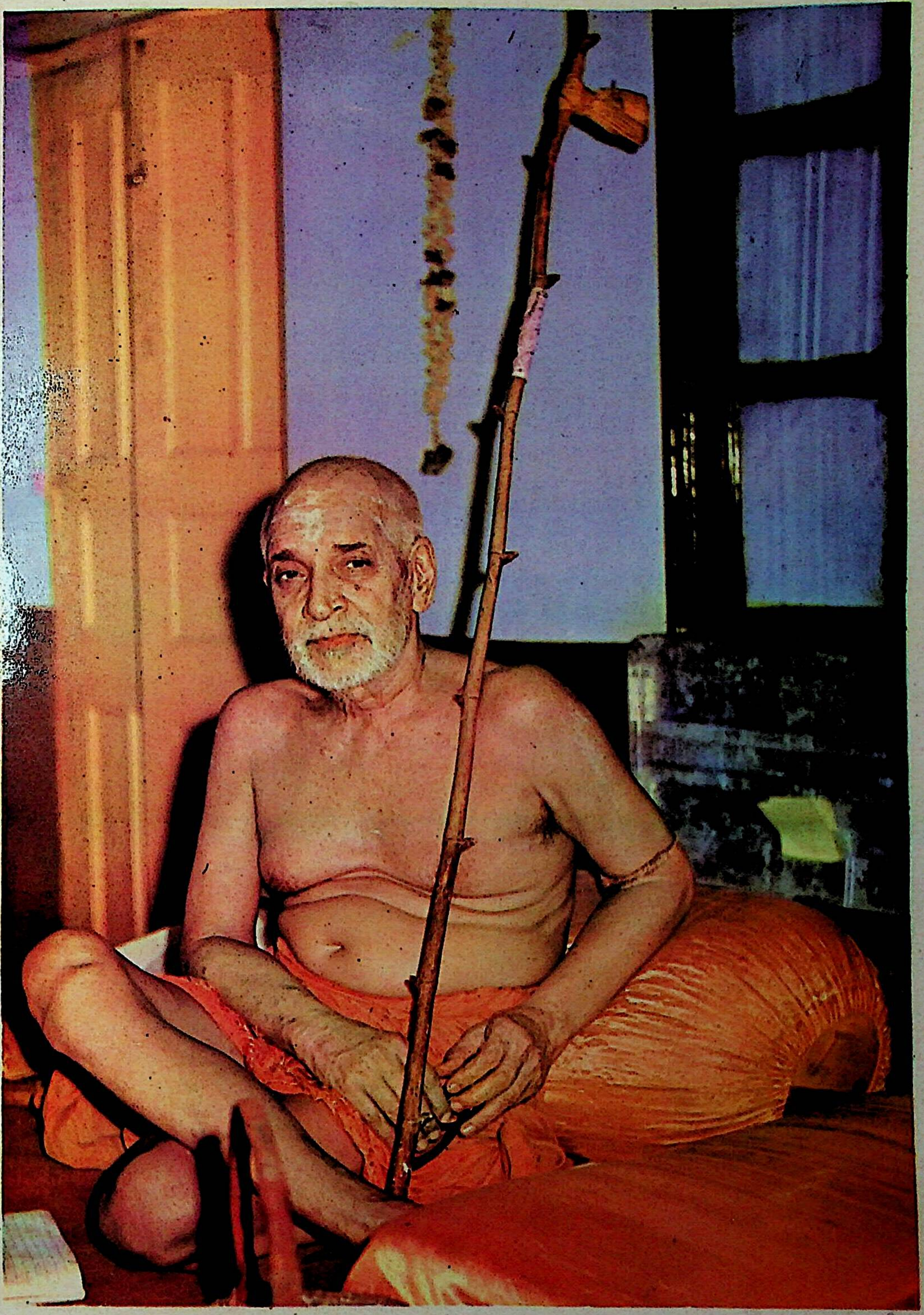

धर्मसम्राट् परमपूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

3374

सन्मार्ग

वेद विशेषांक

वर्ष : ३६] [अंक : १९२

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः

सरणी

रंगीन चित्र--परमपूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज
रंगीन चित्र—जगद्गुरु शंकराचार्यजी (पुरीपीठाधीश्वर)

क्र० सं०			पृष्ठ संख्या
१.	शुभकामना	अनंत श्री विभूषित जगत् गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्री निरंजनदेव तीर्थ जी महाराज	२५
२.	समस्त वेद का प्रामाण्य	अनन्त श्री विभूषित स्वामी करपात्रीजी महाराज	२६–३३
३.	औपनिषद विद्या रहस्य	अनन्त श्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज	३५–३६
४.	वेद की प्रामाणिकता	स्वामी सीताराम शरणजी महाराज	३७–३९
५.	वेदों में इतिहास के तत्व	म० म० स्व० श्री पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी (अनुवादक डा० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी)	४१–४३
६.	वेदाध्ययन श्रौतकर्मणां स्वरूप विवरणम्	पं० श्री पट्टाभिराम शास्त्री, विद्यासागर :	४५–५१
७.	ब्राह्मण श्रुति का अविभाज्य अंग	आचार्य बलदेव उपाध्याय	५३–५९
८.	वेदसारस्वरूपिणी श्रीमद्भगवद्गीता	आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र	६१–६३
९.	वेद के अनुसार दुःख की निवृत्ति का उपाय	श्री स्वामी विपिनचन्द्रानन्द सरस्वती "जजस्वामी'	६५–६७
१०.	वेदों की अपौरुषेयता, अनादिता	पं० केदारनाथ त्रिपाठी	६९–७३
११.	वेद का संक्षिप्त परिचय	आचार्य आनन्द झा	७५
१२.	वेद और परवर्ती भक्ति परम्परा	प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी	७७–८१
१३.	वेद और तान्त्रिक तत्त्व	डा० सदाशिव अम्बादास डांगे	८३–८७
१४.	आचार्य सायण और पाश्चात्य वेदव्याख्याकार	डा० व्रजबिहारी चौबे	८९–१०३

क्र० सं०			पृष्ठ संख्या
१५.	अनन्ता वै वेदा :	डा० मुरलीधर पाण्डेय	१०५–१०८
१६.	अग्न्याधान : एक मूलभूत यज्ञ प्रक्रिया	श्री हरिगोविन्द रानडे	१०९–१११
१७.	जनसाधारण के वेद–इतिहास और पुराण	दण्डी स्वामी शुकदेवजी	११२
१८.	वैदिक तथा वैष्णवागमिक आराधना–पारस्परिक संबन्ध	डा० राघवप्रसाद चौधरी	११३–११६
१९.	गायत्री मन्त्र तत्त्व विमर्श	डा० परमहंस मिश्र	११७–११९
२०.	वैदिक कर्म सिद्धान्त	श्री आत्म चैतन्य ब्रह्मचारी	१२०
२१.	ओंकारोपासना	डा० चाँदप्रकाश मेहरा	१२१–१२६
२२.	वेदस्वरूप	डा० युगलकिशोर मिश्र	१२७–१३३
२३.	वैदिक शिक्षा व्यवस्था एवम् उपनयन	श्री श्रीकिशोर मिश्र	१३५–१४३
२४.	भारत भूमि और गायत्री मन्त्र	चक्रवर्ती रामाधीन चतुर्वेदी	१४५–१४७
२५.	वेदों में श्रीरामचरित्र	श्री अवधबिहारी उपाध्याय 'व्यास'	१४८–१५१
२६.	ऋग्वेद में रामदूत श्रीहनुमान	श्रीअर्जुन पाण्डेय	१५२–१५५
२७.	वेद के मन्त्र भाग में श्रद्धा–उपासना-भक्ति की अवधारणा	श्री रामप्रभा ओझा	१५६–१६४
२८.	वैदिक साहित्य में सभा–समिति	श्री कौशल किशोर मिश्र	१६५–१६९
२९.	वेदों में अवतार कथाएँ	श्री गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी	१७१–१७३
३०.	भारत में वैदिक शासन प्रणाली	पं० नन्दकिशोर शर्मा शास्त्री	१७४–१७५
३१.	वैदिक धर्म का स्वरूप	श्री स्वामी वेदान्तीजी महाराज	१७७–१८३
३२.	श्रीचरण में नमन	डा० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी	१८५–१८६

आवरण—श्री वासुदेव स्मार्त

विज्ञापन दाताओं की सूची

क्र० सं०		पृष्ठ संख्या
१.	शालीमारटेक्सटाइल्स, वम्बई (आवरणपृष्ठ द्वितीय)	
२.	प्रभात जेनरल एजेन्सी, वंबई („ „ तृतीय)	
३.	उत्कल आटोमोबाइल्स लि०, जमशेदपुर („ „ चतुर्थ)	
४.	सन् डिष्ट्रीब्यूटर्स एण्ड माइनिंग कं० लि०, कलकत्ता	९
५.	राजधानी पेपर एण्ड वोर्ड इण्डष्ट्रीज, दिल्ली	१०
६.	जुगलकिशोर डंग, दिल्ली	११
७.	श्री राधाकृष्ण टेक्सटाइल मिल, वंबई	१२
८.	श्री राधे ट्रेडिङ्ग कारपोरेशन, वंबई	१३
९.	एन० एम० व्यास, इन्दौर	१४
१०.	मिलाप फेब्रिक्स, वालोत्तरा (राज०)	१४
११.	काशी ज्वेलर्स, कानपुर	१४
१२.	सुशील कुमार लोयलका, वंबई	१५
१३.	सोमेश्वर सिल्क मिल, वंबई	१६
१४.	जगदीश नारायण शोभनारायण, कानपुर	१७
१५.	घनश्यामदास शिवकुमार, कानपुर	१७
१६.	पायोनियर टेक्सटाइल्स, कानपुर	१८
१७.	पुष्पावती नायर एवं राजरानी कपूर, बंबई	१८
१८.	पारिख एण्ड संस, कानपुर	१९
१९.	अवध उड प्राडक्ट्स, कानपुर	१९
२०.	श्री रामलीला सोसाइटी, कानपुर	२०
२१.	जगन्नाथ अग्रवाल एण्ड संस, कानपुर	२०
२२.	आर० एस० भगत एण्ड कं० (प्रा०) लि०, कानपुर	२१
२३.	स्वदेशी पोलिटेक्स लि०, गाजियावाद	२२
२४.	लॉयन के० एल० इण्टरप्राइजेज आफ् इंडिया, वंबई	२३
२५.	पं० नन्दकिशोर शर्मा एवं पं० वाबूलाल शर्मा, विदिशा	२४
२६.	होटल ब्ल्यू डायमण्ड, वोकारो स्टील सिटी	२४
२७.	हरिनारायण एण्ड कंपनी, त्रिपाठी पेट्रोल सप्लाई एण्ड सर्विस, वोकारो	२४
२८.	शिवदुलारे वाजपेयी एण्ड सन्स, कानपुर	३४
२९.	हिरन टोबैको फैक्ट्री, उन्नाव	३८
३०.	होटल वैशाली, कानपुर	३८
३१.	भगतराम जयनारायण ज्वेलर्स, कानपुर	३८
३२.	सर्वोदय पेपर मिल्स लिमिटेड, नई दिल्ली	४०
३३.	जीवनराम दुर्गाप्रसाद, अवोहर (पंजाब)	४०
३४.	डालमिया सिमेंट (भारत) लिमिटेड, डालमियापुरम्	४२
३५.	कैप्स्टन मीटर्स (इंडिया) लिमिटेड, जयपुर	४४
३६.	नोवा कोला, जय ड्रिंक्स प्रा० लि०, नई दिल्ली.	४४
३७.	अग्रसेन इंजीनियरिंग वर्क्स, रायपुर (म० प्र०)	४६
३८.	चुन्नीलाल जयपुरिया, नई दिल्ली	४८
३९.	अमरनाथ अशोक कुमार प्रा० लि०, नई दिल्ली	५०
४०.	मुरारी इंजीनियरिंग वर्क्स, लुधियाना	५२
४१.	सूरजमल शोरीलाल, अमृतसर	५४
४२.	वाल्द गौम आटो इण्डष्ट्रीज प्रा० लि०, जोधपुर	५६
४३.	हिन्दुस्तान रेडिएटर्स कंपनी, जोधपुर	५६
४४.	मेसर्स सुन्दरलाल डागा, वीकानेर	५८
४५.	रामलाल भगवानदास वजाज, अवोहर (पंजाव)	६०
४६.	गुलावचन्द गिरधारीलाल, अवोहर (पंजाव)	६०
४७.	राठी ब्रदर्स, सिरसा (हरियाणा)	६२
४८.	मे० भूरामल अनिलकुमार, श्रीगंगानगर, (राज०)	६२
४९.	सेन्ट्रल आटोमोवाइल्स, रायपुर	६४
५०.	एलाइड ट्रेडर्स, रायपुर	६६
५१.	स्वस्तिक इन्टरप्राइजेज, रायपुर	६८
५२.	श्री शारदा ट्रेडर्स, फाजिल्का (पंजाव)	७०
५३.	श्री भारत इंडष्ट्रीज, नई दिल्ली	७०
५४.	भागीरथ मुथा एण्ड कम्पनी, दिल्ली	७२
५५.	हीरो साइकिल्स प्रा० लि०, लुधियाना	७४
५६.	वंशीलाल जयनारायण, वीकानेर	७६
५७.	जैसलमेरिया हैण्डलूम, जोधपुर	७८
५८.	महेशकुमार दिनेशकुमार, वीकानेर	७८
५९.	धर्मसंघ परिवार, अकोला, विदर्भ	८०
६०.	रतनलाल शर्मा	८०
६१.	हरकरणदास मांगीलाल, चाइवासा	८०
६२.	अनंतराम लक्ष्मणदास अग्रवाल, दिल्ली	८२
६३.	लच्छीराम देवीप्रसाद, दिल्ली	८४
६४.	ग्रेटर राजस्थान इलेक्ट्रिक ट्रेडिंग कं०, वीकानेर	८४
६५.	उड़िसा सिमेंट लिमिटेड, राजगंगपुर	८६
६६.	श्रीनिवास कॉटन मिल्स लि०, वंबई	८८
६७.	मेसर्स मोहन इण्डष्ट्री, राजपुरा	९०
६८.	भार्गवभूषण प्रेस, वाराणसी	९२
६९.	नेलिमारला जूट मिल्स कं० लि०, कलकत्ता	९४
७०.	रामप्रसाद सर्राफ, कलकत्ता	९६

क्र० सं०		पृष्ठ संख्या
७१.	इमेको प्रा० लि०, कलकत्ता	९६
७२.	श्री भाग्यलक्ष्मी साड़ी इंपोरियम, कलकत्ता	९८
७३.	नारायणदास नरसिंहदास एण्ड संस, कलकत्ता	९८
७४.	वोवेरिया काटन मिल्स कं० लि०, कलकत्ता	१००
७५.	रतनलाल सुरेका, मानस मंदिर, वाराणसी	१०२
७६.	मेसर्स श्यामसुन्दर डालमिया, कलकत्ता	१०४
७७.	एच० डी० दवे, जमशेदपुर	१०४
७८.	वंशीधर कलानी एण्ड संस, अबोहर (पंजाब)	१०६
७९.	दीनदयाल पुरुषोत्तमलाल, सिरसा (हरियाणा)	१०६
८०.	किशनलाल रामसरूप, सिरसा (हरियाणा)	१०६
८१.	दौलतराम चाननराम, सिरसा (हरियाणा)	१०६
८२.	सेठ नन्दलाल चैरिटेबल ट्रष्ट, सिरसा	११०
८३.	लच्छीराम जसरासरिया, सिरसा	११०
८४.	एम० एम० पटेल शॉ मिल, रायपुर	११४
८५.	गिरनार रेष्टोरां, रायपुर	११४
८६.	मेसर्स डी० एण्ड जे० कन्स्ट्रक्शन, रायपुर	११८
८७.	जय अंबिका टिम्बर मार्ट, रायपुर	११८
८८.	मेसर्स रमानी टिम्बर मार्ट, रायपुर	११८
८९.	किसान खाद भण्डार, रायपुर	११८
९०.	सोसाइटी ज्वेलर्स, कानपुर	१२४
९१.	एलजे इंडस्ट्रीज, दिल्ली	१२४
९२.	लक्ष्मणप्रसाद बालकृष्ण, कानपुर	१२८
९३.	रामनाथ कृष्णगोपाल, कानपुर	१२८
९४.	जयप्रकाश प्रमोदकुमार, कानपुर	१२८
९५.	लड्ढा एजेंसीज़, विदिशा	१२८
९६.	छेदीलाल मालाकार, वाराणसी	१३०
९७.	टूरिष्ट बस सर्विस: वाराणसी	१३०
९८.	हम्बर साइकिल मार्ट, वाराणसी	१३४
९९.	राधेश्याम पेपर स्टोर्स, वाराणसी	१३४
१००.	जी० पी० पोद्दार ब्रदर्स, चास (धनबाद)	१३६
१०१.	श्रीराम जगन्नाथ, वाराणसी	१३६
१०२.	रामदेव मदनलाल, कलकत्ता	१३६
१०३.	अग्निहोत्री ब्रदर्स, कानपुर	१३८
१०४.	कश्यप इंडस्ट्रीज, कानपुर	१३८
१०५.	नारायणप्रसाद फूलचन्द, कानपुर	१३८
१०६.	देवकुमार जैन, कानपुर	१३८
१०७.	मेसर्स मुरलीधर शंकरलाल, विदिशा	१४२
१०८.	धर्माधिकारी मंडल, विदिशा	१४२
१०९.	मुरारीलाल नारायणप्रसाद सर्राफ, कानपुर	१४२
११०.	होटल मधुवन, कानपुर	१४२
१११.	महादेव हंसनाथ मिश्रा एण्ड कं०, बंबई	१४४
११२.	मेसर्स धामाजी मानाजी मेहेर, बंबई	१४४
११३.	मूलचन्द हनुमानप्रसाद, नोहर (राज०)	१४६
११४.	गोपीराम हजारीमल, नोहर (राज०)	१४६
११५.	शिवकुमार हिसारिया एण्ड संस, हनुमानगढ़ जंक्शन	१४६
११६.	सराफ पेपर मिल्स लि०, अलवर	१४६
११७.	इस्डेक् इंडिया प्रा० लि०, कलकत्ता	१५०
११८.	मेसर्स इण्डोस्कैप, जमशेदपुर	१५०
११९.	ईस्टर्न कास्टिंग्स (प्रा०) लि०, बोकारो	१५४
१२०.	मोतीलाल अग्रवाल, बनवारीलाल अग्रवाल, चास	१५४
१२१.	श्री झँवर एण्ड कम्पनी, कलकत्ता	१५८
१२२.	कृष्णदास राधिकारंजन, वाराणसी	१६०
१२३.	कल्पतरु, वाराणसी	१६०
१२४.	सुधा सिन्धु, सुखसंचार कंपनी, मथुरा	१६२
१२५.	प्रकाश टेक्सटाइल्स, हाथरस	१६२
१२६.	महात्मा होजरी, वाराणसी	१६२
१२७.	सूर्य इलेक्ट्रिक कंष्ट्रक्शन, वाराणसी	१६२
१२८.	रत्तिराम किशनस्वरूप, गुड़गाँव (हरियाणा)	१६६
१२९.	लक्ष्मी ट्रेडिंग कम्पनी, सिरसा (हरियाणा)	१६६
१३०.	मेसर्स मुसद्दीलाल मदनलाल, सिरसा	१६६
१३१.	हंसराज बाबूलाल, सिरसा	१६६
१३२.	बिहारीलाल द्वारकादास लीला, श्रीगंगानगर	१७०
१३३.	लीला ट्रेडिङ्ग कं०, श्रीगंगानगर	१७०
१३४.	ओमप्रकाश सुरेन्द्रकुमार, नोहर	१७०
१३५.	कपिल प्लाइवुड कम्पनी, दिल्ली	१७०
१३६.	सागरमल राजकुमार, रायपुर	१७२
१३७.	गोविन्दराम गनेशराम, रायपुर	१७२
१३८.	मेसर्स हरीशकुमार गांधी, रायपुर	१७२
१३९.	मोहनलाल गांधी, रायपुर	१७२
१४०.	मेसर्स महावीर ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन, रायपुर	१७६
१४१.	श्रीगुलाबचंद राजमल अग्रवाल सर्राफ, विदिशा	१७६
१४२.	श्री विद्यापीठ व्यवस्था समिति, भोपाल	१७६
१४३.	श्री आत्मानन्दजी , विदिशा	१७६
१४४.	रमा इंडस्ट्रीज, जोधपुर	१७८
१४५.	लीला टेक्सटाइल्स, जोधपुर	१७८
१४६.	अग्रवाल लॉज, जोधपुर	१७८
१४७.	हिसारिया ब्रदर्स, हनुमानगढ़ जंक्शन	१७८
१४८.	घेरूलाल बालचन्द शारदा, भटिण्डा	१८०
१४९.	गोपाल ब्रदर्स, श्रीगंगानगर	१८०
१५०.	दिवाकर औषधालय, श्रीगंगानगर	१८०
१५१.	विनोद एण्ड कम्पनी, श्रीगंगानगर	१८०
१५२.	रामचंदर नरसिंहदास, श्रीगंगानगर	१८२
१५३.	लीला फैन्सी क्लाथ स्टोर, श्रीगंगानगर	१८२
१५४.	सेठ मनोहरलाल लीला, श्रीगंगानगर	१८२

क्र० सं०		पृष्ठ संख्या
१५५.	अग्रवाल साहित्य सदन, श्रीगंगानगर	१८२
१५६.	श्रीगंगा प्रसाद पुरुषोत्तम लाल, फाजिल्का	१८४
१५७.	सारड़ा ट्रेडिंग कम्पनी, बीकानेर	१८४
१५८.	श्री जगन्नाथ दीनदयाल, फाजिल्का	१८७
१५९.	राधाकिशन विशनदास एण्ड संस, हाथरस	१८७
१६०.	मेसर्स किशनाराम फत्ताराम, अबोहर	१८७
१६१.	मेसर्स रामलाल भगवानदास, श्रीगंगानगर	१८७
१६२.	मेसर्स जमुना सिंह एण्ड संस, गिरीडीह	१८८
१६३.	मटकावा टी कम्पनी, कलकत्ता	१८९
१६४.	वेवर्ली इन्वेष्टमेन्ट लि०, कलकत्ता	१९०
१६५.	श्री हनुमान जूट मिल्स प्रा० लि०, कलकत्ता	१९१
१६६.	ऋषि एण्ड कंपनी, कानपुर	१९२
१६७.	देवीलाल पन्नालाल, कानपुर	१९२
१६८.	सुधीरकुमार शाह विहारीलाल, कानपुर	१९२
१६९.	जोशी एण्ड संस, दिल्ली	१९३
१७०.	भारत फार्मा एण्ड केमिकल्स, हाथरस	१९३
१७१.	डा० गंगाप्रसाद गुप्ता एण्ड संस, हाथरस	१९३
१७२.	एस० रतनचन्द किशनचन्द, वाराणसी	१९३
१७३.	पन्नालाल वैश्य, लखनऊ	१९४
१७४.	रामआसरे, लखनऊ	१९४
१७५.	चौथमल केजरीवाल, वोकारो स्ट्रील सिटी	१९४
१७६.	लक्ष्मीनारायण हार्डवेयर स्टोर्स, वोकारो	१९४
१७७.	फकीरचन्द हजारी लाल, इलाहाबाद	१९५
१७८.	यतीन्द्रनाथ शुक्ल कं०, कानपुर	१९५
१७९.	शर्मा इलैक्ट्रिकल्स म्यूजियम, वाराणसी	१९६
१८०.	डा० वी० के अग्रवाल, इलाहाबाद	१९६
१८१.	प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ	१९६
१८२.	अशोक सहकारी गृह निर्माण समिति, वाराणसी	१९६
१८३.	विलासपुर स्पीनिंग मिल्स, कलकत्ता	१९७
१८४.	मुकुलबाड़ी कनोई टी इस्टेट प्रा० लि०, कलकत्ता	१९८
१८५.	प्रणामांजलि	१९९
१८६.	जेनरल मार्केटिंग एण्ड मैन्युफैक्चरिंग कं० लि०	२००
१८७.	वैद्यनाथ दवाएँ	२०१
१८८.	उत्तर रेलवे	२०२
१८९.	राष्ट्रीय बचत संगठन	२०३
१९०.	एच० के० दास अग्रवाल एजेंसीज. वाराणसी	२०४
१९१.	कन्हैयालाल, मुकुंदलाल सर्राफ, वाराणसी	२०४
१९२.	ब्राइट स्टूडियो, वाराणसी	२०५
१९३.	श्री नवसंवत्सर मानस समिति, इलाहाबाद	२०५
१९४.	होटल धनबाद, धनबाद	२०५
१९५.	माधुरीदास नारायणदास, इलाहाबाद	२०५
१९६.	वाराणसी विकास प्राधिकरण	२०६
१९७.	श्री अन्नपूर्णा मिल्स	२०६
१९८.	हीरा मोती, वाराणसी	१७३
१९९.	अग्रवाल रेडियो, वाराणसी	१७५
२००.	बनारसी वस्त्र उद्योग संघ, वाराणसी	११६
२०१.	हनुमानदास गोपालदास, वाराणसी,	१५१
२०२.	झँवर ब्रदर्स, वाराणसी	१६९
२०३.	इंडियन आप्टिकल कं०, नई दिल्ली	२०७
२०४.	घेरूलाल बालचन्द शारदा, अबोहर	२०७
२०५.	धर्मसंघ, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी	२०८
२०६.	सन्मार्ग दैनिक, वाराणसी	२०८
२०७.	वाराणसी बाटलिंग कम्पनी	२०९
२०८.	वेस्टकॉस्ट पेपर	२१०

* * *

सम्पादकीय

वेद हमारी दार्शनिक विचारधाराओं और धार्मिक परम्परा का मुख्य आधार हैं। शताब्दियों से इनके भाष्यों का कार्य होता आ रहा है। इस समय वैदिक वाङ्मय के भाष्यों को नवीन मोड़ मिला है और धार्मिक आस्थाओं को नवीन प्रश्नों का सामना करना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में वैदिक भाष्यों के निर्माण की प्रक्रिया पर पुनर्विचार आवश्यक था। इस गुरुतर कार्य को धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज ने अपनाया और अपने विशालतम महाग्रन्थ वेदार्थपारिजात द्वारा इसे संपन्न कर हमें सुलभ करा दिया है। 'वेदार्थपारिजात' के अभी तक प्रकाशित विशालकाय तीन खण्ड इस समय विद्वानों के आकर्षण का मुख्य केन्द्र है। ऐसी स्थिति में 'सन्मार्ग' परिवार ने उचित समझा कि स्वामी करपात्रीजी महाराज के ७५ वें आविर्भाव दिवस पर 'योग, गोरक्षा, तन्त्र और आगम'—विशेषांकों के पश्चात् उन्हें अब वेद विशेषाङ्क अर्पित किया जाए।

इस विशेषांक के लिए एक विस्तृत रूप रेखा तैयार की गई और उसे विद्वानों में प्रसारित कर दिया गया। प्रसन्नता का विषय है विद्वानों ने अपने-अपने महत्वपूर्ण विचार लिपिबद्ध कर विशेषाङ्क के लिए सुलभ करा दिए हैं। इनमें स्वयं स्वामी करपात्री जी महाराज के भी प्रेरणापूर्ण विचार सुलभ हुए हैं। अवश्य ही यह विशेषांक अपने ढंग का एक अकेला विशेषांक सिद्ध होगा। इस अंक में वेदों पर पाश्चात्य देशों में हुए विचारों का संग्रह भी अभीष्ट था। किन्तु विशेषांक की समय सीमा में वे विचार प्राप्त नहीं हो सके। भविष्य में यह सामग्री प्राप्त हुई तो इसके प्रकाशन पर भी विचार किया जा सकेगा।

प्रस्तुत विशेषाङ्क के लिए सन्मार्ग के प्रकाशक प्रो० डाक्टर वीरभद्र मिश्र तथा उनके सहयोगी श्री गोपाल पाण्डेय एवं श्री अर्जुन पाण्डेय ने जो सहयोग किया है वह अविस्मरणीय है। संपादक मंडल इनका आभारी है। प्रूफ संशोधन का कार्य श्री पं० शिव शंकर मिश्र ने किया है। उनके और श्री भार्गवभूषण प्रेस के अधिकारियों के भी हम हृदय से आभारी हैं। मुख पृष्ठ का चित्र डा० वासुदेव स्मार्त ने तैयार किया है। उनके प्रति विशेषरूप से आभारी हैं।

जिन महात्माओं, विद्वानों और भक्तों ने विशेषांक के लिए लेख भेजकर इस संकल्प को सफल किया उन्हें श्रद्धापूर्ण शत शत प्रणाम।

प्रस्तुत अंक में जिन-जिन विज्ञापन दाताओं ने विज्ञापन भेज कर स्वामीजी को अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए हैं वे भी साधुवाद के पात्र हैं तथा हम आशा करते हैं कि भविष्य में भी उनका उदार सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

अन्त में भगवान् शंकराचार्य के शब्दों में स्वामी करपात्री जी के इस प्रकार के विशेषाङ्क का प्रयत्न—दीपक की लौ से सूर्य की आरती उतारने, चन्द्रकान्त मणि के जल से चन्द्र को अर्घ्य देने या नीहारकणिकाओं से अगाध जलराशि का संपोषण करने का यत्न है, क्योंकि इसमें जो कुछ है वह स्वामी करपात्री जी के ही वैदिक विचारों की छाया है।

भगवान विश्वनाथ तथा माता अन्नपूर्णा से प्रार्थना है कि स्वामी करपात्री जी महाराज का पार्थिव विग्रह स्वस्थ तथा निरामय रहे और हम उनके उपदेशों से लाभान्वित होते तथा उन्हें इसी प्रकार प्रणाम करने का अवसर पाते रहें।

रेवाप्रसाद द्विवेदी   **कमलेशदत्त त्रिपाठी**

Telegram : SUNDISMIN

Telephones : 22-8270
22-2845

With best Compliments of :

Sun Distributors & Mining Company Ltd.

14, NETAJI SUBHAS ROAD,
CALCUTTA—700 001

✤

BANIANS OF

The Bengal Paper Mill Company Ltd.

RANIGANJ (WEST BENGAL)

✤

Distributors of :

Regal Paper Limited,

211, Ansal Bhawan, 16, Kasturba Gandhi Marg,
NEW DELHI—110 001.

✤

ALSO

DEALERS IN COAL

॥ श्री हरिः ॥

अनन्तश्री विभूषित धर्मसम्राट् संस्थापक अ० भा० रामराज्य परिषद् एवं धर्म संघ

पूज्य गुरुदेव

स्वामी षोडशानन्दनाथ (करपात्र स्वामी) जी महाराज

के अमृतमहोत्सव (७५वें प्रागट्य दिवस) के पावन अवसर पर श्री चरणों में कोटि नमन

रामावतार कौशिक

(दीक्षा नाम—लक्ष्मणानन्द नाथ)

सत्या कौशिक

H-33, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

श्री गुरु अमृतमहोत्सव के उपलक्ष्य में श्री धाम वृन्दावन (रमणरेती-परिक्रमा मार्ग) में राजराजेश्वरी ललिता मन्दिर निर्माण

राजधानी पेपर एण्ड बोर्ड इन्डस्ट्रीज

निर्माता :

कोरोगेटेड शीट्स, रोल एवं बाक्स

शाखा कार्यालय :
४४५९, गली चौ० निहाल सिंह
पहाड़ी धीरज, दिल्ली ११०००६
फोन नं० : ५११०४८
आवास : २०४६५०

फैक्टरी :
४५८-४६६ जी० टी० रोड
शाहदरा, दिल्ली—११००३२
फोन नं० : २०२०८८

धर्मावतार पूज्य गुरुदेव

स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज

की

७५वीं पुण्य जयंती पर

सम्पूर्ण परिवार का साष्टांग प्रणाम

—जुगल किशोर डंग

डी–१४/ए २७, माडल टाउन, दिल्ली–९

फर्म :—

*** श्री राधाकृष्ण जुगल किशोर डंग**
मटकागली, सदर बाजार, दिल्ली–६

*** विशनदास बालकिशन**
४४–४०, विष्णु बाजार, क्लॉथ मार्केट, दिल्ली–६

*** श्री राधाकृष्ण स्वरूपनारायण**
४४–५७, विष्णु बाजार, क्लॉथ मार्केट, दिल्ली–६

फोन : निवास ७४२५६८, दुकान : २५००८०

धर्मावतार अनन्तश्री विभूषित

परमपूज्य गुरुदेव

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

की

७५वीं वर्षगाँठ पर

राम स्वरूप डंग

का

सपरिवार

शत शत साष्टांग प्रणाम

श्री राधाकृष्ण टेक्सटाइल मिल

57/59, झवेरी बाजार, बम्बई–400 002

फोन : ८२८१४३, ३४३६८९

धर्मावतार पूज्य गुरुदेव

स्वामी करपात्री जी महाराज

की

७५ वीं पुण्य वर्षगाँठ पर

सम्पूर्ण परिवार का कोटि-कोटि प्रणाम

—रासविहारी डंग

—चेतन कथूरिया

श्री राधे ट्रेडिङ्ग कारपोरेशन

५७/५९, झवेरी बाजार

बंबई-४००००२

धर्मसम्राट्

गुरुवर स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

की

७५वीं जयन्ती पर

पूज्य चरणों में शत-शत नमन

—एन० एम० व्यास
इन्दौर

हार्दिक शुभकामनाओं सहित—

उत्तम और आकर्षक कपड़ों के निर्माता

- रंग बिरंगे डिजाइनदार
- मन लुभावन रंग

मिलाप फेब्रिक्स

बालोत्तरा (राजस्थान)

सेलिंग एजेन्ट—

सेठिया इण्टरप्राइजेज

५५/१८ काहुकोठी, मारवाड़ी औषधालय बिल्डिंग, कानपुर

अनेक हार्दिक शुभकामनाओं सहित

काशी ज्वेलर्स

बिरहाना रोड
कानपुर
फोन—63551

विश्ववंदनीय यतिचक्रचूड़ामणि

सनातनधर्म संरक्षक-संवर्द्धक

अनंतश्री स्वामी करपात्री जी महाराज के

७५वें जन्मदिवस पर

सुस्वास्थ्य एवं दीर्घायु की प्रार्थना सहित

कोटिशः नमन

सुशील कुमार लोयलका

(पुत्र—स्व० श्री चिरंजीलाल लोयलका)

श्री निकेतन, लोयलका प्रॉपर्टी
बैंड स्टैंड, चौपाटी
बंबई

७५वें जन्मदिवस के अवसर पर

भारतीय विद्या-संस्कृति के उन्नायक

परम श्रद्धेय

अनंतश्री स्वामी करपात्रीजी महाराज के

श्रीचरणों में

साष्टांग प्रणाम

सोमेश्वर सिल्क मिल

३५०, कालबादेवी रोड, बंबई

अपार करुणा सागर ज्ञान विज्ञान के महासमुद्र श्री शंकराचार्य-नवावतार

परमपूज्य, अनन्तश्री विभूषित

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के ७५वें प्राकट्य दिवस पर अनन्त प्रणाम

जगदीश नारायण
शेष नारायण

५०।३०, नौघड़ा, कानपुर

सभी प्रकार की कामदार-गजी, साटन, पट्टा, ऊली, बम्बई—जैनपुर—पाली—अहमदाबाद की साड़ियों के थोक विक्रेता

● एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें ●

घनश्यामदास शिवकुमार

५०।३०, नौघड़ा, कानपुर

फोन नं० आवास—४५९२३
दुकान—६४८८३

थोक वस्त्र विक्रेता एवं अढ़तिया

नोट :—हमारे यहाँ बम्बई, अहमदाबाद, इन्दौर, उज्जैन, कानपुर की मिलों एवं फगवाड़ा, गंगानगर का माल गाँठ के भाव खुला मिलता है।

व्यापारियों के ठहरने की उचित व्यवस्था है

अनंतश्री विभूषित यतिचक्रचूड़ामणि धर्मसम्राट् गुरुवर
परमपूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज
के ७५वें जन्मदिवस पर श्रीचरणों में

कोटि-कोटि प्रणाम

पायोनियर टेक्सटाइल्स,
अमरज्योति टेक्सटाइल्स एजेन्सी
पवन इन्टरप्राइजेज,
४८।२३७, जनरलगंज, कानपुर

फोन :
कार्यालय–६०८८३
५३८९१
निवास–६३८५२

शत-शत नमन

पुष्पावती नायर
(धर्मपत्नी स्व० डी० नायर)

राजरानी कपूर
(धर्मपत्नी श्री वी० कपूर)

शिवसदन बिल्डिंग,
१४ नं०, सी रोड, नेताजी सुभाष रोड, बंबई

On the Occasion of 75th Birthday

Most Reverend Swami Karpatriji Maharaj

Heartiest Compliments

PARIKH & SONS

Nayagunj, Kanpur-208001

for your requirements of :—

Butyl Acetate, Ethyl Acetate, Crotonaldehyde
N. Butanol, Solvents, Acetic Acid Glacial

Stockists :—

SOMAIYA ORGANICS (INDIA) Ltd.

Phone : 62106,60051] [Gram : MANEKJEE

धर्मावतार पूज्यश्री अनंतश्री विभूषित

श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वीं वर्षगांठ के अवसर पर

कोटिशः नमन

राधेश्याम महेश्वरी

अवध उड प्रोडक्ट्स

(निर्माता–शुद्ध कत्था एवं कच्छ : A. W .P. ब्रांड)

५३/७, नयागंज, कानपुर

फोन : ६४७८१

एकमात्र वितरक :

सुन्दर दास शिवचरन दास

भारतीय मनीषा के प्राज्ञ व्यक्तित्व
अनन्तश्री विभूषित श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ यतिशिरोमणि
श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज
के
७५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

श्री रामलीला सोसाइटी
३९/९, रामगोला भवन, मेस्टनरोड, कानपुर

अध्यक्ष :—
लालाराम गोपाल गुप्ता

प्रधानमंत्री :—
लाला रूपकिशोर गर्ग

तथा
समस्त कार्यकारिणी के सदस्यगण

हिन्दूधर्म-संस्कृति संरक्षक-संवर्द्धक
परमपूज्य श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज
के
७५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर
सादर नमन

जगन्नाथ अग्रवाल एण्ड संस (साड़ीवाले)
५५/११४, जनरलगंज, कानपुर

जे० के० टेक्सटाइल्स,
रंगवाला टेक्सटाइल्स मिल्स, सी० टी० एम०,
राजस्थान, के० के० शाह, दिग्विजय, नाहटा,
जोधपुर, पाली, वलहोत्रा, अहमदाबाद की सूती साड़ियों का विशेष संग्रहालय

फोन { दुकान—६५०७२
निवास—६५३९४

७५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

सनातन धर्म संरक्षक यतिसम्राट्
अनन्तश्री विभूषित श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज
के
चरणों में कोटिशः नमन

—परषोत्तमलाल भगत

आर० एस० भगत एण्ड कं० (प्रा०) लि०

(रजिस्टर्ड कार्यालय : ४, कुमार रक्षित लेन, कलकत्ता–७)

२६/५०, विरहाना रोड, कानपुर

फोन { ६७०३७, ६७०३८
६३२४८, ६७६८४

{ तार : CAPABLE
टेलेक्स : KP–235

डीलर्स :—

कास्टिक सोडा लाइ, फ्लेक्स, लिक्विड क्लोरीन, ब्लिचिंग पावडर, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, बी० एच० सी० टेक्निकल एण्ड बी० एच० सी० डस्ट

डिस्ट्रीब्यूटर्स :—

मेसर्स जे० के० रेयॉन फॉर सल्फ्यूरिक एसिड

With Best Compliments From :—

Swadeshi Polytex Limited

jailene

Jailene—the great "mixer" with many friends: India's leading textile mills

Jailene polyester staple fibre is a great "mixer"...blends beautifully with cotton, silk, wool, viscose and other fibres ... to produce a fantastic range of fabrics ... to meet the demands of a fast changing, volatile market.

That is why Jailene is so popular with India's leading textile mills.

Swadeshi has the best possible technology. It discovers, it innovates, it creates—not only newer forms, but also more efficient processes. It looks after its clients very well. It is a company marching, with military precision, towards bigger and bigger success.

So, the customers value Swadeshi as a good company, and a company to deal with. And Swadeshi values its reputation. That's why Jailene means a happy blend. Always.

The most advanced process in the world is used to make Jailene...to produce fault-free fabrics of extraordinary finish ... a great hit on the market !

Creating tomorrow's fibres today

jailene® Swadeshi Polytex Limited
GHAZIABAD U.P.

परम श्रद्धेय सनातन धर्म संरक्षक श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के
७५ वें जन्म दिवस पर सतत: नमन

महाराणा प्रताप सिंह
छत्रपति शिवाजी
बेरोजगारों के सच्चे साथी
भगत सिंह
हेमू कलाणी
LIONS OF INDIA

सस्ते कपड़ों की दूकानों का आवण्टन
भारत के विभिन्न अंचलों में टेरीलीन, टेरीकॉट, पॉलीस्टर, बोस्की एवं सुपीरियर काटन
कपड़े बाजार की अपेक्षा अधिक सस्ते कीमत पर बिक्री हेतु
शिक्षित बेरोजगारों के लिए ४० प्रतिशत आवण्टन सुरक्षित
प्रार्थना-पत्र मँगाने के लिए आवेदन करें :-
लायन के० एल० इण्टरप्राइजेज आफ् इंडिया
३५२, मुरलीधर चैम्बर,
३०४, ठाकुरद्वारा रोड, बम्बई-४००००२

धर्मसम्राट् परमपूज्य श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के
७५वीं वर्षगाँठ पर

शतशत प्रणाम सहित

भगवान श्री व्यंकटेश से प्रार्थना करते हैं

पं० नन्दकिशोर शर्मा शास्त्री
मंत्री, ब्राह्मण सभा, विदिशा

पं० बाबूलाल शर्मा,
मंत्री, धर्मसंघ शाखा, विदिशा

श्री ब्राह्मण सभा, विदिशा
एवं
धर्मसंघ शाखा, विदिशा
(मध्य प्रदेश)

With Best Compliments From

HOTEL
blue diamond

WESTERN AVENUE, Sector—2
BOKARO STEEL CITY—827 001
PHONES : 6445-6446-2747 TELEX : 0628-204 HBD IN

श्रद्धेय गुरुदेव स्वामी करपात्रीजी महाराज के चरणों में सष्टांग प्रणाम

हरिनारायण एण्ड कम्पनी

डीलर——इंडियन आयल कम्पनी

बोकारो स्टील सिटी—827 001

फोन : निवास–६०३२, आफिस–६३९२

•

त्रिपाठी पेट्रोल सप्लाई एण्ड सर्विस स्टेशन

डीलर——भारत पेट्रोलियम

जैना मोर, जिला गिरीडीह (विहार)

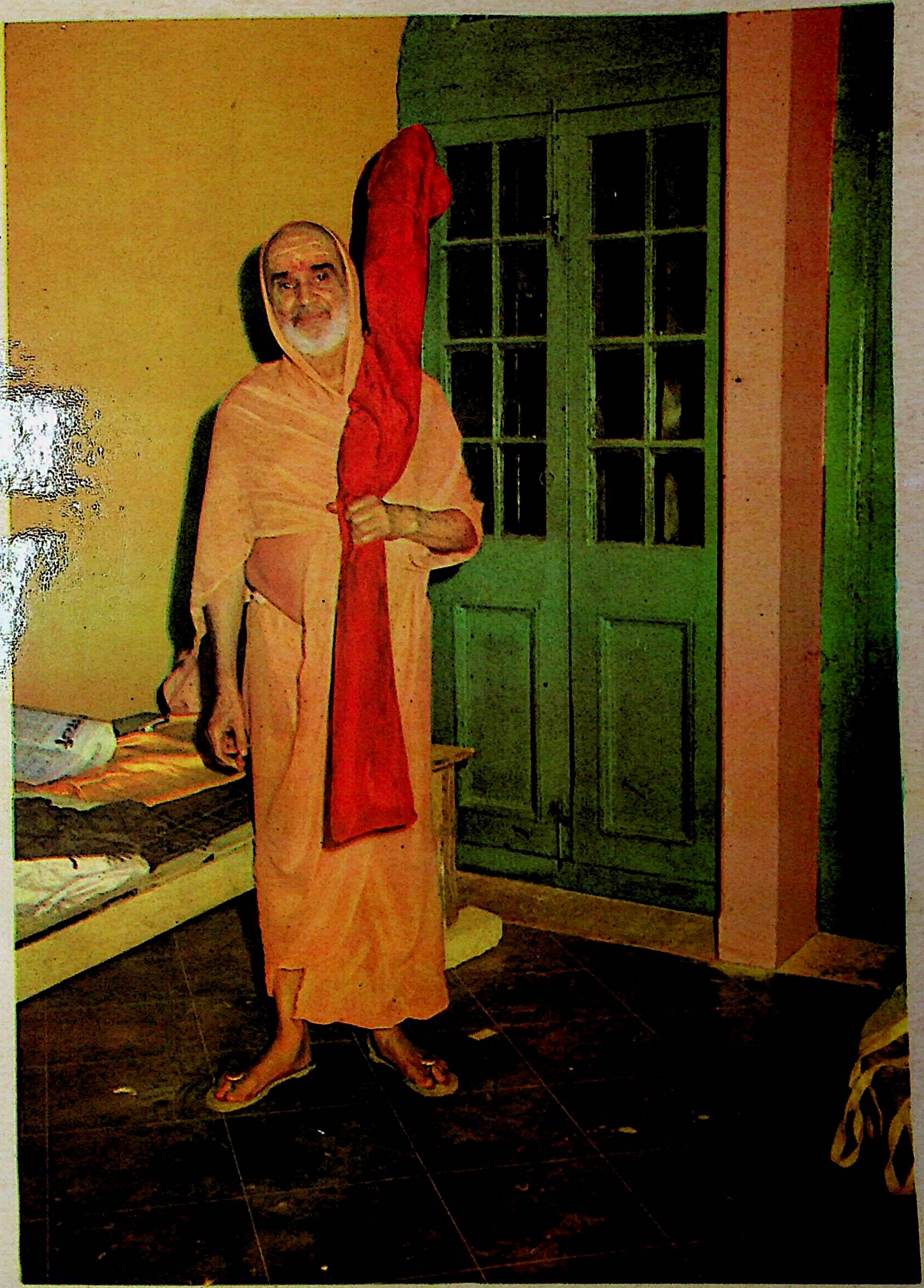

पुरी पीठाधीश्वर जगद्गुरुशंकराचार्य श्री निरंजनदेव तीर्थ जी महाराज

अनन्तश्री विभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरी पीठाधीश्वर

स्वामी श्री निरंजन देव तीर्थ जी महाराज

की

शुभ कामना

अनन्त श्री धर्मसम्राट् यतिचक्र चूड़ामणि विश्ववन्द्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज वर्तमान जगत् के अद्वितीय महापुरुष हैं। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में प्राच्य पाश्चात्योमय विद्या विशारद वक्ता, शास्त्रार्थ कर्त्ता, लेखक, विवेचक, विचारक, सम्पादक, उन जैसा कोई नहीं। प्रायः यह देखा जाता है कि वक्ता लेखक नहीं होते। लेखक वक्ता नहीं होते, सहस्रों में से किसी एक में दो एक गुण एक साथ अंशतः रह भी जायँ तब भी सम्पूर्ण गुण किसी एक व्यक्ति में मिलना तो सर्वथा असम्भव ही है। किन्तु इसके सर्वदा अपवादस्वरूप अनन्तश्री स्वामी जी महाराज हैं। कौन कौन से गुण हैं; ऐसा न कहकर यही कहा जा सकता है कि क्या नहीं है और उनमें कौन सा गुण नहीं है। उदाहरण और प्रमाण के लिये उनके लिखे हुए रामराज्य और मार्क्सवाद, रामायण मीमांसा, विचारपीयूष और वेदार्थ पारिजात पर्याप्त हैं। विश्व में आज तक एक भी ऐसा विद्वान् पैदा नहीं हुआ जिसने प्राच्य, पाश्चात्य उभयविध राजनीति शास्त्रों का एकत्र संकलन कर विद्वानों के सामने रखा हो। अनन्तश्री महाराज ने तो विश्व के सम्पूर्ण राजनैतिक वादों का केवल संकलन ही नहीं किया अपितु संकलन के साथ इनका खण्डन भी वड़ी मार्मिक युक्तियों से किया है, जो देखते ही बनता है। ऐसी महान् विभूति का उदय भारतीय संस्कृति धर्म, कर्म, आचार और विचार का परिपोषण करने के लिये ही होता है। ऐसे तो वे प्राणिमात्र का कल्याण चाहने वाले हैं। किन्तु हिन्दू जाति की वर्तमान दुर्दशा देखकर उन्होंने कभी उपेक्षा नहीं की। पराधीनता काल में देश का कोई नेता इतनी बार जेल नहीं गया, जितनी बार स्वाधीनता काल में अपनी सरकार के राज्य में श्री महाराज जी जेल गए। काश सम्पूर्ण देश की जनता ने इनके नेतृत्व को पहचान कर उसका आदर करते हुए, उनके बताये मार्ग का अनुसरण किया होता तो आज यह देश की दुर्दशा नहीं होती।

आज उनकी ७५वीं वर्षगाँठ का, भगवान् से उनके सम्पूर्ण स्वास्थ्य सहित दीर्घायुष्य की प्रार्थना करते हुए भारत के कर्णधारों और जनता जनार्दन से स्पष्ट कहते हैं कि उनके बताये मार्ग पर चले बिना इस देश का कल्याण नहीं होगा।

पुनश्च दीर्घायुष्य की कामना के साथ।

समस्त वेद का प्रामाण्य

● अनन्त श्री विभूषित स्वामी करपात्री जी महाराज ●

मनु ने 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' इत्यादि वचनों से 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' इस आपस्तम्बसूत्र के अनुसार मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद को ही धर्म में मूल नहीं कहा; अपितु श्रुति-लिङ्ग-वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्या से अनुमित अतिदेशकल्प वेद भी धर्म में प्रमाण माना है। अतएव अथर्ववेदप्रोक्त, तुला-पुरुष-शान्त्यादि सर्वसाधारण कर्म भी धर्म ही हैं। अर्थात् वेद के कर्म एवं उपासना और ज्ञान के प्रतिपादक तीनों ही काण्ड धर्म में प्रमाण हैं। क्योंकि 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इस विधि वाक्य से 'स्वाध्याय' पदवाच्य समस्त वेदराशि का अध्ययन विहित है। यद्यपि 'अधीयत इत्यध्यायः, स्वस्याध्यायः स्वाध्यायः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार स्वशाखीय वेद ही स्वाध्याय पदार्थ है, फिर भी उसे उपलक्षण मानकर स्वशाखोपलक्षित समस्त वेदराशि के ही अध्ययन में विधि का तात्पर्य माना जाता है। 'वायुर्वा व गौतम अग्निः', 'योषा वाव गौतमअग्निः, आदित्यो वै देवानाम् मधु' इन उपासनाकाण्डगत वाक्यों से उपासना का विधान है। जैसे प्रतिमाओं में देवताओं की उपासना की जाती है, वैसे ही वायु, स्त्री आदिकों में अग्निभावना से उपासना की जाती है। यद्यपि भेद में अभेद बुद्धि भ्रान्ति ही है और भ्रान्ति से फल की आशा भी दुराशा ही है; तथापि भ्रान्ति संवादी-विसंवादी भेद से दो प्रकार की होती हैं। मणि और प्रदीप की प्रभा में मणिबुद्धि से दौड़ने वालों की भ्रान्तियाँ बराबर हैं। फिर भी फल में भेद प्रत्यक्ष ही है। सिद्ध अर्थ का प्रतिपादन करने वाली उपनिषदों का भी प्रामाण्य 'तत्तु समन्वयात्' इस सूत्रभाष्य में श्रीमच्छङ्कर भगवत्पाद ने व्यक्त किया है। 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' इत्यादि वचनों से ज्ञानकाण्ड का महत्व गीता में भी प्रतिपादित है। अर्थवादों का विधि निषेध की स्तुति में और मन्त्रों का द्रव्य देवता-स्मरण करने में तात्पर्य है। किंबहुना 'हावु' 'होयि' आदि स्तोत्रों की भी सामरूप गीति की पूरक होने से सार्थकता है, तो फिर मन्त्रों की सार्थकता में सन्देह ही नहीं हो सकता।

वेदों में मन्त्र, ब्राह्मण ये दो भेद एवं ऋक्, साम, यजु, अथर्व भेद वेद उनमें भी मण्डल, अनुवाक्, सूक्त त्र्यृच, प्रपाठक अध्याय और ब्राह्मण भेद हैं। ब्राह्मणों में भी विधि, अर्थवाद और अनुवाद ये तीन भेद कहे गए हैं। अर्थवाद में भी स्तुति, निन्दा, परप्रकृति, पुराकल्प ये चार विभाग और अनुवाद में भी विध्यनुवाद, विहितानुवाद भेद से दो भाग कहे गये हैं। इष्टसाधन बोधक लिङ्, लोट्, तव्यदादि प्रत्यययुक्त वाक्य विधिवाक्य हैं। जैसे 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' इत्यादि। विध्यर्थ-प्रशंसापरक वाक्य अर्थवाद कहे जाते हैं। स्तुति द्वारा विध्यर्थ में अधिकारी की शीघ्र ही प्रवृत्ति होती है। निन्दा के द्वारा निषिद्ध से निवृत्ति में सहायता मिलती है। ये ही दोनों स्तुति और निन्दारूप अर्थवाद हैं। 'सर्वजिता वै देवाः सर्वमजयन्', देवताओं ने सर्वजित् याग से सब पर विजय पायी है, अतः सबको जीतने के लिये सर्वजित् यज्ञ करना चाहिये। 'सोऽरोदीत्' इत्यादि निन्दार्थवाद हैं। किसी पुरुष विशेष में अन्योन्यविरुद्ध दो धर्म कहे जांय, यह परप्रकृति है। जैसे 'हुत्वा वपामेवाग्रेऽभिघारयन्त्यथ पृषदाज्यम्। तदुह चरकाध्वर्यवः पृषदाज्यमेवाग्रेऽभिघारयन्ति" अर्थात् होमकर वपा ही को बघारते हैं, उसके बाद पृषदाज्य को बघारते हैं। यजुर्वेद के चरक नामक अध्वर्यु पृषदाज्य को ही बघारते हैं। यहाँ सन्देह से विलम्ब न करना और दो में से किसी एक के बघारने में लग जाना बताया है, इसीलिये ये परप्रकृति है। 'अमुक लोग प्रथम इस कार्य को करते थे' इस तरह के वाक्य को 'पुराकल्प' कहते हैं। जैसे—'तस्माद्वा एतेन पुरा ब्राह्मणा बहिष्पवमानं सामस्तोम स्तौषन्'। यज्ञविस्तारार्थ ब्राह्मण लोग पूर्वकाल में बहिष्पवमान नामक सामस्तोम का प्रशंसन करते थे। शब्द का अनुवाद, विध्यनुवाद और अर्थ के अनुवाद को विहितानुवाद कहा जाता है। यह विभाग नैयायिकों के मतानुसार है। भट्टपाद ने अनुवाद को अर्थवाद में अन्तर्भूत कर गुणवाद, अनुवाद, भूतार्थवाद आदि तीन भेद माने हैं।

"विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते ।
भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः ॥"

इसी तरह विधि, निषेध, अर्थवाद, मन्त्र, नामधेय, उपनिषद् भेद से छः प्रकार का भी वेद परम्परा से प्रचालित है।

मनु, व्यास आदि शब्द प्राड्विवाक (जज) आदि के समान पदविशेष के ही वाचक हैं। तथा च मनु, व्यास आदि सर्वज्ञकल्प उक्त महर्षिगण अनादिकाल से समय-समय पर आविर्भूत होते आए हैं। अतः उनके द्वारा प्रचलित भेद भी अनादि ही समझने चाहिये।

शास्त्रों के अर्थवाद की कल्पना लोक में भी बहुत प्रसिद्ध है। परन्तु वस्तुदृष्टि से कौन वाक्य किस तरह का अर्थवाद है, इसका ज्ञान बहुत कम लोगों को है। जिसे जो वाक्य मान्य नहीं होता, वह उसे क्षेपक या अर्थवाद कह देता है। परिस्थिति यहाँ तक बिगड़ गयी कि विकराल पापों के फलों, दारुण नरकयातनाओं के वर्णन को भयानक (अर्थवाद), सत्कर्मों के स्वर्गादि दिव्यफलों के बोधक वाक्यों को रोचक (अर्थवाद) कह दिया जाता है। परन्तु पूर्वकथनानुसार यह समझना परमावश्यक है कि अर्थवाद क्या है ? "अर्थस्य प्रयोजनस्य वदनं विध्यर्थप्रशंसापरं वचनमर्थवादः। स च स्तुत्यादिद्वारा विध्यर्थशीघ्रप्रवृत्तये प्रशंसति।" प्रयोजन बतलानेवाले विध्यर्थप्रशंसक वचनों को अर्थवाद कहा जाता है।

पूर्वमीमांसा के सूत्र, भाष्य, वार्तिक आदि ग्रन्थों में अर्थवादों और मन्त्रों पर पर्याप्त विवेचन किया गया है। अर्थवाद वचनों के प्रामाण्य पर

प्रथम पूर्वपक्ष किया गया है। 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानां तस्मादनित्यमुच्यते।' समस्त आम्नाय वेदादिशास्त्र का प्रवृत्तिरूप अथवा निवृत्तिरूप किसी क्रिया के ही प्रतिपादन में तात्पर्य होता है।

अतः जिन वचनों का क्रिया अर्थ नहीं है, उनकी अनर्थकता है। अतएव उनका अप्रामाण्य ही समझना चाहिये। 'शिष्यते हितमुपदिश्यतेऽनेनेति शास्त्रम्' इस व्युत्पत्ति से हित-उपदेश करने वाले वाक्य समूह को ही शास्त्र कहा जा सकता है। अनिष्ट परिजिहीर्षु प्राणी को अनिष्ट परिहार का उपाय एवं इष्ट-प्रेप्सु को इष्टप्राप्ति का उपाय उपदेश करना ही शास्त्र का काम है। 'न सर्पायाङ्गुलिं दद्यात्' (सर्प को अङ्गुलि न दे) 'ज्वरित' पथ्यमश्नीयात्' (ज्वराक्रान्त को पथ्य ही खाना चाहिये) इस तरह के अनिष्ट से निवृत्ति बतलानेवाले निषेध और इष्ट में प्रवृत्ति का उपदेश करनेवाली विधि को ही मुख्य शास्त्रत्व होता है। इस दृष्टि से वेद के भी 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत, अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः इत्यादि (इष्टसाधनताबोधक या इष्टप्राप्ति में प्रवर्त्तक) विधि वाक्यों का एवं 'सुरां न पिबेत्', 'ब्राह्मणो न हन्तव्यः' इत्यादि निषेधवाक्यों का ही मुख्य शास्त्रत्व और प्रामाण्य सिद्ध होता है। अर्थवाद और मन्त्रों में प्रवर्त्तकता या निवर्तकता न होने से उनका क्रिया में तात्पर्य नहीं है। अतः उनका प्रामाण्य दुर्घट है। अतएव 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः, तस्य ज्ञानमुपदेशः, तद्भूतानां क्रियार्थेन समाम्नायः इत्यादि सूत्रों से विधि और निषेध का ही प्रामाण्य कहा गया है। तद्भिन्न शब्दों से धर्माधर्म का ज्ञान कथमपि नहीं हो सकता। अज्ञात अर्थ का ज्ञान कराना ही शब्दों का कार्य है। अतः साध्य (स्वर्गादि फल), साधन (यज्ञादि क्रिया) और उसकी इतिकर्त्तव्यता (अनुष्ठान का प्रकार और अङ्ग क्रियाओं) के बोधक जितने शब्द विधि प्रतिषेध के अन्तर्गत हो जाते हैं, उन्हीं का प्रामाण्य होता है। जिन वाक्यों का साध्य, साधन इतिकर्त्तव्यता अर्थ नहीं है, उन मन्त्र एवं नामधेय में आनेवाले 'सोऽरोदित्', इषेत्वोर्जे त्वा (वह रोया, रोने से ही उसका नाम रुद्र पड़ गया, उसके आँसू ही रजत बन गए, हे शाखे! अन्न और अभीष्टपूर्ति के लिये मैं तुझे काटता हूँ) इत्यादि अर्थवाद वाक्यों का अपौरुषेय और स्वार्थप्रतिपादनक्षम होने पर भी धर्माधर्म में प्रामाण्य नहीं है, कारण उनके सरल और स्पष्ट अर्थ से प्रवृत्ति तथा निवृत्ति की प्रतीति नहीं होती।

क्लिष्ट कल्पना से तो विधि, निषेध दोनों ही बनाए जा सकते हैं। जैसे "जब रुद्र जैसे बड़े लोगों ने रोदन किया है, तब मुझे भी रोदन करना चाहिये", इस तरह विधि बन सकती है। दूसरे यह कि "रोना" बड़े-बड़े लोगों को भी आक्रान्त कर लेता है, अतः उससे बचने का प्रयत्न करना चाहिये, इस तरह निषेध भी निकल सकता है। ऐसी स्थिति में विधि-निषेध का निर्णय अशक्य हो जाता है। इसीलिये यथाश्रुत स्पष्ट अर्थ का ही ग्रहण उचित है। उसमें विधि-निषेध का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

सभी अर्थवाद झूठी स्तुति या झूठे (मिथ्या) अर्थ को प्रतिपादन करते हों, यह बात नहीं। "धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे" दिन में अग्नि का धूम ही दिखायी देता है। इन मिथ्यार्थ प्रतिपादक अर्थवादों के अतिरिक्त "वायुर्वैक्षेपिष्ठा देवता" इत्यादि अर्थवाद सत्यार्थ के ही प्रतिपादक हैं। तथापि विधि निषेध से बहिर्भूत होने से इनका प्रामाण्य नहीं है। किसी विधि निषेध के भीतर लाने के लिए इनके अर्थ में परिवर्तन करना भी ठीक नहीं, कारण विधि-निषेध सम्बन्ध के बिना भी वे अपने सत्य या मिथ्या अर्थ का प्रतिपादन कर ही सकते हैं। जो यह कहा जाता है कि विधि निषेध सम्बन्ध बिना किसी वृत्तान्त मात्र का प्रतिपादन व्यर्थ है, अतः अर्थवादों की सार्थकता के लिये विधि-निषेध सम्बन्धानुकूल स्तुति या निन्दा रूप अर्थान्तर की कल्पना युक्त ही है, जिससे प्रवृत्ति या निवृत्तिरूप प्रयोजन के साधक होने से वाक्य में सार्थकता आ जायगी। यह कथन भी अनर्गल है; कारण जिस वाक्य का जो अर्थ है, उसका वही अर्थ है। निष्प्रयोजक होने मात्र से अर्थ का परिवर्त्तन नहीं हो सकता है।

क्या लोष्ठ या पाषाणादि का दर्शन निष्प्रयोजन है? अतः लोष्ठ दर्शन को सुवर्ण दर्शन मान लिया जाय, वस्तुतः शब्द ही क्या, सभी प्रमाण अपने यथाभूत विषय का ही प्रकाश करते हैं। चाहे वह सप्रयोजन हो, चाहे निष्प्रयोजन, उसी से हान, उपादान एवं उपेक्षाबुद्धियाँ उत्पन्न होती हैं। यदि प्रमाण सप्रयोजन विषय का ही बोध करायें, तब तो उनसे केवल उपादानबुद्धि का ही प्रादुर्भाव होगा; हान उपेक्षाबुद्धि की कथा ही मिट जाएगी। किञ्च प्रमाण से अर्थज्ञान होने के उपरान्त ही अर्थ की सप्रयोजनता और निष्प्रयोजनता का निर्णय होगा। फिर सप्रयोजनता के अधीन प्रमाणोत्पत्ति की कल्पना कैसे संगत हो सकती है?

इसलिये जो अर्थ जिस रूप से प्रमाण द्वारा निश्चित होता है, उसे वैसा ही समझना चाहिये, चाहे वह सप्रयोजन हो या निष्प्रयोजन। सप्रयोजन वस्तु की ही प्रमिति हो, ऐसा कोई भी नियम नहीं है। फिर बुद्धिप्रयत्न निरपेक्ष, नित्यसिद्ध वेदजन्य ज्ञान से ग्राह्य अर्थ में तो सुतरां अर्थ बदलने की कोई आवश्यकता नहीं। इसलिये जो अर्थवादों का सहज अर्थ हो, वही ग्रहण करना चाहिये। यदि प्रयोजनवत्ता के लिये अर्थ बदला जाएगा, तब तो शब्दों का भी बदलना अनिवार्य हो जायगा, क्योंकि स्तुति या निन्दारूप अर्थ उनके वास्तविक शब्दों से नहीं निकलते।

इस तरह शब्द और अर्थ दोनों ही बदल दिये जाएँगे, तब तो उनकी मूल सत्ता ही मिट जाएगी। फिर जो वाक्य किसी पुरुष द्वारा रचा गया हो, उसमें वक्ता का तात्पर्य निकालने के लिये खींच-खाँच करने का अवकाश भी रहता है, परन्तु जो किसी के द्वारा रचित भी नहीं है, ऐसे नित्य वेद के अर्थवाद-वाक्यों में तो तात्पर्यानुसार भी अर्थ बदलने का अवसर नहीं है। फिर यह तो अभी विचारणीय विषय है कि वेद सफल ही अर्थ का प्रतिपादन करते हैं या निष्फल का भी?

फिर वेद जैसे अर्थ का प्रतिपादन करते हैं, हम लोग जानकर केवल उसके अनुष्ठान के ही अधिकारी हैं अथवा वेद क्यों निष्प्रयोजन अर्थ का प्रतिपादन करते हैं, ऐसा प्रश्न भी कर सकते हैं? यदि वेद निष्प्रयोजन अर्थ के प्रतिपादक हों, तो उनका आदर-पुरस्सर क्यों अध्ययन किया जाता है? अध्ययन के अनन्तर वेदार्थज्ञान से तो सभी को वेद के परतन्त्र ही होना पड़ेगा। उसके पहले कोई परीक्षा भी कैसे कर सकता है। अध्ययन के अनन्तर मीमांसा द्वारा वेदों के सफल या निष्फल अर्थ पर विचार करने से यही निश्चय होगा कि जैसे विधि वाक्यों का सप्रयोजन होना उनके अर्थ से ही निश्चित है, वैसे ही अर्थवादों का सप्रयोजन होना उनके अर्थ से ही निश्चित नहीं होता। मीमांसा से परीक्षा करने वालों का यही कार्य है कि

प्रमाण सिद्ध वस्तु को स्वीकार करें, चाहे वह अपने प्रयोजन की हो अथवा न हो।

यदि क्लिष्ट कल्पना से अर्थवादों का स्तुति या निन्दारूप अर्थ निकाल भी लिया जाय, तब भी वह साध्य, साधन इतिकर्त्तव्यता के वहिर्भूत होने से विधि-निषेध के भीतर नहीं आ सकता। विधि-निषेध-सम्वन्ध के विना स्तुति न विहित कर्म में प्रवृत्ति करा सकती है, न निन्दा निषिद्ध कर्म से निवृत्ति करा सकती है। इसके अतिरिक्त अर्थवादों की स्तुति एवं निन्दारूप अर्थ कल्पना करने के उपरान्त उनका विधि-निषेध के साथ सम्वन्ध हो सकता है। सम्वन्ध के उपरान्त ही अर्थवादों का विधि-निषेध सम्वन्धोपयोगी स्तुति या निन्दारूप अर्थ कल्पित होगा। इस तरह सम्वन्ध-कल्पनाधीन स्तुतिनिन्दा कल्पना से सम्वन्ध की कल्पना होगी। तथा च अन्योन्याश्रय दोष अनिवार्य होगा। इसलिये अर्थवाद और मन्त्र का कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

अर्थवाद व्यर्थ और असत्य अर्थ का ही वोधन करते हैं—'स्तेनं मनोऽनृतवादिनी वाक्' (मन चोर है, वाणी झूठी है) यह अर्थवाद स्वतःपुरुष की प्रवृत्ति-निवृत्ति में कथमपि उपयोगी नहीं हैं। यदि इसकी सफलता के लिये 'मनः स्तेनं वाचमनृतां कुर्यात्' (मन को चोर और वाक् को झूठी वनायें) ऐसी विधि की कल्पना की जाय, तो शास्त्र विरोध उपस्थित होगा। क्योंकि 'नानृतं वदेत्' यह शास्त्र अनृत् वदन का निषेध करता है। इसके अतिरिक्त 'धूम एवाग्निर्दिवा ददृशे' (अग्नि का धूम ही दिन को दीखता है, अग्नि नहीं) यह अर्थवाद प्रत्यक्ष से ही विरुद्ध अर्थ का वोधक है, कारण प्रत्यक्ष ही दिन में भी अग्नि का दर्शन होता है।

ऐसे ही प्रत्यक्ष ब्राह्मण में भी 'वयं ब्राह्मणा वा अब्राह्मणा वा' (हमलोग ब्राह्मण हैं या अब्राह्मण) इत्यादि सन्देह प्रत्यक्ष-विरुद्ध है। कहा जा सकता है कि ब्राह्मणत्वादि तो प्रत्यक्ष नहीं है, फिर प्रत्यक्ष विरोध कैसे कहा जा सकता है? परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि 'ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातः' ब्राह्मणी में ब्राह्मण से उत्पन्न होने का औपदेशिक ज्ञान होने पर 'यह ब्राह्मण है' यह प्रत्यक्ष ही होता है जैसे मूल ब्राह्मणों में प्रजापतिमुखजत्वज्ञान ब्राह्मणत्व का व्यञ्जक है, उसी तरह शाखाभूत ब्राह्मणों में ब्राह्मण माता-पिता से जन्य होने का ज्ञान ब्राह्मणत्व का व्यञ्जक होता है।

उदयनाचार्य के अनुसार यद्यपि सामान्य ब्राह्मण ब्राह्मण—ब्राह्मणी से ही उत्पन्न होते हैं, तथापि मूल ब्राह्मण प्रजापति की मुख शक्ति से ही उत्पन्न हुए थे। जैसे सामान्य विच्छू विच्छू से ही उत्पन्न होते हैं, फिर भी प्रथम विच्छू गोमय से होते हैं। सामान्य चौराई से चौराई उत्पन्न होती है, फिर भी प्रथम चौराई तण्डुलकण से उत्पन्न होती है। वह्नि से वह्नि की उत्पत्ति दृष्ट होने पर भी प्रथम अग्नि अरणि से उत्पन्न होती है। इसी तरह क्षीर, दधि, घृत आदि अपने अवयव भूत दुग्धादि से ही उत्पन्न होते हैं। परन्तु प्रथम दुग्धादि निरवयव परमाणुओं से ही होते हैं। इसी तरह सामान्य मनुष्यादि मनुष्यादि से ही उत्पन्न होते हैं; तथापि प्रथम मनुष्यादि पूर्व जन्मकृत कर्म सापेक्ष भूतों से ही उत्पन्न होते हैं। जैसे गो व्यक्ति के प्रत्यक्ष होने पर गोत्व प्रत्यक्ष होता है; इसी तरह ब्राह्मणजन्यता ज्ञान से व्यक्ति में ब्राह्मणत्वादि का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

'शोभतेऽस्य मुखं य एवं वेद।' गर्ग-त्रिरात्र ब्राह्मण में कहा है कि इस पूर्वोक्त विषय के जाननेवाले का मुख शोभित होता है, परन्तु जो कुमुख है, उसका मुख उस विषय के जानने पर भी सुन्दर नहीं होता। अतः ये वेद वचन झूठा ही अर्थ कहते हैं। ऐसे ही 'पूर्णाहुति मुत्त मां जुहोति' (यज्ञान्त में पूर्णाहुति दे) इस विधि का अर्थवाद है—'सर्वमेवाप्नोति' (सभी फल पाता है)। यदि यह सत्य है कि पूर्णाहुति से कम ही सव फलों की प्राप्ति हो जाती है तव तो पूर्व की क्रियाओं का विधान व्यर्थ ही हुआ। सर्वत्र प्राप्त का ही निषेध होता है; परन्तु 'नान्तरिक्षे चिन्वीत' यहाँ अत्यंत अप्राप्त अन्तरिक्ष में अग्निचयन का निषेध है। 'वर्वरः प्रावहणि' इत्यादि में अनित्य पुरुषों का भी सम्वन्ध वेद में आता है; जिससे वेदों की अनित्यता सिद्ध होती है। यह सिद्धान्ती कह सकता है कि अर्थवादों का अर्थ चाहे सत्य हो अथवा झूठ, स्तुति तो असत्य गुणों से भी हो सकती है, अर्थवादों का स्तुति में ही तात्पर्य है, वाच्यार्थ में उनका तात्पर्य ही नहीं है, फिर वाच्यार्थ के झूठे होने से क्या हानि है? परन्तु उसका यह कथन सङ्गत नहीं, क्योंकि अर्थवादों का अपने वाच्य में तात्पर्य नहीं है, तो दूसरा भी उनका तात्पर्य नहीं हो सकता। स्तुति रूपी अर्थ उनके शब्दों से निकलता नहीं है, तव अवश्य ही वाच्यार्थ में उनका प्रामाण्य मानना पड़ेगा। फिर तो वर्वर आदि की अनित्यता उनमें अवश्य ही आयेगी। कथञ्चित् वर्वर का वायु आदि अर्थ मान लिया जाय, तो भी हर एक आख्यानों के शब्दों का अर्थ नहीं वदला जा सकता। यदि उन अंशों का अप्रामाण्य होगा ही, तव वर्वर आदि का ही अर्थ वदलने का क्यों आयास किया जाय? स्थिति तो यह है कि जैसे कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों में शव्द और शव्दों में वेद का प्रामाण्य है, उसी तरह वेदों में भी विधिनिषेध-वाक्य ही प्रमाण हैं, और सव अप्रमाण ही हैं। जो कहा जाता है कि 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इस विधि से वेद का सभी अंश पुरुषार्थ का साधन है, वह भी कथञ्चित् पाठ से अदृष्ट उत्पादन द्वारा हो सकता है; परन्तु उनका कुछ अर्थ है—ऐसा तो नहीं कहा जा सकता।

इस तरह पूर्वपक्ष करके मीमांसा में ही 'विधिना त्वेकवाक्यत्वात्स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः' इत्यादि सूत्रों से अर्थवाद आदि का प्रामाण्य कहा गया है। अभिप्राय यह है कि विधि वाक्य अपने विधेय यज्ञादि क्रिया में पुरुषों को प्रवृत्त करने के लिए विधेय की स्तुति चाहता है। इसलिए स्तुति रूप अर्थ के द्वारा अर्थवाद वाक्य विधि वाक्यों से मिल कर, विधि वाक्यों में ही अन्तर्गत होकर दोनों एक महावाक्य हो जाते हैं। अतः प्रवर्तक होने से, प्रमाण भूत विधि-वाक्य के अन्तर्गत होने से अर्थवादों का भी प्रामाण्य हो जाता है। 'नष्टाश्वदग्धरथन्याय' से दोनों मिलकर विधि-वाक्य अर्थवाद की प्रयोजनाकांक्षा और अर्थवाद विधि-वाक्य की प्रशंसाकांक्षा को पूरा कर दोनों ही सफल और कृतकार्य हो जाते हैं।

यद्यपि विधि वाक्य यज्ञादि में पुरुष को स्वयं ही प्रवृत्त करते हैं; तथापि परिश्रम और धन व्यय के कारण यज्ञों से मन हटता है। ऐसी स्थिति में अर्थवाद प्रशंसा द्वारा मन को हटने न देकर प्रोत्साहन

देते हैं। इसलिए विधि वाक्यों के अङ्ग (सहायक) होकर अर्थवाद भी धर्म में प्रमाण होते हैं। जैसे लोक में 'यह गौ खरीदो' यह विधि होती है; तो 'यह गौ बिकाऊ और वहुत दूध देने वाली है; इसके वच्चे जिया करते हैं, इत्यादि अर्थवाद भी होते हैं। विधि-वाक्य से पुरुष की क्रय में प्रवृत्ति होती है; परन्तु मूल्य ज्यादा होने से मन हटता है। तव अर्थवाद से गौ के गुण दिखाकर उसे खरीदने को प्रोत्साहित किया जाता है। वैसे ही 'वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकाम:' (ऐश्वर्य चाहने वाला श्वेत छाग द्वारा वायु का यजन करे।) इस विधि का अर्थवाद है—वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता, 'वायुमेव स्वेन भागधेयेनोपधावति, स एवैनं भूतिं गमयति।' वायु अतिशीघ्रकारी देवता है, यज्ञ कर्ता को शीघ्र ही ऐश्वर्य देता है।

यहाँ शंका होती है कि 'इस विषय में लोक दृष्टान्त नहीं चल सकता, क्योंकि लौकिक अर्थवाद के पदों का वाच्यार्थ विधि के साथ सम्बन्ध रखता है; परन्तु वैदिक अर्थवाद के तो किसी पद का यह अर्थ नहीं होता कि यह यज्ञ अच्छा है। ऐसी स्थिति में विधि के साथ एकवाक्यता कैसे हो सकती है?' इसका समाधान यह है कि पदों का अर्थ चाहे जो भी हो परन्तु पूर्ण अर्थवाद का अर्थ स्तुति (ये यज्ञ आदि अच्छे हैं) ही है। यह उनका अर्थ वाच्यार्थ नहीं है, किन्तु लक्ष्यार्थ है। शव्दों का साक्षात् सम्वन्ध शक्ति और व्यवहित (परम्परा) सम्वन्ध लक्षणा कहलाता है। शक्ति सम्वन्ध से वोधित अर्थ शक्य और लक्षणा से वोधित अर्थ लक्ष्य कहलाता है। यष्टि शव्द का शक्यार्थ लाठी है, परन्तु "यष्टियों को खिलाओ" यहाँ यष्टि शव्द से 'लाठी वाले पुरुष' लक्षणा से विवक्षित होते हैं। इसी तरह अर्थवाद भी लक्षणा से यज्ञ की प्रशंसा का वोध करायेंगे।

फिर भी कहा जाता है कि 'अर्थवाद के पद लक्षणा से स्तुतिवोधक होते हैं,' इसमें कोई प्रमाण नहीं है। यदि विधियों के साथ एकवाक्यता की अनुपपत्ति से शक्यार्थ छोड़ कर लक्ष्यार्थ ग्रहण करने में एकवाक्यता को ही प्रमाण कहें, तो यह प्रश्न होगा कि एकवाक्यता ही क्यों हों? यदि लक्षणा द्वारा स्तुति का विधि के साथ सम्बन्ध है, अत: लक्षणा ही एकवाक्यता में प्रमाण है, तव तो अन्योन्याश्रय दोष अनिवार्य होगा। बिना एकवाक्यता के लक्षणा नहीं और बिना उसके एकवाक्यता नहीं।' उसका उत्तर यह है कि अर्थवाद धर्म मूल है, अत: धर्म-मूलता की उपपत्ति के लिए वे वाच्यार्थ को, छोड़कर लक्षणा से विधेय की स्तुति करते हैं। जैसे "यह घट है" इस वाक्य से पुरुष की किसी क्रिया में प्रवृत्ति नहीं होती, इसी तरह सिद्ध अर्थ के वोध से यज्ञादि में पुरुष प्रवृत्ति नहीं होती। अतएव लक्षणा से स्तुति रूप अर्थ का विधि के अर्थ से सम्बन्ध होता है। तभी एकवाक्यता से अर्थवाद धर्म में प्रमाण होते हैं।

कहा जाता है कि 'यष्टियों को भोजन कराओ, यहाँ तो यष्टि और भोजन का सम्बन्ध स्पष्ट है, अत: लक्षणा से यष्टि का अर्थ यष्टि वाला होना ठीक ही है। परन्तु अर्थवाद का तो यज्ञ या यज्ञ कारण कोई भी अर्थ नहीं है, तव उनके अर्थ से किसी पुरुषार्थ की कल्पना ही नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में अर्थवाद को पुरुषार्थ या धर्म का मूल भी कैसे माना जाय? फिर धर्ममूलता के उपपादन के लिए लक्षणा से उनका स्तुति रूप अर्थ क्यों माना जाय?' इसका समाधान यही है कि जैसे लौकिक अर्थवाद 'यह गौ अच्छी है' इत्यादि गोक्रयण द्वारा दुग्ध आदि पुरुषार्थ प्राप्ति का मूल है, उसी तरह वैदिक अर्थवाद भी लक्षणा से यज्ञ स्तुति द्वारा यज्ञ में प्रवृत्त करा कर यज्ञ फलरूप पुरुषार्थ का मूल होता है। अत: धर्म-मूलत्व अर्थवाद में स्पष्ट है। फिर उसकी उत्पत्ति के लिए अर्थवाद की स्तुति में लक्षणा क्यों न हो?

फिर भी कुछ लोगों का कहना है कि 'लौकिक अर्थवाद-वाक्यों का निर्माता तो कोई पुरुष होता है और वह प्रमाणान्तर से अर्थों को समझता है। अत: लौकिक अर्थवादों की प्रमाणता अन्य प्रमाणों के अधीन है। इसीलिए वक्ता का तात्पर्य स्तुति में समझ कर वाच्यार्थ छोड़कर स्तुति में अर्थवादों की लक्षणा मानी जाती है। परन्तु वैदिक अर्थवाद तो अपौरुषेय वाक्य है, उनका अर्थ अन्य प्रमाणों से ज्ञात नहीं होता। जैसे वायु का देवता होना, शीघ्र ही ऐश्वर्य देना, आदि। इससे वक्ता के तात्पर्य और प्रत्यक्षादि प्रमाण के अनुसरण से भी उनके वाच्यार्थ का भङ्ग नहीं हो सकता और न लक्षणा ही हो सकती है। अत: उनके अक्षरों से जो अर्थ निकले, वही अर्थ मानना चाहिए।'

कहा जाता है कि साधारण चिकित्सा—शास्त्र आदि के वाक्यों का भी मुख्य अर्थ छोड़ कर लक्षणा से मनमाना अर्थ नहीं किया जाता। शास्त्रकारों की सत्यवादिता पर विश्वास के कारण ही लोग उनके वाक्यों का अर्थ समझते हैं। फिर निर्दोष अपौरुषेय वैदिक अर्थवादों के वाच्यार्थ का त्याग कैसे किया जा सकता है? स्वत: वैदिक अर्थवादों की विधि के साथ एकवाक्यता झलकती नहीं। अर्थवाद पुरुषार्थ के सहकारी हैं; इसमें कोई प्रमाण नहीं मिलता। फिर एकवाक्यता भी कैसे हो?'

परन्तु यह सव कहना ठीक नहीं है। क्योंकि "तुल्यञ्च साम्प्रदायिकम्"। अनादि सम्प्रदाय-परम्परा से सिद्ध होना और अनध्याय में न पढ़ने आदि का नियम जैसे विधि भाग में पाला जाता है, वैसे ही अर्थवाद भागों में भी पाला जाता है। अत: अर्थवाद की ही कौन कहे, वेद का सभी अंश धर्म में प्रमाण है। धर्म के प्रति प्रमाण होना ही पुरुषार्थ का सहकारी कारण होना है। अर्थवाद यदि पुरुषार्थोपयोगी न होता, तो विचारशील पुरुष अनादिकाल से आदरपूर्वक उसका अध्ययन ही न करते। बिना प्रमाण के उन अध्येताओं को अज्ञानी कहना भी सिवा मोह के और क्या है? इस तरह पुरुषार्थ के उपकारक अर्थवादों की लक्षणा द्वारा अवश्य ही स्तुति-अर्थ मानकर विधि-वाक्यों से एकवाक्यता करनी चाहिए।

यहाँ शङ्का की जाती है कि 'क्या अर्थवादों की पुरुषार्थ सम्वन्धिता अपने आदर और परिश्रम की अन्यथानुपपत्ति से मानी जायगी, अथवा अन्य लोगों के आदर आदि से? पहले पक्ष में तो अन्योन्याश्रय होगा, क्योंकि पुरुषार्थ सम्बन्धित्व ज्ञान से ही अध्ययनादि में आदर होगा और आदर से ही उनकी पुरुषार्थ सम्वन्धिता मानी जायगी। यदि अन्य लोगों के आदर से ऐसी कल्पना करें तो मूल प्रमाण के बिना वह भी अन्धपरम्परा

ही समझी जायगी। जैसे किसी अन्धे ने कह दिया 'दूध काला होता है' उसे सुनकर दूसरे तीसरे एवं अनेक अन्धे कहने लग जायें, तो क्या इतने से ही दूध काला हो जायेगा ?

'परन्तु स्पष्ट है कि श्वेत या काले दूध के ज्ञान के मूल चक्षु प्रमाण के बिना यह कहना और मानना व्यर्थ ही है। इसी तरह किसी को अर्थवादों का आदर करते या पुरुषार्थमूल मानते देख या समझकर अन्यान्य लोग भी वैसा ही मानने लगते हैं; परन्तु जब तक कोई मूल प्रमाण न मिले, तब तक उनकी पुरुषार्थमूलता मानना अन्धपरम्परा ही है। अनुमान या प्रत्यक्ष किसी से भी मन्त्रार्थवादों में पुरुषार्थमूलता नहीं सिद्ध होती। ऐसा कोई वेद वाक्य भी नहीं है, जिससे अर्थवादों की पुरुषार्थमूलता सिद्ध हो। यदि हो, तो भी उसे पहले अपनी पुरुषार्थमूलता और प्रमाणता सिद्ध करनी होगी। क्योंकि जो स्वयं ही अप्रमाण है, उससे दूसरे की पुरुषार्थमूलता आदि कैसे सिद्ध होगी ? स्वयं अपने में प्रमाण का व्यापार नहीं होता, अतः उस वेद वाक्य से उसकी पुरुषार्थ सम्बन्धिता या प्रमाणता भी सिद्ध नहीं हो सकती। अतः अर्थवादों की पुरुषार्थानुबन्धिता स्तुति में लक्षणा, विधि के साथ एकवाक्यता आदि कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता।'

इन शङ्काओं का समाधान यह है कि 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' यह विधि वाक्य ही वेद के सभी अंशों की पुरुषार्थ साधनता में प्रमाण है। यह अपने सहित समस्त वेद वाक्यों को पुरुषार्थमूल सिद्ध करता है। इसका अर्थ है—वेद का अध्ययन अवश्य ही करे। अतः वेद में एक अक्षर या मात्रा की भी निरर्थकता नहीं कही जा सकती। फिर शब्दसमूह रूप मन्त्र, अर्थवाद कैसे निरर्थक होंगे ? जिसकी निरर्थकता होती है, उसके अध्ययन में विवेकियों को विधिवाक्य प्रवृत्त नहीं करा सकता जब वह समस्त वेद के अध्ययन में विवेकियों को प्रवृत्त कराता है, तो किसी भी अंश की पुरुषार्थ शून्यता नहीं हो सकती।

इस पर लोगों का कहना है कि 'इस तरह अर्थवाद आदि की सार्थकता मान लेने पर भी इस वाक्य से यह तो नहीं सिद्ध होता कि अर्थवाद आदि किस तरह पुरुषार्थ के साधक हैं। अतः यही मान लेना बहुत है कि उनके पाठ से कुछ अदृष्ट या घृतकुल्यादि फल प्राप्त होता है। परन्तु उनके अर्थ ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। फिर स्तुति में लक्षणा, विधि के साथ एकवाक्यता आदि की बात तो दूर ही हो जाती है।'

इसका समाधान यह है कि जैसे इसी अध्ययन विधि से विधि-वाक्यों की सफलता के लिए उनका अपने अर्थ का ज्ञान कराकर, उसी के द्वारा यज्ञादि क्रियाओं का अनुष्ठान कराकर, स्वर्गादि अलौकिक पुरुषार्थ का साधन करना आदि अर्थ निकाला जाता है। जैसे 'व्रीहीन् अवहन्ति' (धान को कूटें) इस विधि को नियम विधि इसलिए मानना पड़ता है कि पुरोडाश के लिए व्रीहि से तण्डुल बनाना आवश्यक है। वह जैसे कूटने से हो सकता है; वैसे ही नख विदलनादि द्वारा भी हो सकता है। तण्डुल बनाने के ये दोनों ही उपाय लौकिक दृष्टि से ही प्राप्त हैं। परन्तु विधि लोक से अप्राप्त में ही होती है—विधिरत्यन्तमप्राप्तौ'। जब यहाँ लोक दृष्टि से ही चावल के लिए व्रीहि का अवघात प्राप्त है, तब तो उसके विधान के लिए अपूर्व विधि नहीं हो सकती। अतः 'नियमः पाक्षिके सति,' पाक्षिक प्राप्ति में नियम होता है; इस दृष्टि से अवघातेनैव तण्डुल निष्पत्तिं कुर्य्यात् न तु नखविदलनादिना' इस नियम विधि से सिद्ध किया गया कि अवघात से ही निष्पन्न तण्डुल के द्वारा किये गये पुरोडाश से साध्य यज्ञादि से स्वर्ग होगा; नख विदलनादि से निष्पन्न तण्डुल द्वारा किये गये यज्ञ से नहीं। इसी तरह उक्त 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' यह अध्ययन विधि विधिवाक्य रूप वेद भाग के विषय में नियमविधि रूप से लागू होती है; क्योंकि साधारण रूप से किसी भी ग्रन्थ का अर्थज्ञान करने के लिए उसका अध्ययन अन्वय-व्यतिरेकादि लौकिक युक्तियों से प्राप्त होता है। इसके लिए विधि निरर्थक है। फिर तो नियम से ही विधि की सार्थकता हो सकती है। वह नियम इस तरह का बनता है कि 'गुरुपूर्वक अध्ययन से ही वेदों को पढ़कर उनके अर्थों को जानकर, किये यज्ञों से स्वर्गादिरूप पुरुषार्थ की सिद्धि होती है।' व्याकरण, निरुक्त आदि द्वारा उनका अपने-आप अर्थ जानकर किये गये यज्ञों से स्वर्गादि नहीं होते। जैसे विधि वाक्य वेद हैं, वैसे ही अर्थवाद और मन्त्र भी वेद हैं। अतः उनके विषय में भी अध्ययन विधि को नियमविधि ही होना चाहिए। परन्तु यदि अक्षर पाठ मात्र द्वारा उनकी पुरुषार्थ साधकता मानी जायगी, तब तो वह व्याकरण, निरुक्तादि द्वारा अर्थ ज्ञान की तरह मानान्तर से प्राप्त नहीं है। "अतः स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" से ही अर्थवादादि की अक्षर पाठ द्वारा अदृष्ट साधकता सिद्ध होगी। इस दृष्टि से अर्थवाद आदि अंशों में "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" विधि अपूर्व-विधि समझी जायगी।

कहा जायगा कि 'तब क्या हानि है, विषयभेद से अध्ययन विधि को अपूर्व और नियम दोनों ही विधि मान लें परन्तु यह कहना ठीक नहीं क्योंकि 'सकृदुच्चरितः शब्दः सकृदेवार्थं गमयति' इस न्याय के अनुसार एक बार उच्चरित शब्द एक ही अर्थ का बोध कराता है। अतः एक ही विधिवाक्य से विधि आदि के अंग से नियमविधि और मन्त्र—अर्थवाद के विषय में अप्राप्तांश का विधान ये दोनों अर्थ बोधित होंगे, यह नहीं कहा जा सकता।

कहा जाता है कि जब विधि वाक्यों और अर्थवादादि वाक्यों, दोनों के ही अध्ययन का विधान 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इसी एक विधि से ही करना है तब विधि-अंश में नियम विधि मानने का ही आग्रह क्यों किया जाय ? सर्वत्र ही पाठ मात्र से पुरुषार्थ प्राप्त है ही। विधिमन्त्र अर्थवाद सभी के अध्ययन का विधान अपूर्व ही क्यों न मान लिया जाय ? तात्पर्य यह है कि वेद का अध्ययन-विधान उसके किसी भी भाग के अर्थज्ञान द्वारा पुरुषार्थ प्राप्ति के लिए न मानकर पाठ द्वारा ही सभी भाग का फल प्राप्त्यर्थ क्यों न माना जाय ? इस पर मीमांसकों का कहना है कि अध्ययन का अर्थ ज्ञान रूप दृष्ट (लोकसिद्ध) फल है, परन्तु अक्षरपाठ का कोई दृष्टफल लोक प्रसिद्ध नहीं है। ऐसी स्थिति में दृष्टफल को छोड़कर अदृष्टफल की कल्पना करना अनुचित है। तस्मात् अध्ययन विधि का अर्थज्ञान रूप दृष्ट ही फल मानना उचित है। यथा—"सम्भवति दृष्टफलकत्वेऽदृष्टफलकल्पनाया अन्याय्यत्वात्"। परन्तु जब कि वह लोक से ही प्राप्त है, तब अध्ययन विधि को नियम विधि मान गुरु परम्परा के द्वारा अर्थ जाने बिना यज्ञादि का अनुष्ठान न करना चाहिए' इस निषेध में अवश्य ही उसका तात्पर्य मानना

चाहिए। इस स्थिति में विधि की तरह अर्थवाद-मन्त्र में अर्थज्ञान द्वारा ही स्वर्गादि-साधकता माननी चाहिए। यदि आवश्यक विधि का अर्थज्ञान हो मुख्य फल माना जाय तब सन्देहविरोधादि मिटाने के लिए तत्प्रयुक्त वेदार्थविचार रूप पूर्वोत्तर मीमांसा का उत्थान हो सकता है। अन्यथा पाठ से ही पुरुषार्थ सिद्ध हो जाने पर वेदार्थ-विचार के लिए मीमांसा की अपेक्षा ही क्या रह जाती है ? अतः जैसे अध्ययन विधि वेद के अध्ययन का विधान करती हुई वेद में प्रामाण्य सिद्ध करती है; वैसे ही वेदार्थ के विचार का विधान करती हुई वही अध्ययन-विधि मीमांसा दर्शन में भी प्रामाण्य सिद्ध करती है। इस तरह जब अध्ययन विधि के बल पर ही समस्त वेद स्वर्गादि-रूपी पुरुषार्थ के साधक हैं; तब उसके ही भाग मन्त्र और अर्थवाद पुरुषार्थ साधक क्यों न होंगे ?

इसपर कहा जाता है कि "अध्ययन विधि से वेद के अध्ययन का विधान होता है। 'वेद पुरुषार्थ का साधन है' यह तो उसके किसी भी अक्षर से नहीं निकलता। स्वयं अध्ययन की परिश्रमरूप दुःख से प्राप्त होने से पुरुषार्थ नहीं कहा जा सकता। विधि या अर्थवाद के किसी भी वाक्य के अध्ययन में पुरुषार्थ-रूपता या पुरुषार्थ-साधकता नहीं कही जा सकती।" परन्तु विचार करने से विदित होगा कि उपर्युक्त कथन ठीक नहीं है। 'अध्येतव्यः' शब्द में आये हुए 'तव्य' प्रत्यय का अर्थ 'भावना' (करना) है। उसमें क्या (किसे) करें ? इस तरह अब (किसी अभीष्ट) की आकाङ्क्षा होती है। 'अध्येतव्यः' इस पद में 'तव्य' से भिन्न 'अधि'+इ(अधि उपसर्ग पूर्वक ईङ्)धातु से बचा रहता; है जिसका अर्थ अध्ययन (पढ़ना) होता है। यदि उस अध्ययन से भाव्याकाङ्क्षा की पूर्ति हो, तब तो 'अध्येतव्यः' का अध्ययन करें, ऐसा अर्थ निकलता है। परन्तु जब अध्ययन स्वयं कष्ट रूप है; फलतः पुरुषार्थ नहीं है, तब उसकी भावना में सहस्रों उपदेशों से भी पुरुष क्यों प्रवृत्त होगा ? चूँकि उपदेशों का फल पुरुष प्रवृत्ति ही है, अतः यदि "अध्येतव्यः" इस उपदेश से पुरुष की अध्ययन में प्रवृत्ति न हुई, तब तो यह उपदेश ही व्यर्थ होगा। अतः अध्ययन को भाव्याकाङ्क्षा का पूरक न मान कर साधनाकाङ्क्षा का ही पूरक मानना चाहिए। क्योंकि भावना (करने) को क्या (किसे) करें ? किससे करें और कैसे करें ? इस तरह साध्य, साधन और इतिकर्तव्यताकाङ्क्षाएँ होती हैं।

जब अध्ययन का अन्वय 'साधनाकाङ्क्षापूरकत्वेन' हो गया, तब 'अध्येतव्यः' का "अध्ययन से सिद्ध करें" ऐसा अर्थ हुआ, फिर भी अभी साध्याकाङ्क्षा बनी ही है। यदि अध्ययन-साध्य अक्षर ग्रहण से उसकी पूर्ति करें, तब अध्ययन से अक्षर ग्रहण करें—'अध्येतव्यः' का ऐसा अर्थ होगा। परन्तु तो भी व्यर्थ होगा। क्योंकि अक्षर-ग्रहण भी स्वयं पुरुषार्थ नहीं है। अक्षर-ग्रहण से भी, क्या करें ? यह आकाङ्क्षा फिर भी बनी ही रहती है। यदि अध्ययन से अक्षरग्रहण और उससे स्वर्गादि अदृष्ट फल मानें अर्थात् अध्ययन से अक्षर ग्रहण द्वारा स्वर्गादि फल की प्राप्ति—ऐसा 'अध्येतव्यः' विधि का अर्थ करें, तब भी 'अश्रुत एवं अदृष्ट फल की कल्पना और अक्षर ग्रहण से उसकी सिद्धि'—ये दो कल्पनाएँ करनी पड़ेंगी। यदि अक्षर ग्रहण से परे वाक्यज्ञान की कल्पना करें तो वह भी स्वयं अपुरुषार्थ है। अतः वहाँ भी 'उससे क्या करें ?' ऐसी आकाङ्क्षा बनी ही रहेगी। इस तरह जब तक पुरुषार्थ से साध्याकाङ्क्षा की पूर्ति नहीं होगी, तब तक पुरुष की प्रवृत्ति न होगी और उपदेश भी तब तक व्यर्थ ही रहेगा। अतः अन्त में अदृष्ट स्वर्गादि फल से ही साध्याकाङ्क्षा की पूर्ति करनी होगी। वहीं से साध्याकाङ्क्षा की निवृत्ति होगी।

साधन में तो 'उससे क्या करें?' इस तरह साध्य की आकाङ्क्षा होती है। परन्तु 'फल या सुख से क्या करें ?' ऐसी आकाङ्क्षा नहीं होती। इस तरह अध्ययन विधि का अब यह आकार होगा कि 'अध्ययन से यथाक्रम अक्षर ग्रहण, पदज्ञान वाक्यार्थज्ञान तथा यज्ञानुष्ठान के द्वारा स्वर्गरूपी पुरुषार्थ प्राप्त करें'। यज्ञों से स्वर्ग का होना 'श्रुत' है। यज्ञादि के बिना केवल अध्ययन से ही स्वर्ग कल्पना अयुक्त है। स्वर्ग सुख साधन होने से ही यज्ञों में भी पुरुषों की प्रवृत्ति होगी। इस रीति से यज्ञानुष्ठान के कारण वाक्यार्थज्ञान और उसके कारण पदज्ञान, अक्षर ग्रहण और अध्ययन से भी पुरुष की प्रवृत्ति हो सकेगी।

साक्षात् या परम्परा से जो पुरुषार्थ का कारण होता है; उसी में पुरुष की प्रवृत्ति होती है। अतः एक ही पुरुषार्थ रूप साध्य या भाव्य अपने साक्षात् कारण यज्ञानुष्ठान और परम्परागत कारण वाक्यार्थज्ञान, पदज्ञान, अक्षरग्रहण और अध्ययन सर्वत्र प्रवृत्ति करा देगा, अध्ययन विधि की सार्थकता तभी सिद्ध होती है। सम्पूर्ण विधि वाक्यों की यही रीति है। पुरुषार्थ लाभ के बिना किसी भी विधि वाक्य की भाव्याकाङ्क्षा पूर्ण नहीं होती और उसके बिना विधि की चरितार्थता भी नहीं। इस तरह जब अध्ययन विधि से यह सिद्ध हो चुका है कि समस्त वेद अर्थज्ञान द्वारा ही पुरुषार्थ के साधक होते हैं, तब तो अर्थवादादि वाक्यों का भी ऐसा ही अर्थ ज्ञान होना आवश्यक है, ताकि उनके ज्ञान द्वारा परम्परया पुरुषार्थ का लाभ हो। जब अर्थवादों का वाच्य अर्थ ऐसा नहीं है, तब 'लक्षणा' से स्तुति रूप अर्थ लेकर विधिवाक्य के साथ उनकी एकवाक्यता समझनी चाहिए।

कहा जाता है कि जैसे 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत' (वसन्त ऋतु में ब्राह्मण अग्न्याधान करे) इस विधि की भाव्याकाङ्क्षा आहवनीय (होम योग्य अग्नि विशेष) से ही पूर्ण हो जाती है, जो कि स्वयं पुरुषार्थ नहीं है। इसी तरह अपुरुषार्थरूप अक्षर ग्रहण से ही 'अध्येतव्यः' इस विधि की भाव्याकाङ्क्षा क्यों न पूर्ण की जाय ? परन्तु यह ठीक नहीं; क्योंकि आधान विधि तो अङ्गविधि है। 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्ग कामः' इस प्रधान विधि के भाव्य स्वर्गफल से ही वह भी फलवान है। अतः उसे पुरुषार्थ की आकाङ्क्षा नहीं है। अतएव वहाँ अपुरुषार्थ, किन्तु परम्परया पुरुषार्थ से उपयुक्त आहवनीय (अग्नि) से भी भाव्याकाङ्क्षा की पूर्ति मानी जाती है। किन्तु 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' यह अध्ययन विधि तो प्रधान विधि है। अतः इसकी भाव्याकाङ्क्षा बिना पुरुषार्थ के पूर्ण नहीं हो सकती।

इस पर भी शंका होती है कि "यदि पुरुषार्थ से ही विधि की भाव्याकाङ्क्षा पूर्ण होती है, तब तो अध्ययन विधि का साक्षात् ही स्वर्ग रूप फल क्यों न मान लिया जाय ? फिर वाक्यार्थज्ञान आदि की कल्पना क्यों की जाती है ?" इसका उत्तर यही है कि जब अक्षरग्रहण, पदज्ञान, वाक्यार्थज्ञान तथा यज्ञानुष्ठान के द्वारा अध्ययन विधि का स्वर्गरूप पुरुषार्थ में पर्यवसान हो ही जाता है, तब अध्ययन का स्वतन्त्र स्वर्गफल मान कल्पना गौरव

क्यों स्वीकार किया जाय ? दृष्ट फल के संभव होते अदृष्ट फल की कल्पना करना अनुचित है। इसलिए लोकानुभवानुसार यज्ञ द्वारा ही अध्ययन को स्वर्ग का हेतु मानना उचित है।

जिस व्यापार के बाद जिसकी उत्पत्ति होती है उसका वही फल होता है। जैसे कुठार चलाने का 'द्वैधीभाव फल' समझा जाता है। इसी तरह अध्ययन से अर्थज्ञान होता है, अतः वह दृष्टानुसारी अध्ययन का फल कहा जा सकता है। यद्यपि यह भी कहा जा सकता है कि 'इस तरह तो होम विधि का भी अग्नि से हवि आदि का प्रक्षेप ही फल मानना चाहिए, फिर वहाँ भी अदृष्ट स्वर्गादि फल क्यों माना जाय ?' पर यह ठीक नहीं, क्योंकि जो साक्षात् स्वयं ही पुरुषार्थ हो या पुरुषार्थ का साधन हो, वही फल हो सकता है। जिस विधि वाक्य में भाव्य की आकाङ्क्षा को पूर्ण करने के लिए अनेक क्रमिक पदार्थों की कल्पना से पुरुषार्थ लाभ हो सकता है, वहाँ उसी पुरुषार्थ में मध्यवर्ती दृष्ट पदार्थों द्वारा अदृष्ट फल से विधि की सफलता होती है। इसी से वहाँ अदृष्ट पुरुषार्थ साक्षात् प्रयोजन नहीं माना जाता। जैसे अध्ययन विधि से दृष्ट अक्षरग्रहणादि द्वारा अदृष्ट स्वर्ग फल का लाभ हो सकता है। परन्तु होम विधि में तो होम के अनन्तर हवि का अग्नि से गिरना या जलना ही है। वह न स्वयं पुरुषार्थ ही है और न पुरुषार्थ का साधन। ऐसी स्थिति में वहाँ अगत्या होम का अदृष्ट ही साक्षात् पुरुषार्थ फल माना जाता है। ऐसा विना माने होम में किसी की प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

कहा जाता है कि 'अध्ययन विधि में अध्ययन का अक्षर ग्रहण फल हो सकता है, क्योंकि वह अध्ययन का समीपवर्ती है। पूर्वोक्त रीत्या उसका परम्परया पुरुषार्थ से सम्बन्ध भी है। इसी तरह होमादि के समान अध्ययन का भी अदृष्ट स्वर्गादि भी साक्षात् फल हो सकता है। परन्तु वाक्यार्थज्ञान अध्ययन का फल कैसे हो सकता है ? क्योंकि वह तो न अध्ययन के अनन्तरभावी है, न स्वयं पुरुषार्थ ही है।'

यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि सभी विधि वाक्यों के विषय में मीमांसा में ऐसा विचार है कि 'व्रीहीनवहन्ति' इस विधिवाक्य में व्रीहि का कूटना कहा गया है, जिसका फल भूसी मिटाना प्रत्यक्ष ही है। किन्तु वह पुरुषार्थ नहीं है अतः उससे पुरुष प्रवृत्ति के लिए पुरुषार्थ रूप भाव्य की आकांक्षा शान्त नहीं होती। उस आकांक्षा के पुरुषार्थ पर्यवसान से पहले ही याग के लिए पुरोडाश का स्वर्गादिरूपी पुरुषार्थ के लिए यज्ञोंका अन्य विधि वाक्यों से विधान होता है। अतएव उक्त पुरोडाशादि ही यज्ञ का और यज्ञादिक ही पुरुषार्थ का साधक होता है। अवघातादिक तो इन दोनों में से किसी का भी साधन नहीं है, इसी से उसका पुरुषार्थ में पर्यवसान नहीं होता। किन्तु अवघातादि से पुरोडाश और यागादिरूपी साधनों का ही उपकार होता है। अवघात से लेकर पुरोडाश निर्माण तक जिन कार्यों का विधान होता है, जैसे 'तण्डुलान् पिनष्टि' (तण्डुल पेषण आदि), वे सब पुरोडाशादि की सिद्धि के लिए अवघातादि के द्वार अर्थात् व्यापार मात्र हैं। क्योंकि विना पेषणादि व्यापार के अवघातादि से पुरोडाश की सिद्धि ही नहीं हो सकती। इसी कारण पेषणादि का भी पुरुषार्थ में पर्यवसान नहीं होता। यह भी नहीं कह सकते कि 'पेषणादि अवघात और पुरोडाश के फल हैं।' ऐसा तब हो सकता है जब अवघातादि के विधान से प्रथम ही यह ज्ञात होता कि पेषणादि के फल पुरोडाशादि हैं।

यहाँ तो अवघातादि का ही विधान प्रथम है। पुरोडाश जिनसे बनता है उन व्रीहियों के ही अवघात का विधान है। इससे प्रथम यही ज्ञात होता है कि अवघातादि पुरोडाशादि के साधक हैं। तब यह जिज्ञासा होती है कि किस व्यापार से ? इसी जिज्ञासा को पेषण विधि पूर्ण करती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पुरोडाशादि पेषण का फल नहीं, किन्तु अवघातादिक का ही है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि यदि अवघातादि रूप अङ्गविधियों से पुरुषार्थ का पर्यवसान नहीं है, तो होमविधियों में भी अदृष्ट पुरुषार्थ की कल्पना नहीं होनी चाहिए। क्योंकि हवन किये हुए द्रव्य के भस्मीभाव में लोग श्रद्धा करते हैं। उस श्रद्धा के अनुसार यह भी विधि बन सकती है कि 'हुतं द्रव्यं भस्मीकुर्यात्' (होम किये हुए द्रव्य को भस्म कर दें) भस्मीभाव में अदृष्टफल-साधनता अवगत है, अतः भस्मीभाव भी फलरूप है। ऐसी दशा में जब होम-विधि के समीप कोई अदृष्ट पुरुषार्थ रूपी फल नहीं कहा गया है, तब इस भस्मीभाव रूप अदृष्ट फल से ही होम की भाव्याकाङ्क्षा पूर्ण हो सकती है। अदृष्ट पुरुषार्थ की कल्पना में कोई प्रमाण नहीं है।' परन्तु उक्त कथन ठीक नहीं है; क्योंकि हविर्दाह में श्रद्धा इसलिए होती है कि हवि के वैसे ही अदग्ध रहने पर अस्पृश्यस्पर्शन आदि से यज्ञ के वैगुण्य दोष आ सकते हैं। ऐसी स्थिति में वैगुण्य-निवारणार्थ उस विधि के विना भी दाह-श्रद्धा की उपपत्ति हो सकती थी। तब श्रद्धा से 'हुतं द्रव्यं भस्मीकुर्यात्' इस विधिवाक्य की कल्पना को कहाँ अवकाश रहता है ? कथंचित् उक्त विधि कल्पना मान लें, तो भी भस्म होना होम का फल नहीं कहा जा सकता है। किन्तु अदृष्टरूपी पुरुषार्थ की उत्पत्ति में दाह की श्रद्धा को होम का व्यापार मात्र मान लेने से अनुमित विधि चरितार्थ हो सकती है। सारांश यही है कि 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि प्रधान विधि-वाक्यों की अध्ययन विधि उनके अर्थों के ज्ञान और अनुष्ठान के द्वारा पुरुषार्थ पर्यन्त पहुँचाती है। उक्त न्याय से जैसे पुरोडाश की सिद्धि के लिए विहित व्रीहि के अवघात का फल पुरोडाश ही है; वैसे ही वाक्यार्थ ज्ञान के लिए विहित वेदाध्ययन का फल वाक्यार्थ ज्ञान ही है। जैसे पुरोडाश स्वयं पुरुषार्थ न होने पर भी यज्ञ द्वारा पुरुषार्थ का साधक होने से अवघात का फल होता है, वैसे ही यज्ञ द्वारा पुरुषार्थ का साधक होने से वाक्यार्थज्ञान वेदाध्ययन का फल है। जैसे 'व्रीहीनवहन्ति' इस वाक्य के अर्थ से ही मालूम होता है कि पुरोडाश व्रीहि का फल है, वैसे ही अध्ययन विधि के अर्थ से ही वेदार्थ-ज्ञान अध्ययन का फल है—यह भी मालूम होता है। जैसे अवघात और पुरोडाश के मध्य में पेषणादि अवघात के फल नहीं हैं, किन्तु व्यापार मात्र हैं; वैसे ही अध्ययन और वाक्यार्थ-ज्ञान के बीच अक्षर ग्रहणादि अध्ययन के फल नहीं, किन्तु अध्ययन के व्यापार मात्र हैं। तथा च अध्ययन विधि से विधि वाक्यों का अध्ययन, उनसे अक्षरग्रहण द्वारा वाक्यार्थ-ज्ञान, उससे यज्ञ और यज्ञ से स्वर्गादि पुरुषार्थ प्राप्त होता है।

'यदेव विद्या करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति'—ज्ञान से, श्रद्धा से किया गया कर्म वीर्यवान होता है। सारांश यह है कि समस्त वेद अपने ज्ञान के द्वारा ही पुरुषार्थ का साधक है। तस्मात् विधि वाक्यों से विहित यज्ञादि कर्मों की प्रशंसा के लिए ही अर्थवाद वाक्य सार्थक होते हैं। यद्यपि प्रशंसा अर्थवादों का वाच्यार्थ नहीं है, तथापि लक्ष्यार्थ अवश्य है। लक्षणा में प्रमाण 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' यह वाक्य ही है। इसका अर्थ है—अर्थज्ञान

के द्वारा समस्त वेद पुरुषार्थ का साधक है। अर्थवाद-वाक्य भी वेद के अन्तर्गत हैं। अतः वे भी अर्थज्ञान द्वारा पुरुषार्थ के साधक होने ही चाहिए। अर्थवादों का वाच्यार्थ सिद्धरूप है। अतः उसके ज्ञान से यज्ञादि क्रिया में पुरुष की प्रवृत्ति नहीं हो सकती, जिससे पुरुषार्थ सिद्धि हो सके। इसीलिए प्रवर्तक विधि वाक्यों के साथ अर्थवाद वाक्यों की एकवाक्यता होती है। एकवाक्यता से ही अर्थवादों में पुरुषार्थ-साधकता हो सकती है, वाच्यार्थ से एकवाक्यता सम्भव नहीं। अतः लक्षणा से प्रशंसा ही अर्थवादों का अर्थ होता है। "अतः प्रशस्तेनानेन यज्ञेन स्वर्गं भावयेत्।" यह यज्ञ प्रशस्त है; इसके द्वारा स्वर्ग भावन करना चाहिए, यह सारांश निकलता है।

फिर भी कहा जाता है कि 'यद्यपि पूर्वोक्त रीति से अध्ययन विधि से अर्थज्ञानपर्यन्त अध्ययन निश्चित होता है, परन्तु उसके बाद अध्ययन विधि निर्व्यापार हो जायगी। 'यदेव विद्यया करोति' इत्यादि श्रुति भी इतना ही बतलाती है कि वाक्यार्थज्ञान यज्ञ का साधन है, इसके अनन्तर यह भी निर्व्यापार हो जायगी। ऐसी स्थिति में वाक्यार्थज्ञान यज्ञ के द्वारा स्वर्गादि रूप पुरुषार्थ का साधक है—यह किस प्रकार सिद्ध हो गया ?' परन्तु इसका समाधान यही है कि जैसे 'अध्ययनेन' वाक्यार्थज्ञानं भावयेत्'—अध्ययन से वेदवाक्यों का अर्थज्ञान प्राप्त करें, यह अध्ययन विधि का व्यापार होता है और इससे वाक्यार्थज्ञान अध्ययन का फल सिद्ध होता है। इसी तरह 'यदेव विद्यया करोति' इस श्रुति के द्वारा भी 'ज्ञानेन कर्म भावयेत्' (ज्ञान से कर्म सम्पादन करे।) इस विधि की कल्पना होगी, उससे वाक्यार्थज्ञान की क्रत्वर्थता सिद्ध होगी। उसके अनन्तर "स्वर्गकामो यजेत्" आदि विधिवाक्यों से 'यागेनस्वर्गं भावयेत्' (याग से स्वर्ग की भावना करे) इस व्यापार द्वारा याग भावना-भाव्य होने से यज्ञादि का स्वर्गादि फल सिद्ध होता है। इस तरह यज्ञ की साक्षात् पुरुषार्थ साधकता एवं यागार्थ कर्मविधायक वैदिक वाक्यार्थज्ञान एवं ज्ञानार्थ वेदाध्ययन की भी परम्परा से पुरुषार्थसाधकता सिद्ध हो जाती है।

यहाँ कहा जाता है कि 'स्वर्गकामोयजेत' इत्यादि प्रधान विधि वाक्यों का तात्पर्य अपने अर्थज्ञान कराने में होने से अध्ययन विधि का उनके अर्थज्ञान कराने में पर्यवसान हो सकता है, परन्तु "व्रीहीनवहन्ति" (धान कूटे) इत्यादि अङ्ग विधियों के अर्थज्ञान में अध्ययन विधि का पर्यवसान नहीं हो सकता क्योंकि उनका तात्पर्य अपना अर्थज्ञान कराने में समाप्त नहीं होता जैसे प्रधान विधियों के बल से मन्त्रों के अर्थ और शब्द दोनों गृहीत होते हैं। अतएव कर्म के समय मन्त्रों का पाठ होता है। इसी तरह प्रधान विधि वाक्यों के बल से अङ्ग-विधियों का भी स्वार्थ प्रतिपादन मात्र में तात्पर्य नहीं है, किन्तु स्वाक्षरपाठ में भी तात्पर्य होगा। इस दृष्टि से जैसे मन्त्रों के सम्बन्ध में "अध्ययनेनार्थं ज्ञात्वा पाठं भावयेत्" (अध्ययन से अर्थ जानकर पाठ करें) इस प्रकार अध्ययन विधि का समन्वय होता है, उसी प्रकार अङ्ग-विधियों से भी समन्वय होगा। निष्कर्ष यह है कि अध्ययन विधियों का अर्थ-ज्ञान-पर्यन्त ही व्यापार होता है—यह नहीं कहा जा सकता।

पर इसका भी समाधान यही है कि मन्त्रों का कर्म के समय पाठ प्रधान-विधियों से नहीं ज्ञात होता किन्तु "उरू प्रथस्वेति पुरोडाशं प्रथयति, "उरू-प्रथस्व" (इस मन्त्र से पुरोडाश की प्रथा करे) इत्यादि अन्यान्य विधियों से ही मन्त्रों का पाठ प्राप्त होता है, परन्तु अङ्गविधियों के कर्मकाल में पाठ का विधायक कोई विधि वाक्य नहीं है। अतः अंग विधियों के सम्बन्ध में भी अर्थ ज्ञान पर्यन्त ही अध्ययन विधि का व्यापार होता है। 'समिधो यजति' इत्यादि प्रयाजादि वाक्य प्रयाज आदि की प्रधान कर्माङ्गता मात्र बोधन कराते हैं; उनका पाठ विधान नहीं करते हैं। प्रधान विधिवाक्य भी अंग विधियों के अक्षरपाठ में प्रमाण नहीं है, क्योंकि प्रधान विधि-विहित यज्ञ स्वर्गरूप अदृष्ट के साधक हैं, अतः उसे अदृष्ट उपकार की ही अपेक्षा है। उसकी पूर्ति प्रयाज आदि अङ्गयाग साध्य अदृष्ट से हो जाती है। अक्षर पाठ तो लोकदृष्ट ही है, उसमें प्रधान विधि का प्रामाण्य कथमपि नहीं है। अंगविधियों का उसके अर्थों के अनुष्ठान द्वारा यज्ञ में सम्बन्ध हो सकता है। तब बिना किसी प्रमाण के कर्मकाल में उनके पाठ की कल्पना कथमपि सङ्गत नहीं हो सकती। यदि बिना प्रमाण के भी पाठ-कल्पना हो सकती, तो "उरू प्रथस्वेति पुरोडाशं प्रथयति" इत्यादि विधिवाक्य व्यर्थ ही हो जाते।

इस पर भी कहा जाता है कि 'अध्ययन विधि तो समस्त वेद के लिए है, परन्तु वेदान्त-वाक्यों की तो यज्ञों में उपकारकता किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकती।' पर यह तर्क भी युक्तियुक्त नहीं है। कारण जैसे अन्याधान-विधिवाक्य दूर से ही यज्ञोपकारी होता है; उसी प्रकार वेदान्त वाक्य देह; इन्द्रियादि से भिन्न नित्य जीवात्मा का ज्ञान कराकर यज्ञोपकारी होते हैं। बात यह है कि नित्यात्मबोध के बिना देहात्मवादी प्राणी की पारलौकिक यज्ञादि में प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती।

यद्यपि कहा जा सकता है कि 'आत्मा का ज्ञान यज्ञादि की तरह क्रिया रूप नहीं है; अतः उसका विधान अध्ययन विधि से कैसे हो सकेगा ?' पर यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः" इत्यादि विधिवाक्यों से आत्मा की उपासना प्रतीत होती है। तदर्थ आत्मस्वरूप प्रतिपादन आवश्यक है और फिर उसके लिए वेदान्त वाक्य की सार्थकता है। अथवा सफल एवं निश्चित अर्थ का बोधक होने से समस्त वेदों का प्रामाण्य है। जैसे विधि वाक्य फलवान् निश्चित अर्थ के बोधक हैं, वैसे ही वेदान्त भी। वेदान्त-जन्य ब्रह्म-साक्षात्कार सकल अनर्थों का निवर्तक एवं परमानन्द का प्रापक होने से वेदान्त भी सफल ही है। इस प्रकार सफल स्वार्थ बोध के द्वारा वेद पुरुषार्थ का साधक है।

यद्यपि अर्थवादों के द्वारा किसी क्रिया का विधान नहीं होता, साथ ही स्वर्गादितुल्य किसी भाव्यांश क्रियाफल का भी प्रतिपादन अर्थवाद नहीं करते और न 'व्रीहीनवहन्ति' के तुल्य अर्थवादों के द्वारा इति कर्त्तव्यता का ही प्रतिपादन होता है तथापि विधि वाक्यों से विहित यज्ञ आदि की प्रशंसा ही अर्थवादवाक्यों का लक्ष्य अर्थ है। तभी विधि के साथ एकवाक्यता द्वारा 'प्रशस्तेनानेन यज्ञेन स्वर्गं भावयेत्' यह अर्थ निष्पन्न होता है।

• •

भारतीय संस्कृति एवं सनातन धर्म के महान् प्रचारक
धर्मसम्राट्

परमपूज्य स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज

की

७५वीं वर्षगाँठ पर

विनम्र प्रणाम करते हुए भगवान विश्वनाथ जी के चरणों में प्रार्थना है—
देश, धर्म और गोमाता की रक्षा के लिए
पूज्य श्रीचरण को दीर्घायु प्रदान करें

—**शिवदुलारे बाजपेयी**
८६।३२५ देवनगर, कानपुर
फोन—46777

शिवदुलारे बाजपेयी एण्ड सन्स

ग्रेन मर्चेन्ट एण्ड कमीशन एजेण्ट
७३।१६, कलक्टर गंज, कानपुर-208 001
फोन—69157

उच्चकोटि की दालों के निर्माता

- **राजनारायण सत्यनारायण दाल मिल**
- **श्री महादेव दाल मिल**

३४, नौबस्ता (हमीरपुर रोड), कानपुर
फोन—71302

औपनिषद विद्या-रहस्य

• अनन्त श्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज •

प्रसन्नता का विषय है कि 'सन्मार्ग' का 'वेदविशेषाङ्क' प्रकाशित हो रहा है। हमारे यहाँ 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' कहा गया है। उपनिषदों में भी कुछ तो मन्त्रों के और कुछ ब्राह्मणों के ज्ञानकाण्ड हैं। औपनिषद विषयों का समावेश इस अङ्क में उचित ही है।

उपनिषदों में ज्ञान, विज्ञान, विद्या आदि अनेक शब्द कहीं-कहीं पर्याय से हैं और पारमार्थिक ज्ञान अर्थात् ब्रह्मात्मैक्यावबोध के ज्ञापक हैं, किन्तु अनेकत्र विद्या तथा अविद्या पदों का एक विशिष्ट अर्थ है। ध्यान देने का विषय है कि अविद्या विद्या के अभाव का वाचक नहीं। ईशावास्योपनिषद् के—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥—ईश० ११॥

इस मन्त्र में विद्या का अर्थ है देवताज्ञान अर्थात् उपासना और अविद्या का कर्म। यहाँ स्पष्ट किया गया है कि स्वरूपभेद और फलभेद होने के कारण विद्या और अविद्या भिन्न हैं। यदि फलभेद न होता तो 'फलवत्सन्निधौ अफलं तदङ्गम्' इस न्याय के अनुसार इनका अङ्गाङ्गिभाव बन जाता, और फलतः श्रुति को इनके समुच्चय का विधान 'यस्तद्वेदोभयं सह' के द्वारा न करना पड़ता। इसके फलभेद को अधिक स्पष्ट रूप से—

'अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया।'—ईश० १०॥

आदि शब्दों से एक ही उपनिषद् में तथा अन्यत्र "कर्मणा पितृलोकः, विद्यया देवलोकः" बताया गया है। ईशोपनिषद् के मन्त्र—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥—ईश० ९॥

से ऐसा भ्रम हो सकता है कि 'अन्धन्तमः प्रवेश' विद्या तथा अविद्या का समानफल हो, किन्तु यथार्थ यह है नहीं। वस्तुतः यहाँ तो प्रत्येक की निन्दा है जिसका उद्देश्य है विद्या और अविद्या के अनुष्ठान का समुच्चय। मात्र निन्दा ही इस मन्त्र का लक्ष्य नहीं है। यहाँ अविद्या में नञ् है जिसका अर्थ निषेध नहीं अपितु पर्युदास है अर्थात् तद्भिन्न-तत्सदृश अर्थ में यहाँ नञ् है। वस्तुतः निन्दा का उद्देश्य यहाँ निन्द्य की निन्दा नहीं अपितु विधेय की स्तुति है। विद्वानों में प्रसिद्धि है कि—"यथा कश्चिद् रसिकः स्वीयां मुग्धां भार्यां कोपयितुं स्वशुनकं श्यालनाम्ना गालयति। साऽपि मद्भ्रातरं गालयति इति मत्वा कुप्यति। तत्र यथा तस्योद्देश्यं केवलं मुग्धायाः भार्यायाः कुपितभ्रुकुटिविलोकनमेव, तथैवात्र प्रत्येकस्य निन्दा भगवत्या श्रुत्या क्रियते।" इसी प्रकार उपनिषदों में ब्रह्मात्मैक्यावगति तथा उसके पर्यायों के अतिरिक्त जिन भी विषयों की हेयता प्रतिपादित है, वह सब ब्रह्मावगति के वैशिष्ट्य-निरूपणार्थ समझना चाहिये।

यहाँ 'विद्या' ब्रह्मात्मैकत्वभाव का वाचक नहीं है और न अविद्या विद्या के अभाव का अपितु विद्या से भिन्न भावात्मक स्थिति वाली अविद्या है। 'विद्यापद' यदि ब्रह्मात्मैक्यबोध का वाचक होता तो 'विद्यया देवलोकः, न तत्र दक्षिणा यन्ति,कर्मणा पितृलोक इति', सदृश श्रुतिवाक्य न कहे जाते। परमार्थज्ञान के बाद कहीं जाना-आना नहीं होता है, वह तो ब्रह्मभाव ही है। यहाँ यह कहना अनुचित है कि प्रकृत में विद्या का अर्थ परमार्थज्ञान और अविद्या का 'कर्म' लेकर दोनों का समुच्चय कर दिया जाये, क्योंकि प्रकृत होने से ही दोनों का सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता। यह भी देखना अनिवार्य है कि दोनों में सम्बन्धयोग्यता भी है अथवा नहीं। यथार्थतः शुद्धब्रह्मात्मैकत्व-विद्या कर्तृत्व आदि अध्यासों की उपमर्दिका है, अतः उसमें कर्म से सम्बन्ध की योग्यता है ही नहीं। दोनों के दो अन्त पृथक् पृथक् हैं। अतः यदि समुच्चय संभव है तो वह कर्म तथा उससे अविरुद्ध देवताज्ञान का ही हो सकता है।

अद्वैतवेदान्त सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक शङ्कर भगवत्पाद ने अपने प्रस्थानत्रयी के भाष्यों में अनेकत्र ज्ञान-कर्म-समुच्चय का खण्डन किया है और ज्ञान तथा कर्म दोनों को सर्वथा पृथक् सिद्ध किया है। ब्रह्मसूत्र (१।१।४) के अपने भाष्य में दोनों का अनेक प्रकार से अन्तर सिद्ध किया ही है गीताभाष्य (२।१०) में उनके वचन हैं—"तद् एतद् विभागवचनम् अनुपपन्नं स्यात्, यदि श्रौतकर्मज्ञानयोः समुच्चयोऽभिप्रेतः स्यात्।" वहीं अग्रिम श्लोक व्याख्या में (२।११) वह कहते हैं—"तस्मात् गीताशास्त्रे ईषन्मात्रेण अपि श्रौतेन स्मार्तेन वा कर्मणा आत्मज्ञानस्य समुच्चयो न केनचिद् दर्शयितुं शक्यः।" इसी प्रकार केनभाष्य (१।१), छान्दोग्यभाष्य की भूमिका तथा ग्रन्थमध्य (४।४।२२) में भी अनेक प्रकार से इस विषय का निरूपण करने पर भी 'विवेक-चूड़ामणि' में वह और भी सशक्त शब्दों में व्यक्त करते हैं—

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किञ्चित् कर्मकोटिभिः ॥
अर्थस्य निश्चयो दृष्टो विचारेण हितोक्तितः।
न स्नानेन न दानेन प्राणायामशतेन वा ॥
न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया।
ब्रह्मात्मैक्यावबोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा ॥—११, १३, ५८।

हाँ, यहाँ एक शङ्का हो सकती है कि उपनिषद् ब्रह्म प्रतिपादक हैं, अतः विद्या का अर्थ परमात्मज्ञान होना चाहिये न कि उपासना, क्योंकि इससे अनावश्यक प्रकरणभेद होगा। यह शङ्का वस्तुतः उचित नहीं है। उपनिषदों में प्राणाद्युपासना भी वर्णित है जो ब्रह्मज्ञान का अङ्ग नहीं है,

क्योंकि उन दोनों का फल भिन्न कहा गया है। जिस प्रकार कर्मकाण्ड में अग्निहोत्रादि प्रकरण से भिन्न व्याकृताव्याकृतोपासना का समुच्चय भी अधिकारी भेद से कर दिया गया है, उसी प्रकार उपनिषदों में भी अधिकारी-भेद से कर्म से अविरुद्ध और तद्विरुद्ध विद्याओं के उपकरणों का भी समावेश निरर्थक नहीं।

ब्रह्मात्मैकत्वबोध के अतिरिक्त अन्य समस्त विद्याओं का कर्म के साथ समुच्चय का विधान है। 'यद् विद्यया क्रियते तद्वीर्यवत्तरं भवति' सदृश वचन इस तथ्य के प्रतिपादक हैं। यहाँ विद्यापद में तृतीया विभक्ति से विद्या का क्रिया अर्थात् कर्म के साथ समुच्चय संभव है।

उपनिषदों में बहुत सी विद्याओं की गणना है। ईशोपनिषद् में परमार्थविद्या, कर्मसमुच्चितविद्या, विद्या-अविद्या, सम्भूति-असम्भूति, कठोपनिषद् में नाचिकेतविद्या, छान्दोग्य में प्राणविद्या, मन्थविद्या, उद्गीथविद्या, बहुविध सामविद्या, बृहदारण्यक की प्राणोपासना, मधुविद्या, वैश्वानरविद्या, पञ्चाग्नि विद्या, कौशीतकि की पर्यङ्कविद्या, परिमरविद्या आदि तो विख्यात हैं ही विविध रूपों में दहरविद्या और शाण्डिल्य विद्या भी उपनिषदों में प्रख्यात हैं। विभिन्न रूपों में 'प्रतीक' तथा 'सम्पद्' उपासनाएँ भी वर्णित हैं। ये सभी विद्यायें हैं और इनके पृथक्-पृथक् फल हैं। देखा जाता है कि एक ही विद्या का भिन्न-भिन्न शाखाओं में कुछ भेद से वर्णन है, किन्तु उनमें भेद नहीं है। नियम है कि एक शाखा में यदि कुछ गुण अधिक हैं और दूसरी में कम तो उन अधिक गुणों का दूसरी शाखा में उपसंहार किया जाना उचित है। महर्षि व्यास ने उपनिषदों के इस रहस्य को अपने 'ब्रह्मसूत्र' उपसंहारानुपसंहारन्याय' से उपनिबद्ध कर दिया है। उनके सूत्र 'उपसंहारोऽर्थाभेदाद् विधि शेषवत् समाने च' (ब्र० सू० ३।३।५) की व्याख्या में शङ्करभगवत्पाद ने और भी स्पष्ट कर दिया है कि—'स्थिते चैवं सर्ववेदान्त–प्रत्ययत्वे सर्वविज्ञानानामन्यत्रोदितानां विज्ञानगुणानामन्यत्रापि समाने विज्ञाने उपसंहारो भवति, अर्थाभेदात् य एव हि तेषां गुणानामेकत्रार्थो विशिष्ट विज्ञानोपकारः स एवान्यत्रापि उभयत्रापिहि तदेवैकं विज्ञानम्। तस्मादुपसंहारो विधिशेषवत्। यथा विधिशेषाणामग्निहोत्रादि धर्माणां तदेवैकमग्निहोत्रादि कर्म सर्वत्रेत्यर्थाभेदादुप संहारः, एवमिहापि। यदि हि विज्ञानभेदो भवेत्, ततो विज्ञानान्तर निबद्धत्वाद् गुणानां प्रकृति-विकृतिभावाभावाच्च न स्यादुपसंहारः। विज्ञानैकत्वे तु नैवमिति।"

परमार्थज्ञान भी विद्या है, पर उसे परा विद्या समझना चाहिये। मुण्डकोपनिषद् में इसी दृष्टि से विद्या के दो विभाग किये गये हैं। 'द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।' (मुण्डक १।१।४-५)। कर्म तथा उपासना के प्रधानतः प्रतिपादक होने से 'अपरा विद्या' की कोटि में आते हैं क्योंकि इनसे ब्रह्म से अतिरिक्त विषयों का ज्ञान या लाभ होता है। परा से उस तत्त्व का बोध होता है —

यत्तदद्रृश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वंगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥
(मुण्डको० १।१।६)

ब्रह्मविद्या के अधिकारी विरल हैं। उनके लिये उपनिषत्प्रतिपादित श्रवण, मनन आदि विहित है, किन्तु जिस प्रकार श्रुत्युक्त 'अपरा विद्याओं' में कर्म और उपासना का समुच्चय-विधान हैं उसी प्रकार पुराणोक्त विविध देवोपासनाओं का भी समुच्चित-अनुष्ठान ही उचित है। 'स्वधर्म' के साथ अपने इष्टदेव की आराधना करना ही यहाँ समुच्चित-अनुष्ठान है। 'स्वधर्म' अथवा 'निजधर्म' व्यक्ति का वर्णाश्रमधर्म है। अपने वर्ण और आश्रम का ध्यान रखते हुए तदनुसार विहित देवोपासना आदि विद्याकर्म करने से ही आत्ममङ्गल के साथ लोककल्याण होगा। 'स्वधर्म' को छोड़कर केवल देवोपासना भी 'अन्धतमः प्रवेश' अर्थात् अकल्याण का कारण बनता है। शास्त्रीय शब्दावली में कथित 'अधिकार' वस्तुतः व्यक्ति की पात्रता का वाचक है, उसके सामर्थ्य का ज्ञापक है। अपनी क्षमता का, स्वधर्म का आकलन किये बिना देवोपासन का शस्त्र उठाना आत्मघात ही है। ऐसा न करने से ही आज लोक में विविध सांकर्य, पाखण्ड, मिथ्याचार, कार्पण्य, दायित्वों से पलायन आदि अनन्त दोष व्याप्त हो रहे हैं और उनका परिणाम भी सामने ही है। इसी से स्मृतियों ने सावधान किया है—

अपहाय निजं धर्मं कृष्ण कृष्णेति वादिनः।
ते हरेर्द्वेषिणः पापा धर्मार्थं जन्म यद्धरेः॥

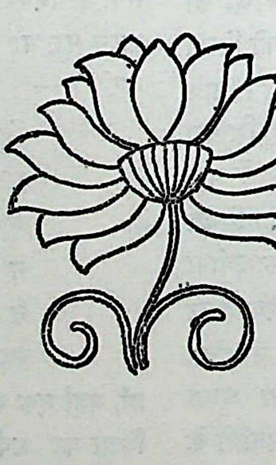

वेद की प्रामाणिकता

• स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज •

भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटवादि मानवोचित समस्त दोष शंकाओं से विनिर्मुक्त भगवन्निश्वासभूत वेद तत्त्व निर्णय में एकमात्र परम प्रमाण हैं। भागवत में यमदूतों ने स्पष्ट कहा है—

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।
वेदो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरिति शुश्रुम॥

वेदों ने जिन कर्मों का विधान किया है वे धर्म हैं तथा जिनका निषेध किया है वे अधर्म हैं। वेद स्वयं भगवान् के स्वरूप हैं—उनके स्वाभाविक श्वास स्वयं प्रकाश ज्ञान हैं—ऐसा हमने धर्मराज की सभा में अपने स्वामी से सुना है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जिसमें वेद प्रमाण हैं वही धर्म है तथा जो धर्म है वह वेदों से प्रमाणित अवश्य है इससे स्वरूप और प्रमाण दोनों कहे गये हैं। आचार्यश्री जैमिनी ने 'चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः' इस सूत्र से धर्म के स्वरूप एवं प्रमाण–दोनों का निरूपण किया है। श्रीभट्टपाद ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि धर्म का स्वरूप एवं प्रमाण एक ही सूत्र से निरूपण किया गया है—'द्वयमेकेन सूत्रेण श्रुत्यर्थाभ्यां निरूप्यते' भाष्यकार श्री शबरस्वामी ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है—भूत, भविष्य, वर्तमान इन्द्रियातीत सूक्ष्म (धर्म तथा ब्रह्म) वस्तु को वेद के द्वारा ही जाना जा सकता है। वाक्यपदीयकार भी कहते हैं कि जो प्रत्यक्ष एवं अनुमान आदि प्रमाणों से नहीं जाना जा सकता है ऐसे ब्रह्मतत्त्व को वेद बतलाते हैं यही वेद की महिमा है—'तस्मात् वेदस्य वेदता'। 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' इस श्रुति में प्रतिदिन सन्ध्योपासना करनी चाहिए यह बात कही गयी है, यहाँ 'उपासीत' इस चोदना रूप क्रिया द्वारा सन्ध्योपासन रूप धर्म का ज्ञान होता है—अर्थ की चोदना का तात्पर्य है तव्यत्, लिङ्, लोट् लकारादि लक्षण जहाँ प्रमाण हो वही अर्थ चोदना हुई। इन दोनों के द्वारा ही वेदार्थ का निश्चय होता है। 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुह्यात्' जीवनपर्यन्त अग्निहोत्र करना चाहिए। इस वाक्य में 'जुह्यात्' इस चोदना के द्वारा ही जीवनपर्यन्त अग्निहोत्र करने में प्रमाण माना जाता है अन्यथा नहीं। इस प्रकार जिन कर्मों का विधान वेद ने किया वही धर्म है इस बात की पुष्टि हो जाती है। जो कर्म वेद से निषिद्ध है वही अधर्म है जैसे 'ब्राह्मणं न हन्यात्' तथा 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' अर्थात् ब्राह्मण की हत्या न करे एवं किसी भी प्राणी की हत्या न करे इस प्रकार ब्रह्महत्या तथा जीवहत्या का वेद में निषेध है अतः हत्या करना अधर्म है। वेद साक्षात् भगवान् का ही स्वरूप है क्योंकि भगवान् के श्वास प्रश्वास से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ है। श्रुति कहती है—'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदः' जिस प्रकार मनुष्य का श्वास उससे भिन्न नहीं है उसी प्रकार भगवान् के श्वासरूप वेद भी उनसे भिन्न नहीं हैं। मंत्र भाग में भी कहा गया है 'ऋचः सामानि जज्ञिरे, छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुरजायत'। स्मृति भी कहती है कि परमात्मा के द्वारा नित्य वेद वाणी प्रकट हुई है—अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।

गोस्वामीजी ने भी लिखा है—जाकी सहज स्वांस श्रुति चारी।

सहज श्वास का अर्थ है कि पूर्व कल्प में जिस प्रकार वेद थे उसी प्रकार कल्प के अन्त में वेद अक्षर राशि के रूप में प्रकट हुए हैं। स्वयम्भुः वेद का विशेषण है जिसका तात्पर्य है कि ईश्वर के श्वास से प्रकट होने पर भी यह कार्य नहीं हैं किन्तु अन्य कारण रहित हैं। बिना किसी स्वर, अक्षर आदि को छोड़े ही कल्प के पूर्व में जैसा वेद का स्वरूप था उसी स्वरूप से वेद प्रकट हुए। इतिहास पुराण आदि भी वेदों के विरुद्ध न होने के कारण वेद के तुल्य ही प्रमाण हैं। श्री जैमिनि ने लिखा है कि श्रुति से विरोध होने पर स्मृति वाक्यों की उपेक्षा कर देनी चाहिए। यदि कोई कहे कि स्मृति वाक्य के द्वारा श्रुति का अनुमान कर लिया जाए तो क्या हानि है? इसका उत्तर यह है कि यदि प्रत्यक्ष श्रुति वाक्य से विरोध पड़ता हो तो स्मृतिवाक्य से श्रुति का अनुमान नहीं किया जा सकता है किन्तु यदि मूल श्रुति से विरोध नहीं हो तो स्मृति वाक्य से श्रुति का अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है—इयं स्मृतिः श्रुतिमूलिका स्मृतित्वात् मन्वादि स्मृतिवत्।

आचार्य जैमिनि ने 'विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्' इस सूत्र में उपर्युक्त विषयों का विशद विवेचन किया है। इसी सूत्र के पश्चात् इन्हीं अर्थों का पूरक द्वितीय सूत्र है—'शास्त्र परिमाणत्वात्' इसके द्वारा शास्त्रों की संख्या का भी उल्लेख कर दिया गया है। ऋक्, यजुः, साम, अथर्व ये चार वेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधार्व वेद तथा अर्थशास्त्र ये चार उपवेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ये छह वेदाङ्ग, सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, पूर्वमीमांसा, वेदान्त ये छह दर्शन उपाङ्ग, अठारह पुराण दण्डनीति आदि शास्त्रों की गणना आस्तिक दर्शनों में की गयी है। इस प्रकार वेदानुकूल होने से ही इतिहास पुराण भी वेद के तुल्य ही प्रमाण माने जाते हैं।

पूर्वाचार्य कहते हैं—'प्रायेण पूर्वभागार्थो धर्मशास्त्रेण कथ्यते। इतिहासपुराणाभ्यां वेदान्तार्थः प्रकाश्यते'॥ "मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इस आपस्तम्ब वचन के अनुसार वेद मन्त्रब्राह्मणात्मक है। मन्त्र भाग की व्याख्या धर्मशास्त्रों से तथा ब्राह्मण भाग की व्याख्या इतिहास पुराणों से की गयी है। विशेष रूप से वेदान्तार्थ का निश्चय इतिहास पुराणों से किया गया है। महाभारत में भी कहा गया है कि इतिहास

● व्यस्तता के बीच सुस्ताने के लिये
● स्फूर्ति और राहत पाने के लिये
हमेशा प्रयोग करें

खरगोश छाप तम्बाकू ❁ **हिरन** छाप तम्बाकू

एक लोकप्रिय साधन है
और है अपनी कीमत से कई गुना कीमती

हिरन टोबैको फैक्ट्री

हिरन नगर, उन्नाव

कार्यालय—६२/१६९, हरबंश मोहाल, कानपुर—२०८ ००१

तार : 'हिरन'

फोन { फैक्ट्री : ३५४
कार्यालय : ६५६९४

● उत्तरभारत का सर्वश्रेष्ठ शाकाहारी
● आधुनिक साज-सज्जायुक्त
● आवासीय होटल

होटल वैशाली

मेस्टन रोड, कानपुर
फोन—60394,53404

अतिथि सत्कार ही हमारा विशिष्ट गुण है

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

भगतराम जयनारायण ज्वेलर्स

सुन्दर, आकर्षक, विश्वस्त आभूषण प्रतिष्ठान

बिरहाना रोड, कानपुर—१

पुराणों के द्वारा वेदार्थ का निश्चय करना चाहिए, अल्पश्रुत से वेद भयभीत होते हैं कि कहीं मेरे विपरीत अर्थ न कर दे—"इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत् । बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।।" पुराण की अपेक्षा इतिहास की श्रेष्ठता सुप्रसिद्ध है। अभ्यर्हित होने से ही 'इतिहासपुराणाभ्यां' में इतिहास का पूर्व प्रयोग किया गया है, नहीं तो 'अल्पाच्तरस्' से पुराण शब्द का ही पूर्व प्रयोग होना चाहिए। स्मृतिकार कहते हैं वेदवेद्य परब्रह्म पुरुषोत्तम श्री दशरथनन्दन के रूप में अवतीर्ण हुए तो वेद ही श्रीरामायण के रूप में श्री वाल्मीकि के द्वारा अवतीर्ण हुआ—'वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ।।'

रामायण में स्थल-स्थल पर उसको वेद तुल्य कहा गया है—'इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्' 'रामायणं वेद समम्' 'वेदोपवृंहणार्थाय तावग्राह्यत प्रभुः'। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ने श्री भरतजी से पूछा—'कच्चिन्न लोकायतिकान् ब्राह्मणांस्तात सेवसे ? अनर्थ कुशला ह्येते मूढाः पण्डितमानिनः ।। धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु सर्वशः। वुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरर्थं प्रवदन्ति ते ।।" हे तात ! आप लोकायतिक ब्राह्मणों का संग तो नहीं करते ? लोक में प्रसिद्ध प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मुख्य प्रमाण स्वीकार करने वाले लोकायतिक कहलाते हैं। वेद तथा तदुपबृंहणभूत इतिहास पुराण को प्रमाण के रूप में जो स्वीकार नहीं करते उन्हें यहाँ लोकायतिक (नास्तिक) कहा कहा गया है। भगवान् श्रीराम कहते हैं—ये लोग अनर्थ में कुशल होते हैं तथा मूर्ख होते हुए अपने को बड़ा पण्डित समझते हैं। धर्मशास्त्र के विद्यमान रहते हुए भी ये लोग केवल तर्क के द्वारा निरर्थक प्रलाप करते रहते हैं। वेद शास्त्राविरोधी तर्क का तो भारतीय दर्शन में समादर है किन्तु वेदशास्त्र विरोधी तर्क का समादर नहीं है। श्रुति स्मृतियों में वेदशास्त्र विरुद्ध तर्क की उपेक्षा की गयी है 'तर्का प्रतिष्ठानात्' 'नैषा तर्केण मतिरापनेया' इत्यादि वचन शुष्क तर्क के निषेध में प्रमाण हैं।

इस प्रकार भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटवादि मानवोचित समस्त दोष संभावनाओं से विनिर्मुक्त, भगवन्निश्वासभूत, मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद सूक्ष्म वस्तु (धर्म एवं ब्रह्म) के निर्णय में एकमात्र प्रमाण हैं। वेदानुकूल होने से ही इतिहास पुराणादि भी प्रमाण हैं।

With Best Compliments From :

Sarvodaya Paper Mills Limited

Manufacturers of All Varieties of M. G.

Kraft Paper At 30 Tonnes Per Day Capacity

Enquiries Solicited : Sales Executive, 705–Akash Deep,
26A, Barakhamba Road, New Delhi–110001

Ph : 40601 & 45224, 43643 & 44604 GRAMS : 'SARVOPAP'

सनातन धर्म, वेद-शास्त्र संरक्षक

पूज्य चरण १०८

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के

७५वें वर्धापन दिवस पर कोटिशः नमन

–सोहन लाल राठी

फर्म :—

जीवनराम दुर्गाप्रसाद

अबोहर–पंजाब

वेदों में इतिहास के तत्त्व

• म० म० स्वर्गीय श्री पंडित गिरिधर शर्माजी चतुर्वेदी •

• अनुवादक—डा० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी •

वेदों में इतिहास की गवेषणा के सन्दर्भ में मीमांसा दर्शन तथा कुछ आधुनिक विचारकों का मतभेद है। वेदों की अपौरुषेयता का समर्थन करते हुए भगवान् जैमिनि ने पौरुषेयता का पूर्वपक्ष "अनित्यदर्शनाच्च" इस सूत्र के द्वारा उपस्थित करते हुए, "परं तु श्रुति सामान्यात्" इस सूत्र के द्वारा उसका समाधान किया है। जैमिनि का आशय वस्तुतः क्या है यह तो भगवान् ही जाने। उनके सूत्र कथनों का अभिप्राय अनेक प्रकार से लगाया जा सकता है और बहुतों ने लगाया भी है। उनमें श्री शबरस्वामी आदि मीमांसा मूर्धन्यों ने इस प्रकार उक्त सूत्रों का आशय स्पष्ट किया है कि—"अनित्यदर्शनात्" इस सूत्र के द्वारा शंका उठाई गई कि यदि वेदों में मनुष्य चरित्रों का वर्णन मान लिया जाय तो उन मनुष्यों के जन्मकाल के अनन्तर वेदों का निर्माण मानना होगा और इस प्रकार वेदों को अनादि मानने के सिद्धान्त पर कुठारपात हो जायगा। वेदों में इतिहास पुराणों में प्रसिद्ध पुरुषों के जो नाम आते हैं उनकी क्या व्यवस्था होगी, इसका उत्तर है कि वेदों में आए हुए नाम और पुराण इतिहास में प्रसिद्ध नाम एक ही नहीं हैं। वे अक्षर एक से होने के कारण केवल सुनाई एक से देते हैं, यही उन नामों की दोनों जगह होने पर भी समानता कहीं जा सकती है, दोनों के अर्थ में भेद है। वेद में आए हुए शब्द नित्य अर्थों के ही बोधक हैं वहाँ कोई भी अनित्य पदार्थ वर्णित नहीं है, अन्यथा अनित्य पदार्थों के वर्णित होने पर वेदों को भी अनित्य ही मानना पड़ेगा।

"बवरः प्रावाहणिरकामयत" आदि वैदिक सन्दर्भों "ब व" जैसा शब्द करने वाला बहने वाला नित्य पवन ही अभिप्रेत है, अब आगे किसी प्रवाहणि नामक पुरुष के पुत्र का नाम भी "बवर" रख देने से वह भी बवर प्रावाहणि कहलाया, इससे वेद में वे शब्द इसी मनुष्य के बोधक हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। श्री शबर स्वामी इस कथन से यह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य चरित्र का कोई स्पर्श वेद में नहीं माना जा सकता। उनके इस मत का अनेक आचार्यों और भाष्यकारों ने समर्थन किया है। परन्तु साथ ही यह स्मरणीय भी है कि सिद्धान्त रूप से स्वीकार की गयी इस पद्धति से मीमांसकों के अभिमत मन्त्र ब्राह्मणात्मक सम्पूर्ण वेद की प्रमाणिक व्याख्या अब तक नहीं लिखी जा सकी। बहुत से विद्वानों का कथन है कि इस पद्धति को आधार बनाकर सम्पूर्ण वेद की व्याख्या करना दुष्कर कार्य है। सर्ववेद भाष्यकार श्री सायणाचार्य और श्री माधवाचार्य ने वेदभाष्य के उपोद्घात में इस मत का बड़े आदर से उल्लेख करते हुए उसे स्वीकार तो किया है, परन्तु उन वैदिक सन्दर्भों की व्याख्या करते समय इस सबको मानों वे भूल ही गये। अनेक मन्त्रों और अनेक ब्राह्मण भागों की व्याख्या करते हुए उन्होंने मनुष्य इतिवृत्त को उद्धृत करते हुए ही सम्पन्न की है। ऋग्वेद के (१।११०।२) मन्त्र के अपने भाष्य में आंगिरस के पुत्र ऋभु और कुत्स का उल्लेख किया है। ऋग्वेद के (१–।१२५।–१–) मन्त्र की व्याख्या में कक्षीवान् दीर्घतमा का सारा इतिहास उद्धृत करते हुए श्री माधवाचार्य ने इस सूक्त की व्याख्या की है।

"—युवं च्यवानं चक्रथुर्युवानम्"—इस आश्वदैवत मन्त्र में भी उन्होंने च्यवन ऋषि का पुराण प्रसिद्ध उपाख्यान लिख दिया है।

इसी प्रकार सायण माधवीय वेद भाष्य में अनेक पौराणिक उपाख्यान प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के भाष्य में भी हरिश्चन्द्र, नहुष आदि की कथाएँ मनुष्य चरित्रों के रूप में ही लिखीं हैं। इसी प्रकार श्री उव्वट तथा श्री महीधर आदि ने भी अपने भाष्यों में मनुष्य चरित्रों को स्पष्ट करते हुए ही वेदों के उन स्थलों का अर्थ समझाया है।

मीमांसा में मन्त्रों की ही तरह ब्राह्मण और उनके भाग आरण्यक, उपनिषद् आदि को भी वेद ही माना गया है। सभी प्रामाणिक आस्तिक इसी सिद्धान्त को मानते हैं। उपनिषदों में उपलब्ध आख्यायिकाओं को मानव चरित्र के रूप में कहीं भी शंकराचार्य आदि भाष्यकारों ने प्रस्तुत नहीं किया है। वेदान्त सूत्रकार भगवान् वेदव्यास ने अपशूद्राधिकरण की रचना मनुष्य आख्यानों को ध्यान में रख कर ही की है।

वेदों में मनुष्य चरित्र को दिखाते हुए व्याख्याकारों ने—"भूतं भवद् भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति—" (भूत वर्तमान और भविष्य सभी वेद से सिद्ध होते हैं) इस सिद्धान्त के आधार पर वेद की नित्यता और अपौरुषेयता को माना है।

"न कदाचिदनीदृशं जगत्" (संसार कभी भी तात्विक दृष्टि से जैसा है उससे भिन्न नहीं होता) यह मीमांसा का सिद्धान्त है, इसके अनुसार वेदों में इतिहास होने पर भी वेदों के नित्य होने में कोई बाधा नहीं आती। जो लोग सृष्टि और प्रलय के प्रवाह का सिद्धान्त मानते हैं वे भी देवर्षि पितृ राजर्षियों को पृथिवी आदि की तरह ही प्रवाह नित्य मानते हैं, उनके मत में भी वेदों में इतिहास होने से वेद नित्य ही माने जा सकेंगे। भगवान् मनु ने—

"सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे—"

(परमेश्वर ने वेद शब्दों से ही समस्त लोकों का निर्माण किया) "उसने 'भू' कह कर भूमि का निर्माण किया" इत्यादि श्रुति-वाक्यों से स्पष्ट है कि आगे उत्पन्न होने वाले स्थावर जंगमादि के सामान्य गुण धर्मादि का पूर्व कल्प के अनुसार वर्णन पहिले ही वेदों में हुआ। इसी प्रकार आगे उत्पन्न होने वाले ऋषि और राजर्षियों का वर्णन भी

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

—यजुर्वेद ३६ : १८

(मुझे सब प्राणी मित्रता की प्रेम-भरी आँख से देखें (क्योंकि) मैं भी मित्रता की प्रेम-भरी आँख से सबको देखता हूँ । तभी हम सब एक-दूसरे को मित्रता की प्रेम-भरी आँख से देखते हुए इस संघर्षमय संसार में शान्तिपूर्वक रह सकेंगे ।)

डालमिया सिमेंट (भारत) लिमिटेड

डालमियापुरम्—६२१ ६५१ (तमिलनाडु)

मुख्य कार्यालय : हंसालय (११वाँ/१२वाँ—माला)

१५, बाराखम्भा रोड, नयी दिल्ली—११० ००१

'राकफोर्ट' सिमेंट के निर्माता

भविष्य की दृष्टि को रखते हुए पूर्वकला के अनुसार वर्णित हुआ। ऐसा मानने में कौन सी विप्रतिपत्ति रह जाती है। अपौरुषेय वेदों के लिए क्या असंभव है। आज भी मनीषि मण्डली की यह श्रद्धा विद्यमान है कि वाल्मीकि ने रामायण में रामचरित की रचना पहिले ही कर ली थी, आगे उसी के अनुसार रामचरित घटित हुआ, तब वेद के विषय में तो ऐसा मानने में कुछ भी सन्देह होना नहीं चाहिए। जिनको वेद की अलौकिकता में श्रद्धा है, उन्हें वेदों में भविष्य की सूचनाएँ होने में कोई सन्देह होना ही नहीं चाहिए। यदि वह श्रद्धा नहीं है तब तो किसी भी युक्ति से वेदों का अपौरुषेयत्व भी नहीं टिक पायेगा, अतः वेदों में इतिहास के अभाव को सिद्ध करने के प्रयास का कोई प्रयोजन नहीं बतलाया जा सकता। जैमिनि भगवान् के सूत्र—"परन्तु श्रुति सामान्यमात्रम्"—की व्याख्या तो इतिहासस्वीकारपक्ष में भी हो सकती है। पूर्वकल्प में समुत्पन्न और इस कल्प के मनुष्य आदि में श्रुति सामान्य (एक सा सुनाई देने) के कारण सदृशता है। अथवा ईश्वर के ज्ञान में स्थिति तथा समुत्पन्न पदार्थों में श्रुति सामान्य है यह कहा जा सकता है। निरुक्तकार यास्क ने मन्त्रों को ब्रह्मेतिहासमिश्र, ऋक्मिश्र, गाथामिश्र कहा है (नि० अ० ४)। देवापि शन्तनु आदि का चरित्र मन्त्रों के निदान के रूप में उन्होंने प्रस्तुत किया है। दुर्गाचार्य ने देवापि आदि शब्दों का जो दूसरा अर्थ प्रकट किया है, वह उनकी अपनी कल्पना ही है, निरुक्त के अक्षरों से वह बात सिद्ध नहीं होती वहाँ "अत्रेतिहासमाचक्षते" (यहाँ इतिहास बतलाया जाता है) यह लिखते हुए वे इतिहास बतलाए हैं। वृहद्देवता ग्रन्थ के निर्माता शौनक ने भी अपने ग्रन्थ में बहुत से ऋषियों के चरित्र मन्त्रों के निदान के रूप में स्पष्ट बतलाए हैं। (वृ० दे० ४।११२–१४)।

वेदों में पुराण तथा इतिहास का नाम और विषय निर्दिष्ट हुआ है। इतिहास और पुराण मनुष्य चरित्रों का विवरण करते हैं। तब यह शंका बनी ही रहती है कि मनुष्यों का चरित्र बतलाने वाले पुराण उन मनुष्यों के उपरान्त लिखे गये तथा पुराणों का विवरण देने वाले वेद उनके भी उपरान्त लिखे गये। तब वेद की नित्यता को सिद्ध करने के लिए सिवाय यह कहने को और कोई मार्ग नहीं रह जाता कि भविष्य के अर्थों को भी वेद में बतलाया गया है। वेदों को अपौरुषेय, तथा किसी भी प्रकार मनुष्य की कृति का सम्बन्ध वहाँ न मानने वाले आचार्यगण भी इतिहास को वेदों में स्वीकार करते हैं यह श्री शंकराचार्य, श्री सायणाचार्य आदि के उद्धरणों में देखी जा चुकी है। पुरुष सम्बन्ध की ऐसा मानने पर उपस्थित होनेवाली शंका का उनके मत में क्या उत्तर है यह भी देखा गया है कि "भूत, वर्तमान, भविष्य सभी वेदों से सिद्ध होते हैं।" वृत्तवध आदि के मन्त्रों की यास्क ने वैज्ञानिक व्याख्या लिखी है, परन्तु वहीं इतिहास उपस्थित करते हुए "इत्यैतिहासिकाः" "इतिनैरुक्ताः" यह भी लिखा है।

वेदों में उर्वशी पुरुरवा, हरिश्चन्द्र आदि के जो अनेक उपाख्यान आए हैं, पुराणों में उन्हीं का विशेष विवरण दिया गया है। अब यदि वेदों में उनका दूसरा अर्थ माना जाता है तो तदनुकूल ही पुराणों में भी उनका अर्थ मानना होगा, और इस प्रकार पुराणों में राजवंश वर्णन वाले ऐतिहासिक तथ्य दूर हो जायेंगे। उन सबके वेदानुकूल ही अर्थ करने होंगे। उस स्थिति में भारत का कोई प्राचीन प्रामाणिक इतिहास नहीं रह जायगा और भारतीय सभ्यता का तात्विक उज्ज्वल रूप गुहा प्रविष्ट रह जायगा। मीमांसा के सिद्धान्त धर्म विषय में पूर्ण प्रामाणिक माने जा सकते हैं यही—"यत्परः शब्दः सशब्दार्थः"।

इस मीमांसा सम्मत सिद्धान्त का आशय प्रयुक्त हो सकता है। इतिहास आदि के विषय में तो पुराण महाभारत आदि ही परम प्रमाण माने जा सकते हैं। अर्थवाद बतलाकर केवल कर्म की प्रशंसा या निन्दा में उन सन्दर्भों का उपयोग है, स्वतन्त्र उनका कोई तात्पर्य नहीं यह बात 'अर्थवाद' के स्वरूप को बिना समझे कही जाती है। 'अर्थवाद' तीन प्रकार का है—"विरोध होने पर 'गुणवाद', निश्चय होने पर 'अनुवाद' और अनुगत न होने पर 'भूतार्थवाद'—यह मीमांसा का निर्णय है। इसके अनुसार दूसरे प्रमाणों के विरुद्ध जो इतिहास हो वही 'गुणवाद' या स्वतन्त्र अर्थ प्रकट न करनेवाला माना जा सकता है, वहाँ का अपना अर्थ गौण होता है। परन्तु अर्थवाद के अन्य जो दो भेद हैं, अनुवाद और भूतार्थवाद, उनमें ऐतिहासिक तथ्य का अपलाप कैसे किया जा सकता है। इस विषय को श्री शंकराचार्य ने बृहदारण्यक भाष्य में (३।१।३।१) कहा है कि वेदों से आत्मा, ईश्वर, देवता आदि का अयथार्थ विवरण ही हमें यदि मिले तो देवोपासना आदि भी अयथार्थ हो जायेंगी, यही बात मनुष्य चरित्रों में भी समानरूप से ग्राह्य है। ब्रह्मसूत्र भाष्य से देवाधिकरण में उन्होंने महर्षि व्यास आदि के देवताओं के साथ प्रत्यक्ष इतिहास प्रतिपादक तथा देवता विग्रहादि प्रतिपादक मन्त्र ब्राह्मण अपने अर्थ का प्रतिपादन करते हुए ही उन्हें विधि निषेध वाक्यों से सम्बन्ध माना है। इसका यह अर्थ भी नहीं है कि वेदों और पुराणों में कल्पना या गुणवाद है ही नहीं। "ओषधियाँ बोली" आदि वैदिक सन्दर्भों में गुणवाद स्पष्ट ही है। वेदों के अगस्त्य मत्स्य संवाद आदि तथा पुराणों के पुरंजनोपाख्यान आदि सन्दर्भों के रहस्य कहीं आध्यात्मिक प्रयोजन संपन्न हैं, कहीं आधिदैविक अभिप्राय रखते हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं हो सकता कि शुद्ध इतिहास कहीं है ही नहीं। 'गंगायां घोषः' वाक्य में गंगा पद में लक्षणा से अर्थ करने का यह तात्पर्य नहीं हो सकता कि 'गंगायोस्नाति' में भी लक्षणा की जाय। अतः वेदों में जहाँ आध्यात्मिक या आधिदैविक अर्थ ही प्रमुख है वहाँ उनका गुणवादत्व ठीक है, परन्तु जहाँ वैसा नहीं है, उन्हें यथार्थ इतिहास न मानने का कोई कारण नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ एक ही सन्दर्भ के आध्यात्मिक—दो या तीन अर्थ समान रूप से महत्व रखते हैं। जैसा आलंकारिकों ने श्लेष अलंकार की स्थिति में माना है, वहाँ एकाधिक अर्थ समान महत्व रखते हैं। "बवरः प्रावाहणिः" की व्याख्या में वायु रूप जिस अर्थ का ज्ञापन हुआ, वैसा ही यौगिक प्रक्रिया से सुदास, देवाधि शन्तनु आदि का अर्थ करने पर मीमांसा में स्वीकृत "प्रसिद्ध पदार्थ का धिकरण" का विरोध होगा। "प्राणोवै वसिष्ठः" 'चक्षुर्वैजगदग्निः" आदि निर्वचन ऐतिहासिकता को समाप्त नहीं करते अपितु आध्यात्मिकता की ओर भी संकेत करते हैं, यही मानना उपयुक्त है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है।

इस प्रकार वेदों में इतिहास के संक्षिप्त सूत्रों को बिना स्वीकार किये कोई उपाय नहीं।

●

With Best Compliments

World Famous CAPSTAN Water Meters
in Sizes
15 mm (1/2") to 600 mm (24")
(Domestic & Bulk Type)
In Technical Collaboration with :
GUEST & CHRIMES LTD., ROTHERHAM, ENGLAND
Manufactured by :

CAPSTAN METERS (INDIA) LIMITED

Works & Sales Office : Tonk Road, Jaipur – 302004

Cable : CAPSTAN
Phone : 82367, 82422

Registered Office :
52 Janpath
New Delhi-110001
Phone : 320959, 321098
Cable : CAPSTAN

Bombay Office :
104, 'Marine Chambers'
New Marine Lines Bombay-400020
Phone : 294101
Cable : CAPSTAN

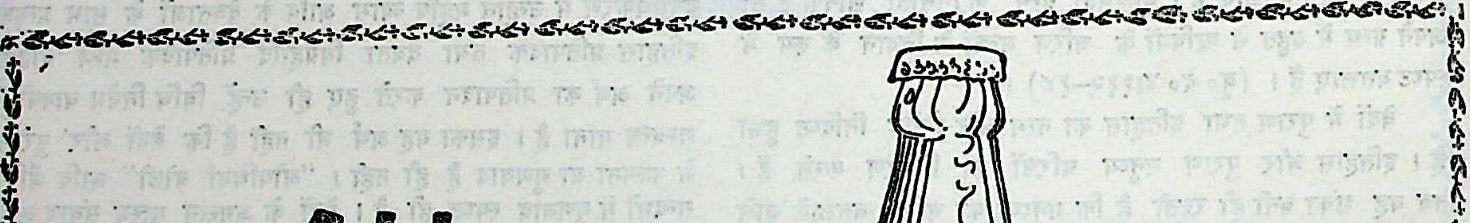

Add more to your life

Drink
Nova Cola*

JAI DRINKS PRIVATE LIMITED
JAIPUR—Jawahar Lal Nehru Marge
Phone No. : 82345 & 82211
NEW DELHI—52, Janpath
Phone No. : 321098 & 320959

केषाञ्चन श्रौतकर्मणां स्वरूपविवरणम्

● पं० श्री पट्टाभिरामशास्त्री, विद्यासागरः ●

चिरन्तने काले प्राचां भारतीयानामियं संस्कृतिः—यद्वेदाध्ययनम्, वेदोदितश्रेयस्साधनानां कर्मणां यथाविधि यथाधिकारञ्चानुष्ठानमिति। स्वे स्वे कर्मणि निरतास्ते मिथस्सौजन्येन समयं यापयन्तस्सुखेनावर्तन्त। नासीत्तेषां कलहस्यावसरः। आच प्रातः आच सायं कर्तव्यत्वेन परिगणितानां कर्मणां समयविभागः पूर्वजैः कृतः। विद्यालयेषु प्राचार्येण छात्राणामध्ययनाय समय विभागः प्रकाश्यते। स च सर्वैरेव छात्रैरध्यापकैश्च पालनीयो भवति। अनुशासनपरिपालनं नाम लोकानां मुख्यः प्रणवः। तच्च बाल्यादारभ्य शिक्ष्यते। एतादृशशिक्षया विनयावाप्तिः। विनयश्चात्मबलसम्पादने मुख्यं साधनम्। भौतिक बलापेक्षयाऽऽत्मबलस्य प्राबल्यमित्यत्र सन्ति बहून्युदाहरणानि।

तत्रोपनयनादारभ्य विहितं प्रथमं कर्म वेदाध्ययनम्। नियतकर्तव्येषु वेदाध्ययनस्य प्राथमिकतायां कारणमिदं प्रतिभाति—यदस्माकं जीवनेऽधीतवेदस्य महान् सम्बन्धः। यो नाम वेदं नाध्यैष्ट स दूरतो लोकैः पर्यह्रियत इत्यासीद्भारते कश्चन समयः। वेदाध्ययनानधिकारिणोऽपि अनधीतवेदं विप्रं जुगुप्सया ददृशुः। एवं वेदे महत्त्वबुद्धिमादधाना भारतीयाः वैदिकतावलम्बिन एवासन्। न केवलं वेदाध्ययनमात्रेण वैदिकाः किन्तु तद्विहितकर्मणामनुष्ठानेनापि। विना कर्मणामनुष्ठानेन कथं नाम वैदिकत्वं प्रसिध्येत् ? अनुष्ठेयत्वेन विहितानि कर्माणि स्मार्तानि श्रौतानि चेति विभक्तानि। यानि वैवाहिकाग्निसाध्यानि, स्मृतिषु च विहितानि व्रतादीनि तानि स्मार्तानि व्यवह्रियन्ते। भारतस्यैवायं महिमा—यदत्र जनिमवाप्त एकैकोऽपि मानवस्साग्निको भवति। मातुर्जठराग्निना पालितः पोषितश्चोत्पन्नः प्राप्ते वयसि यथाधिकारमग्निमान् भवति, तेन चाग्निना विहितानि कर्माण्याचरति, तेनैव चौर्ध्वदेहिकं संस्कारमवाप्नोति। पृथिव्यां नान्यत्रैतादृशी पद्धतिः ऋते भारतात्। अत्रास्ति सुमहद्वैज्ञानिकं तत्त्वम्, तच्च पृथग्लेखमर्हति।

तत्र श्रौताग्निसाध्यानां कतिपयानां कर्मणां स्वरूपं विवृणोमि-श्रौतकर्मसु प्रथमं कर्म अग्न्याधानं कथ्यते। त्रैवर्णिकानामत्राधिकारः। कृतदारपरिग्रहो द्विजः 'जातपुत्रः कृष्णकेशोऽग्नीनादधीत' इति विधौ प्रयुक्तजातपुत्रकृष्णकेशपदाभ्यां लक्षिते वयसि 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत' 'ग्रीष्मे राजन्यः' 'शरदि वैश्यः' 'वर्षासु रथकारः' इति विहिते कालेऽग्न्याधानं कुर्यात्। आधानं नाम विहिते स्थलविशेषे मथितस्याग्नेर्निक्षेपः। तस्यायं प्रकारः—अग्नीनाधास्यमानो विप्रः पत्न्यासह पूर्वस्मिन्दिने सञ्चितपापापनुत्तये महाप्रायश्चित्तं कृच्छ्राचरणञ्चानुष्ठाय निर्वाप आभ्युदयिक श्राद्धं सम्पाद्य गृहीतनियमस्तिष्ठेत्। श्वस्तने दिने प्रत्यूषे स्नानसन्ध्यौपासनादिकं निर्वर्त्य पत्न्या सहाधानार्थं सङ्कल्पं कुर्यादग्नीनाधास्य इति। ततो ऋत्विग्वरणम्। अध्वर्युः ब्रह्मा होता आग्नीध्रश्चेति चत्वार ऋत्विजः। तत्राध्वर्युः शमीवृक्षोपरि प्ररूढादश्वत्थवृक्षादानीतां शाखां द्वेधा छित्वासम्पादिते द्वे अरणी अनातपशुष्के आधानदेशं समानयेत्। द्वयोररण्योरेका उत्तरारणिरपराचाधरारणिरिति कथ्यते। अरण्योः परिमाणे सूत्रकाराणां बौधायनापस्तम्बकात्यायनानामस्ति मतभेदः। तथा सप्त पार्थिवान् सप्त वानस्पत्यांश्च सम्भारानेकत्राहृत्य निक्षिपेत्। सिकताः ऊषरभूगता मृत्, मूषिकोत्कीर्णा मृत्, वल्मीकस्योपरिस्थिता मृत्, अशोष्यजलाशय मृत्, वराहोत्कीर्णा मृत्, क्षुद्रपाषाणा इति सप्त पार्थिवास्सम्भाराः। अश्वत्थोदुम्बर-पलाश-शमी-विकङ्कताशनिहत-पद्मपत्राणीति वानस्पत्य सम्भाराः। अग्न्यायतन निर्माणम्—वेदेः पश्चिमायां दिशि गार्हपत्यायतनं गोलाकारम् वेदेः पूर्वस्यां दिशि चतुरस्राकारमाहवनीयगृहम् तयोर्मध्ये दक्षिणस्यां दिशि अर्धचन्द्राकारं दक्षिणाग्नेरायतनम्। एवं सभ्यावसभ्ययोरपि आयतने भवतः। एतेषामग्नीनां पृथक्पृथक् गृहं निर्माय ग्रामेषु जनपदेषु च श्रोत्रियाः स्वस्वनिवासायापि स्थानानि परिकल्प्य कर्माण्यनुतिष्ठन्त आसन्।

अनन्तरं यजमानः क्षौरकर्म नखनिकृन्तनानि च कारयित्वा, मृत्तिकामनुलिप्य स्नात्वा 'क्षौमे वसानावग्नीनादधीयाताम्' इति विध्यनुसारेण क्षौमे वस्त्रे परिधाय पत्नीञ्च स्नानानन्तरं दुकूलं परिधापयेत्। अपराह्णेऽध्वर्युः यजमानस्यौपासनाग्नेरर्धं पृथक्कृत्य गार्हपत्यकुण्डस्य पश्चान्निधाय समिद्भिः प्रज्ज्वाल्य ब्रह्मौदनपाकार्थं तण्डुलान्निर्वपेत्। ब्राह्मणानां भोजनाय पक्व ओदनो ब्रह्मौदनशब्दवाच्यः। तदर्थं प्रभूततण्डुलेभ्यः पृथक्कृत्य पात्रे स्थापनं निर्वापः। चतुश्शरावपरिमितान् तण्डुलान् जलपूर्णे पात्रे प्रक्षिप्य पचेत्। पाकश्च तथा भवेद्यथा हि कियतांशेन तण्डुलभावस्स्यात्। पक्वमन्नमग्नेरुद्वास्य (उद्वासनं नाम बहिर्निस्सार्य स्थापनम्) ततो दर्व्या गृहीत्वा तस्मिन्नेवाग्नौ जुहुयात्। अवशिष्टमोदनं चतुर्धाविभज्य-अध्वर्यु होतृ-ब्रह्माग्नीध्रेभ्यो ऋत्विग्भ्यः दद्यात्। पात्रे किञ्चिदन्नमवशेषयेत्। अध्वर्युस्त्रीयं भागं सव्यहस्ते परिगृह्य दक्षिणहस्तेन पात्रस्थेऽन्ने आज्यमभिघार्य तदन्नं समिद्भिसिसृभिरालोड्य तास्समिधस्तस्मिन्नेवाग्नौ निदध्यात्। तत ऋत्विजस्स्वस्वान्नं भुञ्जीरन्। इदं समिदाधानं वत्सरादेकस्मात् द्वादशाहात् द्व्यहात् त्र्यहात् पूर्वं वा पूर्वस्मिन् दिने वा क्रियते। आपस्तम्बबौधाययनादिभिर्विकल्पेनेमे पक्षा विहिताः। यजमानः पूर्वेद्यूरात्रावुपवसेज्जागरणञ्चकुर्यात्। ब्रह्मौदनपाकार्थं योऽग्निस्तं काष्ठादि प्रक्षेपेण

Heartiest Felicitations

On the auspicious Occasion

of

75 Birthday of Most Reverend

Sri Swami Karpatriji Maharaj

Agrasen Engineering Works

MOUDHAPARA, RAIPUR-492001 [M. P.]

Phone : 23275

Tractor-Trailer 4 wheel/2 wheel • Cultivater 9 tynes spring loaded/Fixed type • Leveller heavy duty • Cage wheel • Paddy disk Pattlar • Rottavator • Water Tankers all kinds of job and Fabrication works

प्रज्ज्वाल्य रक्षेत्। प्रातः काल एव तस्मिन्नग्नावरणी प्रतप्याग्नि शमयित्वा यजमानाय तेऽरणी प्रयच्छेत्। यजमानस्तेऽभिमन्त्र्य मन्थनारम्भ पर्यन्तं स्वहस्त एव धारयन्नासीत। अध्वर्युर्गार्हपत्यायतनसंस्कारानुद्धननावोक्षणादीन् कृत्वा पार्थिववानस्पत्यसम्भारान् यथाक्रमं गार्हपत्यायने प्रक्षिपेत्। तत्रायं क्रमः—पूर्वं स्थापितास्सिकताः द्वेधा समशो विभज्यैकमर्धं पुनर्द्वेधा विभज्य तत एकं भागं गार्हपत्यायतने प्रक्षिप्यावशिष्टमर्धं त्रेधा विभज्याहवनीय सभ्यावसभ्यायतनेषु प्रक्षिपेत्। सभ्यावसभ्याधानाभावपक्षेऽर्धस्याहवनीयायतन एव प्रक्षेपः। एवमेवान्यानपि पार्थिवसम्भारान् विभज्य तत्तदायतनेषु कुर्यात्। एवं वानस्पत्य सम्भारानपि तत्तदायतनेषु प्रक्षिप्य तदुपरि हिरण्यशकलान् निवपेत्। हिरण्योपरि धूर्वं शमितस्याग्नेर्भस्मापोह्य तदुपरि यजमान हस्तादरणी गृहीत्वा निक्षिप्य तत्समीपे श्वेतमश्वमेकं बध्नीयात्। अनन्तरमरणी मन्थेत्। मन्थनेन यदाग्निर्जायते तदाध्वर्यवे वरं दद्यात्। वरो नाम गौः। यत्र यत्र वरःप्रदेयत्वेन विहितस्तत्र सर्वत्र गौरेव ग्राह्या। मथनजातमग्निमध्वर्युः करीषकाष्ठशकलनारिकेलजटादिना वर्द्धयित्वा गार्हपत्यकुण्डे स्थापयेत्। इदमेव गार्हपत्याधानं कथ्यते। इतः याःयाः क्रिया वर्णितास्ताः पूर्वाङ्गत्वेन ग्राह्याः।

सूर्यास्यार्धोदयसमये गार्हपत्यं प्रज्ज्वाल्य तत्राश्वत्थकाष्ठानि प्रदीप्तानि कृत्वा ततः कानिचनांशतः काष्ठानि गृहीत्वा हस्तेन धारयन्नध्वर्यौ तिष्ठति सति यतःकुतश्चिल्लौकिकमग्निमाग्नीध्र आनीय दक्षिणाग्न्यायतने निदध्यात्। मथित्वा वाग्निं निदध्यात् इदमेव दक्षिणाग्न्याधानं कथ्यते।

गार्हपत्याधानावसरेऽश्वो बद्ध आसीत्। तत्सान्निध्ये गार्हपत्याधानमभवत्। आहवनीयाधानात्पूर्वं ऋत्विजोऽश्वं चानयन्त आहवनीयातनदेशं गच्छेयुः। ऋत्विजां दक्षिण भागे ब्रह्मा रथचक्रं त्रिवारं परिवर्तयेत्। आहवनीयसम्भारान् अश्वमाक्रामयेत्। ततो ब्रह्मणि साम गायति सति अध्वर्युराहवनीयमादध्यात्। इदमाहवनीयाधानं कथ्यते। त्रिष्वप्यायतनेष्वाधानमग्नेस्सम्पन्नम्। इदमाधानमग्निसिद्धिफलकम्। एतावता नाग्निसिद्धिः, किन्तूत्तराङ्गेषु कृतेष्वग्नयः सिद्धा भवेयुः। पूर्वाङ्गैस्सहितमेवाधानं सम्पन्नम्। उत्तराङ्गेषु कृतेष्वेव तस्य सम्पत्तिः। तत्रोत्तराङ्गेषु एकैकायतने आश्वत्थानां शमीवृक्षीयाणाञ्च तिसृणां समिधामाधान तूष्णीमग्निहोत्रहोमश्च भवताम्। 'ततः पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति।' इति विहितः पूर्णाहुतिहोमः। अनन्तरमुपस्थानमग्नीनां कुर्याद्यजमानः। उपस्थानं नाम मन्त्राभिधानपुरस्सरं समीपगमनम्। ततोऽध्वर्यवे वरदानं कृत्वा प्रायश्चित्तहोमानुष्ठानम्। आहिताग्निनियमधारणम्। एतावताऽऽधानाख्यं प्रधानं कर्म निष्पन्नम्। एतदुत्तरमपि कानिचनाङ्गानि कर्तव्यानि। तेषु प्रथममाग्नेयेष्टेरनुष्ठानम्। अत्राग्निर्देवता अष्टसुकपालेषु संस्कृतः पुरोडाशो द्रव्यम्। तदनन्तरं तिस्रःपवमानेष्टयः—'अग्नये पवमानाय' 'अग्नये पावकाय' 'अग्नये शुचये' इति वाक्यविहिता इष्टयः पवमानेष्टयोऽभिधीयन्ते। सर्वत्राग्निरेव देवता तत्तद्गुणविशिष्टः। अष्टाकपालः पुरोडाशश्च सर्वत्र द्रव्यम्। एता इष्टय आधानदिन एवानुष्ठेयास्समानतन्त्रेण। अत्र सन्ति विकल्पेन विहिताः पक्षाः।

एताः पवमानेष्टयः 'फलवत्सन्निधावफलं तदङ्गम्' इति न्यायेनाधानाङ्गमिति भट्टपादा ब्रुवते। भाष्यकाराः श्री शबरस्वामिनस्तु 'यदाहवनीये जुहोति' इति स्वातन्त्र्येण विहितत्वादेता आधानवदग्निसिद्ध्यर्था एवेति वदन्ति। अर्थादग्निसिद्धिः न केवलमाधानेन भवति किन्तु पवमानेष्टिषु तिसृष्वनुष्ठितास्वेवाग्नीनां सिद्धिरिति पक्षद्वयेऽप्यासामनुष्ठानं पूर्वोक्ताधानानन्तरमिति तावत्समानम्।

गार्हपत्याधानावसरेऽश्वबन्धनम् आहवनीयाग्न्याधानावसरेऽश्वस्य सम्भारेषु सञ्चारणं क्रियते। तत्किंनिबन्धनमिति विचारयामः। चतुष्पात्सु प्राणिषु 'अपशवो वा अन्ये गो अश्वेभ्यः, गोअश्वाःपशवः' इति वाक्येनावगच्छामः यत्पशुषु गवामश्वानाञ्च प्राशस्त्यमिति। गवाश्वातिरिक्त-चतुष्पात्सु पशुत्वाभावं साधयितुमिदं वाक्यं न प्रवृत्तम्, किन्तु गोषु अश्वेषु च विद्यमानं प्राशस्त्यं साधयितुमितितावदवगम्यते। तत्र गोषु विद्यमानं प्राशस्त्यं प्रसिद्धमेव। अश्वस्य प्राशस्त्ये किं निमित्तमिति विचार्यमाणे प्रतिभाति—यदश्वस्याग्नेश्च भ्रातृभावस्य 'अप्सु योनिरश्वः' 'अप्सुयोनिरग्निः' इति वर्णनात् यत्राग्निः तत्राश्वः, यत्राश्वस्तत्राग्निरिति प्राशस्त्यमश्वस्य। किञ्चाग्निसाक्षिको विवाहः प्रचलति। तत्र साक्षिभूतस्याग्नेः विवाहसम्बन्धं द्रढीकरोति। सम्बन्धविच्छेदस्य नास्त्येवावसरः॥ अयमेव चिरन्तनः पन्थाः। तथैवात्रापि गार्हपत्याधानमश्वरूपाग्निसाक्षिकम्। तदिदमाधानं यजमानस्याहिताग्नेः अविच्छेदेन निरन्तरमग्निहोत्रादि कर्माण्यनुष्ठापयति। एवमेवाश्वस्य सञ्चरणमपि महाफलम्।

एवं पूर्वोत्तराङ्गसहितमाधानमनुष्ठाय सपत्नीको यजमानः साग्निको भवति। होमपूर्वाधानम् इष्टिपूर्वाधानम् सोमपूर्वाधानमिति त्रिविधम्। अर्थात् आधानं कृत्वाग्निहोत्रमेवानुतिष्ठन् यजमानो भविभवेच्चेद्धोमपूर्वाधानं भवति। अग्नीनाधाय पर्वणि पर्वणि दर्शपूर्णमासयोरनुष्ठानं चेद्भवेदिष्टिपूर्वाधानं कथ्यते। अग्न्याधानानन्तरमेव 'सोमेन यक्ष्ये' इति सङ्कल्प्याग्निष्टोम संस्थं सोमंकुर्याच्चेत्तत्सोमपूर्वाधानमिति व्यवह्रियते। अग्निहोत्रानुष्ठानन्तु सर्वदा भवेत्।

अग्निहोत्रम्—सायमारभ्य प्रातरपवर्गोऽग्निहोत्रस्य। अपवर्गोनाम समाप्तिः। कालद्वयानुष्ठितमिदमेकं कर्म। तदिदं 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति' 'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः' इत्यादिवाक्यैः नित्यं काम्यञ्च विहितम्। अग्निहोत्र शब्दः कर्मणो नामधेयम्। आधानानन्तरं तस्मिन्नेव दिने सायमग्निहोत्रस्यारम्भः कर्तव्यः। तत्र सायं होमेऽग्निः प्रजापतिश्च देवते पयोदधियवागूष्वन्यतमं द्रव्यम्। आहुतिद्वयमिदं भवति। प्रातर्होमे च सूर्यः प्रजापतिश्च देवते द्रव्यञ्च तदेवते। अत्र समुच्चितयोर्न देवतात्वं किन्तु देवतयोस्सतोः समुच्चयः। सायङ्कालिकहोमः सूर्यरश्मयो भूभागं परित्यज्य वृक्षाग्र एव प्रकाशमाना भवेयुः तदा कर्तव्यः। प्रातःकालिकहोमः प्राच्यां दिशि यदा सूर्यरश्मयः प्रादुर्भवन्ति तदानुष्ठेयः। अत्रैव केचन उदितहोमिनः केचिच्चानुदितहोमिन इति भेदः।

अग्निहोत्रानुष्ठान प्रकार :—सायं होमार्थं सङ्कल्प्य गार्हपत्याज्ज्वलन्तमग्निमुपवेषेणोद्धृत्य तं दक्षिणाग्नेरायतने तूष्णीं स्थापयित्वा गार्हपत्यात्पुनरग्निमुद्धृत्य समन्त्रकमाहवनीये स्थापयेत्। इदमेवाग्निप्रणयनं कथ्यते। यजमान इध्मकाष्ठानि स्वयमाहृतानि त्रिष्वप्यग्निषु क्रमेण निदध्यात्। अग्नीन् गन्धपुष्पाक्षतैरभ्यर्च्यालङ्कृत्य उदगग्रैः प्रागग्रैश्च कुशैः परिस्तृणुयात्। परिस्तरणं नाम आयतनानां परितः स्तरणम्। कुशा-

गोरक्षा आन्दोलन के सूत्रधार

भारतीय विद्या परम्परा के संरक्षक तथा उन्नायक

धर्म सम्राट्

परमपूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के

७५वें जन्म दिवस पर

श्रीचरणों में कोटि-कोटि नमन

श्री हरिः

—चुन्नीलाल जयपुरिया

एवं

समस्त परिवार

८ पृथ्वीराज रोड, नयी दिल्ली

बिहारीलाल वेणीप्रसाद एक्सपोर्ट एण्ड इम्पोर्ट प्रा० लि०

नामग्रभागाः उदग्दिशि प्राच्याञ्च दिशि यथा भवेयुस्तथास्तरणं भवेत्। आग्नि होत्रीं (यस्या गोः पयो दुग्ध्वा अग्निहोत्रं क्रिया सा गौः आग्निहोत्री कथ्यते। तां विहारे (यज्ञानुष्ठानस्थाने) दक्षिणत आनीय सूर्यास्तादनन्तरं तां दुग्ध्वा दुग्धं पयः कुम्भ्यां (श्रपणार्थं मार्तिकं पात्रं कुम्भी कथ्यते) निनीय त्रीनप्यग्नीन् परिषिच्य, गार्हपत्यादारभ्याहवनीयपर्यन्तमविच्छिन्नामुदकधारां प्रस्राव्य गार्हपत्याग्नेः अङ्गारान् पृथक्कृत्य तत्र पयः पूर्णां कुम्भीं निक्षिप्य श्रपयेत्। दोहनपात्रं प्रक्षाल्य दुग्धमिश्र किञ्चित् तज्जलं स्रुवआनीय कुम्भ्यां प्रतिषिच्य त्रिःपर्यग्निकृत्वा (पर्यग्निकरणं नाम ज्वलदङ्गारैर्भ्रामणम्) वर्त्मकरणं कुर्यात् कुम्भीं भूमौ निक्षिप्य प्राग्देशं प्रतिकर्षणम्। कुम्भ्या आकर्षणेन कृष्णवर्णो मार्गः कृतोभवति। अयमेव व्यापारः वर्त्मकरणमुच्यते। गार्हपत्यादुद्धृतानङ्गारान् गार्हपत्य एव प्रक्षिप्य स्रुवमाग्निहोत्रहवणीञ्चाहवनीये प्रतपेत्। तत्र कुम्भीतः पयो अग्निहोत्राहवण्यामानीय (आनयनमिदं हविकन्नयनमिति व्यवह्रियते) तत् गार्हपत्यस्य पश्चिमभागे स्थापयित्वा स्वहस्तमग्नौ प्रताप्य हविस्संमृश्य नवाङ्गुलपरिमाणामेकां पलाशसमिधमग्निहोत्रहवण्या उपरि धारयन् आहवनीय समीपमागत्य तत्पश्चिमभागे स्थापयित्वा अप उपस्पृश्य समिधमाहवनीय आधायाग्निहोत्रहवणीस्थ हविर्जुहुयादाहवनीये। इयमग्निहोत्रस्य प्रथमा आहुतिः। इयमग्निदैवत्या। अग्निहोत्र हवणीस्थंपयो लेपं हस्तेन गृहीत्वा भूमौ नृमृज्य गार्हपत्यं समीक्ष्याग्निहोत्रहवण्यां हविर्गृहीत्वा द्वितीयामाहुतिं जुहुयात्। इयं प्रजापति देवताकाहुतिः। एवं प्रातरप्याहुतिद्वयं होतव्यम्। तत्र प्रथमा सूर्यदेवताका द्वितीया च पूर्ववत्प्रजापति देवताका। इमाश्चतस्र आहुतयः प्रधान भूताः पूर्वाङ्गसहितं प्रधानं निष्पन्नम्। अग्निदैवतत्वादस्य कर्मणः अग्निहोत्रमिति नाम। ऋग्वेदिनामाहुतयो विंशतिसंख्याका भवन्ति—गार्हपत्ये चतस्रः दक्षिणाग्नौ चतस्र त्यष्टौ। प्रातरेवमष्टौ, मिलित्वा षोडश, पूर्वोक्ताश्च तस्र इति विंशतिः।

उत्तराङ्गानि—अग्नीनां **परिषेचनम्** उपस्थानम्। इदमुपस्थानमाहवनीयस्य दक्षिणभागे स्थित्वा यजमानः कुर्यात्। उपस्थानं नाम मन्त्राभिधानपूर्वकमुत्थानम्। वेदिमध्येऽग्निहोत्रहवणीं निधाय होमावशिष्टं लेपं भक्षयेत्। लेपो नामाग्निहोत्रहवण्यां स्थितो हविर्भागः। आचमनम्, स्रुचो निर्लेहनं कुर्यात्। निर्लेहनं नाम पात्रस्थितं हविश्शेषं जिह्वाग्रेण चूषणम्। हस्तं प्रक्षाल्याचम्य जलेनाग्निहोत्रहवणीं पूरयित्वा चतसृषु दिक्षु हस्तेन व्युत्सिचेत् (विभज्योर्द्धं सेचनं व्युत्सेचनम्) अत्र देवताः सर्पाः पिपीलिकाः सर्वेतर जनाः, सर्पदेवजनाश्च। पुनरग्निहोत्रहवणीं जलेन प्रपूर्याहवनीयस्य पश्चाद्देशे किञ्चज्जलं निनयति (निनयनं नाम क्षारम्) जलशेषं पत्न्या अञ्जलौ निनयेत्। पुनर्जलेनाग्निहोत्रहवणीं पूरयित्वा उदग्देशे सर्पाभ्यस्तज्जल निनयेत्। प्रत्यावृत्याग्नीन् प्रज्ज्वाल्य पूर्ववदग्नीन् **परिषिच्य** अनाज्ञानादिमन्त्रत्रयं जपित्वाग्निहोत्रहवण्यां **तृणमङ्कत्वा** आहवनीये **तत्प्रहृत्य** तां प्रक्षाल्य हविअन्नयनदेशेतज्जलं क्षारयेत्। वेद्यां यजमानों हस्तं प्रसार्य तस्मिन्नय **आसिच्य** स्वशिरस्यानयेत्। इदमासेचनमवभृथस्तान तुल्यं भवति। एतावान् कार्यकलापोऽग्निहोत्रं कर्म।

स्थूलशः पूर्वाङ्गकलापः		स्थूलशः उत्तराङ्गकलापः—
सङ्कल्पः	पर्यग्निकरणम्	परिषेचनम्
उद्धरणम्	वर्त्मकरणम्	उपस्थानम्
स्थापनम्	प्रतपनम्	लेपभक्षणम्
परिस्तरणम्	हविअन्नयनम्	निर्लेहनम्
दोहनम्	प्रतपनम्	व्युत्सेचनम्
निनयनम्	हविस्सम्मर्शनम्	निनयनम्
परिषेचनम्	उपरिधारणम्	आसेचनम्
प्रस्रावणम्	अपउपस्पर्शनम्	अञ्जनम्
श्रपणम्	निमृनम्	प्रहरणम्
प्रतिषिञ्चनम्	प्रधानाहुतिः	आसेचनम्

श्रौतकर्मस्वग्निहोत्रं प्रथमं कर्मेत्युक्तम्। आधानसिद्धाग्नित्रयसाध्यमिदमित्यप्यभिहितम्। अत्र योऽधिकारी स एव सप्तहविर्यज्ञेषु सप्तसोमसंस्थासु चाधिकरोति। दीनो वाढ्यो वा सर्वोऽपित्रैवर्णिको यावज्जीवति तदिदमग्निहोत्रमनुतिष्ठेत्। वेदेषु तदनुसृतेषु स्मृति पुराणादिष्वग्निहोत्रस्य यादृशी प्रशंसा तावती बहुव्ययेन महनाक्लेशेन बहुभिर्दिनैश्चसाध्यानां कर्मणां न दृश्यते। तत्रेदं कारणं प्रतिभाति—यदतिचञ्चलस्य मनसो निरोधायेदं प्रथमं कर्म। लघुकालेनाल्पव्ययेन च साध्यमिदं उपरि यजमानेन करिष्यमाणेषु कर्मसु मनोनिग्रहपथप्रदर्शकम्। मनोनिग्रहाभ्यासायैव हि सकलानि श्रौतानि कर्माणि विहितानि। विभिन्नै ऋत्विग्भिः अनुष्ठीयमाणेषु पदार्थेषु साध्वसाधुत्वयोर्निर्णयाय सावधानेन यजमानेन भवितव्यम्। अल्पीयसोऽप्यङ्गस्य विकृतिः प्रधानस्य फलजनकत्वं निरुणद्धि। सकलाङ्गैस्साहित्यं प्रधानस्या निवार्यम्। अङ्गानां साक्षात्फलजनकत्वशक्तेरभावेऽपि प्रधानसहितानि तानि तादृशशक्तिमन्ति भवन्ति। प्रधानानां तादृशशक्तिमत्वेऽपि विना अङ्गानां साहित्येन कुण्ठित शक्तिमन्ति प्रधानानि भवन्ति। दृष्टमदृष्टंवोपकारं जनयन्त्यङ्गानि स्वस्वापूर्वद्वारा प्रधानेन साहित्यं भजन्ते। आशुतरविनाशित्वं यथा प्रधानानां तथैवाङ्गानामपि तत्तुल्यमेव। तथापि वेदवचसां प्रामाण्यव्यवस्थापनाय किमप्येष्टव्यमेव भवति। तत्र मीमांसका तत्र तत्र किञ्चिदपूर्वं परिकल्पयन्तोऽङ्गानां प्रधानस्य च साहित्यं व्यवस्थापयन्ति। अग्निहोत्रस्य पूर्वाङ्गेषु सकलेषु यथावदनुष्ठितेषु स्वस्वापूर्वद्वारा प्रधानपर्यन्तं तानि गच्छन्ति। तदनन्तरं प्रधानानुष्ठानेन फलजनकीभूतमपूर्वं जायते, किन्तु तावता न पर्याप्तमित्युत्तराङ्गानि तत्स्थितये स्वस्वापूर्वद्वारा उपयुज्यन्ते, अन्यथा प्रधानजन्यमपूर्वं फलजनने शक्तिहीनमेव भवेत्। घटोत्पत्त्यर्थं कुलालः मृत्तिकासंयवनादीन्यङ्गानि कृत्वा आमघटमुत्पादयन्नपि न स सफलः परिगण्यते यावदाम घटस्य पाकाद्युत्तराङ्गं न निर्वर्तयेत्। अयमुपकार्योपकारक न्याय प्रजातन्त्रस्य महानुपकारकः। विषयान्तरमिदम्। मीमांसकैर्यदपूर्वमिति स्वीकृतं तच्छक्तिरूपम्। कर्मजन्यफलभोक्तुरात्मनि समवेतमिदं पूर्वोत्तराङ्गोपकृतमग्निहोत्रहोमजन्यमपूर्वं फलं भोक्तुं शक्तिमन्तं विधत्ते यजमानम्। काम्यं निषिद्धञ्च कर्मसन्त्यज्य नित्यं नैमित्तिकञ्चाचरन्तं दुरित क्षयद्वारा मुक्तिञ्च प्रापयति। अत एव शक्तेरतिरिक्त पदार्थत्वमास्थिषत मीमांसकाः।

यदि यजमानस्त्रैवर्णिक इष्टिपूर्वमाधानं कर्तुं वाञ्छति तर्हि विधिव-

सनातन धर्मसम्राट्, अनन्तश्री विभूषित

परमपूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के

७५वें जन्म दिवस पर

साष्टांग प्रणाम

—मनोहरलाल कुमार

अमरनाथ अशोक कुमार प्रा० लिमिटेड

A–21/25 नरायना, नई दिल्ली–110 028

फोन—कारखाना–560647

निवास : 589017

पता : N–100 कुमार भवन, कीर्तिनगर
नई दिल्ली

कुमार सन्स

6120 A–मेन सदर बाजार
दिल्ली-110 006
फोन : 516411

त्कृताधानः सः पौर्णमासेष्टिं कुर्यात् । पूर्णिमाया अनन्तरं या प्रतिपत् तस्यां क्रियमाणेष्टिः पौर्णमासेष्टिः । अमावास्याया अनन्तरं तदुत्तरा या प्रतिपत् तस्यां क्रियमाणेष्टिः दर्शेष्टिः । दर्श शब्दोऽमावास्यापर्यायः । पर्वद्वये क्रियमाणमिदमेकं कर्म । यथा सायमारभ्य प्रातरपवर्गोऽग्निहोत्रस्य तथैव पौर्णमासीमारभ्य दर्शापवर्गो दर्शपूर्णमासयोः । पर्वद्वयेऽपि द्व्यहसाध्यमिदं कर्म । अर्थात् पूर्णिमां दर्शञ्चारभ्यतत्तदुत्तर प्रतिपादि समाप्तिरिष्टेः । इय मिष्टिः सर्वासामिष्टीनां प्रकृतिः । इष्टिशब्देन स यागः कथ्यते यश्चौषधि प्रभवैर्व्रीहिय्वादिभिः दध्ना पयसाऽऽमिक्षया च निर्वर्त्यते । यत्र स्वापेक्षितानां समग्राणामङ्गानामाम्नानं तत्र प्रकृतिरितिव्यवहारः । यत्र च समग्राङ्गोपदेशो नास्ति स क्रतुर्विकृतिरिति व्यवह्रियते । यथा सौर्येष्टिः, चित्रेष्टिः, वैश्वानरेष्टिः चातुर्मास्येष्टिः एवमादयो विकृतयः । विकृतयश्च सद्यस्कालाः, अर्थाद् दर्शपूर्णमासयोरिव द्व्यहसाध्यत्वं विकृतीनां नास्ति । इमा इष्टयः श्रौताधानेन सम्पादितेष्वेवाग्निष्वनुष्ठेया इति प्रागभिहितम् । यथाग्निहोत्रमेकैकेन द्विजेनावश्यमनुष्ठेयम्, तथा सर्वेण द्विजेन श्रौताधानमवश्यानुष्ठेयम् अन्यस्थाऽनाहिताग्निताऽरूप दोषस्स्यात् । तत्र स्वपितुरनाहिताग्नित्वे स्वस्याधिकारो नास्ति । पितुराधानं कारयित्वा ततःस्वयमाधानं कुर्यात् । एवं ज्येष्ठभ्रातुरनाहिताग्नेराधानकरणेऽनिच्छायां वा ततोऽनुमतिमवाप्य कनीयान् आधानेऽधि कुर्यात् ।

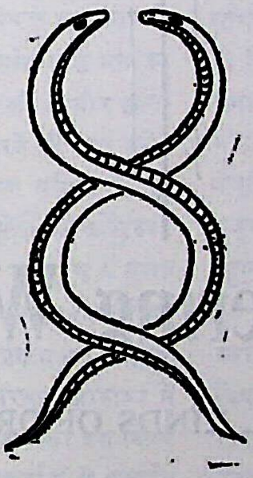

On the

AUSPICIOUS OCCASION OF

75th BIRTH ANNIVERSARY OF

SWAMI KARPATRI JI MAHARAJ

Best Compliments From :

Murari Engineering Works (1959)

SPECIALISTS IN ALL KINDS OF DROP FORGINGS

Post Box No. 199

Rajpura Road, Civil Lines. LUDHIANA (INDIA)

Gram : FORGING

Phones
Office : 21646
Fact. : 23728
Resi. : 23126

Bankers : **State Bank of India**

ब्राह्मण—श्रुति का अविभाज्य अंग

• आचार्य बलदेव उपाध्याय •

महर्षि आपस्तम्ब का प्रसिद्ध सूत्र है—"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' अर्थात् मन्त्र तथा ब्राह्मण इन दोनों का नाम वेद है। तात्पर्य है कि प्राचीन परम्परा के अनुसार वेद के अन्तर्गत दोनों ही आते हैं—मन्त्र (संहिता) तथा ब्राह्मण। मन्त्रों के समुदाय संहिता के नाम से प्रसिद्ध है। ब्राह्मण भाग अधिकांश गद्यात्मक है। वेद के इस स्वरूप के विषय में किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। ऋग्वेद, साम तथा अथर्व की संहिताओं में मन्त्र ही मात्र है, उनमें गद्यात्मक ब्राह्मण की सत्ता नहीं है। यह सत्ता है कृष्णयजुर्वेदीय संहिता में तैत्तिरीय, काठक आदि कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध संहिताओं में मन्त्रों के साथ ही साथ गद्यभाग (अर्थात् ब्राह्मण) भी उपलब्ध होता है। इसी मिश्रण के कारण इस यजुर्वेद की कृष्णता युक्तियुक्त मानी जाती है, क्योंकि यहाँ दोनों ही उपलब्ध हैं। फलतः ब्राह्मण भी श्रुति का ही अंग है और यही परम्परा है। परन्तु गत शताब्दी में दयानन्द सरस्वती (आर्य समाज के संस्थापक) ने इससे विरुद्ध मत का प्रचार किया। इस लेख में पारम्परिक मत के प्रामाण्य की गम्भीर छानवीन की गयी है। पाठक इसे सावधानी से अनुशीलन करने की कृपा करें।

निघन्टु में संगृहीत वैदिक शब्दों में से केवल मन्त्र संहिता से ही सम्बंद्ध शब्दों का चयन नहीं मिलता, प्रत्युत ब्राह्मणों से भी। यास्क निरुक्त में संहिता तथा ब्राह्मण-उभय स्थानों में प्रयुक्त शब्दों के उदाहरण में तत्तत् ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। पाणिनि तथा कात्यायन स्वरवैदिकी से सम्बद्ध अपने सूत्रों में 'वेदे', 'छन्दसि' आदि पदों का प्रयोग कर 'ब्राह्मण' को निःसंदिग्ध श्रुति होने का तो संकेत मात्र करते हैं, परन्तु महाभाष्य में पतंजलि तो वेद के अन्तर्गत ब्राह्मण ग्रन्थों से अनेक उद्धरण देकर इस विषय का प्रचुर प्रमाण उपस्थित करते हैं। महर्षि पाणिनि 'छन्दसि' के अन्तर्गत मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों के उदाहरणों को समाविष्ट करते हैं। 'चतुर्थ्यर्थम् बहुलं छन्दसि' (पाणिनि २।३।६२) सूत्र के द्वारा मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद में चतुर्थी के स्थान पर कहीं षष्ठी का विधान निर्दिष्ट किया गया है। 'पुरुषमृगश्चन्द्रमसः' तथा 'पुरुषमृगश्चन्द्रमसे' यह तो मन्त्र का उदाहरण है। 'या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वोजायते'—इस वाक्य में 'तस्याः' षष्ठी के स्थान पर चतुर्थी उपलब्ध होती है। 'यां मलवद्वाससं सम्भवन्ति, यस्ततो जायते सोऽभिशस्तो, यामरण्ये तस्यै स्तेनो, या स्नाति तस्या अप्सु कारको, याऽभ्यङ्क्त तस्यै दुश्चर्मा'—आदि अनेक ब्राह्मण वचनों का उद्धरण महाभाष्य में किया गया है। तात्पर्य यह है कि महर्षि पाणिनि की दृष्टि में 'छन्दसि' के द्वारा मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों का ग्रहण अभीष्ट है। फलतः वे ब्राह्मण को वेद का अविभाज्य अंग मानते हैं।

किन्हीं सूत्रों में पाणिनि ने 'भाषा' विषयक नियमों का निर्देश किया है अर्थात् वे नियम बोलचाल की संस्कृत भाषा के ही लिए हैं। 'भाषा' से भिन्न होता है--वेद। फलतः ऐसे सूत्रों के प्रत्युदाहरण में मन्त्र तथा ब्राह्मण उभय ग्रन्थों से समानरूपेण उद्धरण दिया गया है। "प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्" (पा० सू० ७।२।२८) ऐसा ही सूत्र है। युष्मद् शब्द के प्रथमा द्विवचन में भाषा में तो 'युवाम्' होता है, परन्तु भाषा भिन्न में 'युवम्' होता है। यहाँ मन्त्र का उदाहरण है 'युवं सुतरामश्विना' (वाज० सं० २०।७६) तथा ब्राह्मण के उदाहरण हैं—'युवं वै ब्रह्माणौ भिषजौ' (श० ८।२।१।३) जो शतपथ ब्राह्मण का वाक्य है तथा 'युवमिदं निष्कुरुतम्' (ऐ० ब्रा० २।२८) जो ऐतरेय ब्राह्मण का उद्धरण है। स्पष्ट है पाणिनि की सम्मति में मन्त्र और ब्राह्मण में किसी प्रकार का पार्थक्य मानना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि दोनों ही वेद के ही अंग हैं। समान रूप से वेद होते हुए भी यजुर्वेद और सामवेद में श, ष, स, ह वर्णों के आगे रहने पर अनुस्वार का 'गुं' हो जाता है, किन्तु ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में यह नियम नहीं लगता। उसी प्रकार समान रूप से वेद होने पर भी कार्य मन्त्र में नहीं होता, ब्राह्मणों में होता है और कुछ कार्य ब्राह्मणों में न होकर मन्त्रों में ही होता है। 'देवसुम्नयोर्यजुषि काठके' (पा० ७।४।३८) सूत्र के द्वारा देव और सुम्न शब्दों के साथ यजुर्वेद की कठ शाखा में ही आकार का विधान होता है। जिससे 'देवायन्तः' 'सुम्नायन्तः' पद बनते हैं।

महर्षि पाणिनि ने वेद भण्डार का स्वतः गम्भीर अनुशीलन कर स्वरवैदिकी के अपने सूत्रों का प्रणयन किया है। यह तथ्य उनके वेद विषयक विस्तृत अध्ययन तथा स्वर सम्बन्धी विश्लेषण की गम्भीरता का सद्यःसूचक है। पाणिनि ने अपने एक सूत्र (३।१।१२३) में निष्टर्क्यं, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय आदि निपातनात् सिद्ध होने वाले १७ शब्दों की एक लम्बी सूची दी है, जिन्हें वे 'छन्दसि' सिद्ध मानते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि इन शब्दों में कुछ शब्द संहिता में उपलब्ध होते हैं और कुछ ब्राह्मणों में ही प्राप्त होते हैं। इनमें छः शब्द ऋग्वेद एवं यजुर्वेद के ही अन्तर्गत नियमतः मिलते हैं—देवहूय (ऋ० ७।८५।२), खन्य, (तै० सं० ७, ४; १३, १), ब्रह्मवाद्य (तै० सं० २, ५, ८, ३), उच्छिष्य (मै० सं० ३, ९, २), प्रणीय (मै० सं० ३, ९, १) उपचाय्यपद (काठक: सं० ११, १)। इसी सूत्र में निर्दिष्ट शब्दों में 'स्तर्याध्वर्यं' भी है जिसकी महाभाष्य में दी गयी व्याख्या के अनुसार काशिकाकार तथा भट्टोजिदीक्षित इसका पदच्छेद 'स्तर्या+अध्वर्यं' करते हैं तथा स्त्रीलिंग 'स्तर्या' शब्द को ही इन निपातनों में गिनते हैं, पुल्लिग 'स्तर्यं' को नहीं। परन्तु 'स्त्रीलिंग' 'स्तर्या' शब्द किसी भी वैदिक ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है। शतपथ ब्राह्मण ही ऐसा वैदिक ग्रन्थ है, जो पुल्लिग 'स्तर्यं' का प्रयोग करता है तथा साथ ही उसके नञ् समास प्रयुक्त 'अस्तर्यं' शब्द का भी। दोनों पुल्लिग

॥ श्री हरिः ॥

विश्व वन्दनीय यतिचक्र चूड़ामणि

अनन्तश्री स्वामी करपात्री जी महाराज की

७५ वीं वर्षगाँठ पर

विनम्र प्रणाम करते हुए भगवान विश्वनाथ जी के चरणों में प्रार्थना है कि
देश, धर्म और गोमाता की रक्षा के लिये
पूज्य श्रीचरण को दीर्घायु प्रदान करें ।

— चमनलाल अग्रवाल
कोषाध्यक्ष
अखिल भारतीय धर्मसंघ

⁂

सूरजमल शोरीलाल

केमिकल विक्रेता, कनक मंडी, अमृतसर

तार—GOWSEWA

फोन : कार्यालय—४४७४०, ४३३८१
आवास—४५४८७, ४३३८२

में ही है, स्त्रीलिंग अप्रयुक्त ही है। शतपथ ब्रा० (२, २, २, १०) का उद्धरण इस प्रकार है—"ते होचुः, हन्तेदम् अमृतम् अन्तरात्मन्नादधाकहै, त इदममृतम् अन्तरात्मन्नाधाय अमृता भूत्वा अस्तर्याभूत्वा स्तर्यान् सयत्नान् मर्त्यान भि भविष्याम" इति।

प्रसंग है देव तथा असुरों के परस्पर संघर्ष का। देवों ने विचार किया कि हमलोग अपने अन्तरात्माने अमृत अग्नि को (अभिमन्त्रित अग्नि को) धारण करेंगे, जिससे हम लोग अगर अमृत तथा अजेय (अस्तर्य) बन जाएँगे और अपने 'हिंस्य' (स्तर्य) शत्रु रूप मर्त्यों का अभिभव कर सकेंगे। सायण ने अपने भाष्य में इसी अर्थ की ओर स्पष्टः संकेत किया है—

"अमृतरूपाऽग्निधारणेन यस्मादाहिताग्निः अहिंस्यस्तस्मात् विवदमानोऽसौ अनाहिताग्निं अभिभवितुं शक्नोति इत्यर्थः।"

निष्कर्ष यह है सायण 'अस्तर्य' का अर्थ 'अहिंस्य' (मारने में अयोग्य जीतने में अयोग्य) मानते हैं। पाणिनि के पूर्वोक्त सूत्र के अनुशीलन का फल है—

(क) 'स्तर्याध्वर्य' का पदच्छेद स्तर्य+अध्वर्य करना चाहिये, स्तर्या+अध्वर्य नहीं—

(ख) पाणिनि शतपथ ब्राह्मण से पूर्णतया परिचित हैं। फलतः संहिता तथा ब्राह्मण दोनों प्रकार के ग्रन्थों का संकेत वे 'छन्दस्' शब्द के द्वारा स्पष्टतः करते हैं। पाणिनि के प्रामाण्य पर शतपथ ब्राह्मण वेद का अविभाज्य अंग है—इसमें सन्देह करने के लिए लेशमात्र भी स्थान नहीं है।

पतंजलि ने अपने महाभाष्य में ऐसा ही किया है—

१—'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ" (१।१।५६) की व्याख्या में 'वेदेऽपि सोमस्य स्थाने पूतिकातृणान्यभिषुणुयादित्युच्यते' यहाँ ब्राह्मण का वचन 'वेद' कहा गया है।

२—एकः पूर्वपरयोः (१।३।८४) पर भाष्यकार का कथन है—'वेदे खल्वपि वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निहोत्रादिभिः क्रतुभिर्यजेत्।' यहाँ ब्राह्मणवाक्य वेद शब्द से अभिहित है।

३—'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति'—यह श्रुति मन्त्र भाग में उपलब्ध नहीं होती। यह स्पष्टतः ब्राह्मण वाक्य है।

४—'ते सुरा हेलय हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवु स्तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै, नापभाषितवै। म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः'—महाभाष्यकर ने यह श्रुति उपस्थापित की है, परन्तु यह संहिता में कहीं उपलब्ध नहीं होती।

५—पस्पशाह्निक में पतंजलि ने ब्राह्मण के चार वाक्यों को वेद शब्द के द्वारा उपधृत किया है, यथा 'योऽग्निष्टोमेन यजते उ एनं वेद' आदि वाक्य तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।११।७।२) के ही हैं।

इस प्रकार पाणिनीय व्याकरण के सूत्रों एवं तदुपरि निर्मित भाष्य के अनुशीलन करने से यह स्पष्टतः प्रतिपादित होता है कि इनके रचयिता क्रमशः महर्षि पाणिनि तथा पतंजलि की दृष्टि में श्रुति से बाह्य नहीं है, प्रत्युत वे श्रुति के अन्तर्गत एक नितान्त उपादेय एवं आवश्यक अंग हैं। ऐसे उदाहरणों से स्पष्ट है कि भाष्य पाणिनि के समान वेद वाक्य के द्वार ब्राह्मणों का भी ग्रहण करते हैं।

दर्शनों का असंदिग्ध प्रमाण—महर्षि कणाद ने भी 'ब्राह्मण' को परमेश्वर कर्तृक ही माना है। 'बुद्धिपूर्वा नामकृत्तिर्वेदे (वैशेषिक सूत्र ६।१।१) का तात्पर्य है कि 'स्वर्गकामो यजेत' आदि वाक्यों की रचना निर्दोष, स्वतन्त्र एवं सर्वज्ञ पुरुष के द्वारा ही की गयी है। दूसरे सूत्र 'ब्राह्मणे संज्ञा कर्म सिद्धिलिंगम् (वै० सू० ६।१।२) का तात्पर्य है कि जैसे पिता लोक में अपने पुत्र का नाम विष्णुमित्र आदि रखता है, उसी प्रकार ब्राह्मण मात्र में 'उद्भिदा यजेत, अभिजिता यजेत' आदि वाक्यों में उद्भिद तथा अभिजित आदि नामकरण सर्वज्ञ परमेश्वर ही करता है। फलतः ब्राह्मण भाग परमेश्वर कर्तृक ही है। जिस प्रकार मन्त्र भाग—कणाद मुनि की, यही मान्यता है।

न्याय के सूत्रकार गौतम एवं भाष्यकार वात्स्यायन ने वेदों में अनेक दोषों को दिखलाकर उनका विधिवत् प्रमाणिक रूप से समाधान किया है। ये दोनों कार्य—दोषारोपण एवं समाधान—ब्राह्मण वाक्यों के ही आधार पर सम्पन्न किया गया है। उदाहरणों से स्पष्टीकरण आवश्यक है। गौतम ने वेद को अप्रामाण्य के लिए तीन दोषों को दिखलाया है।[1] (क) अनृत दोष। 'पुत्र की कामना वाला व्यक्ति पुत्रेष्टि के द्वारा यज्ञ करें'—यह श्रुति में निर्दिष्ट है परन्तु पुत्रेष्टि करने पर भी पुत्र की प्राप्ति नहीं होती तो यह अनृत दोष है। (ख) व्याघात दोष की सत्ता वेद में है। 'सूर्य के उदय होने पर हवन करें। सूर्य के उदय होने से पूर्व ही हवन करें तथा सूर्य की वेला बीत जाने पर हवन करता है—ऐसा आदेश है, परन्तु इस आदेश की वहीं निन्दा भी की गयी है। (ग) पुनरुक्त दोष—प्रथम ऋचा को तीन बार और अन्तिम ऋचा को भी तीन बार उच्चरित करना चाहिए—यह नियम पुनरुक्ति का उदाहरण है।

अब इस दोषारोपण का समाधान भी वहीं दिया गया है। जो उसी क्रम से यहाँ दिया गया है.—

(क) पुत्रेष्टि प्रभृति भागों का यथाविधि अनुष्ठान होने पर पुत्र आदि फल की प्राप्ति अवश्य होती है। कर्म, कर्ता एवं साधन के त्रैगुण्य के कारण पुत्रेष्टि आदि में फल नहीं मिलता। इतने से यह असत्य बात का उपदेश देने के कारण वेद अप्रमाण है—ऐसा नहीं कहा जा सकता।[2]

(ख) अदित, अनुदिते एवं सकमाध्युषिते—ये तीन पक्ष हवन करने के लिए निर्दिष्ट हैं इनमें से संकलन करते समय एक पक्ष का ग्रहण अभिष्ट होता है। एक को स्वीकार कर जो इसका पालन नहीं करता उसी के लिए अर्कवाद वाक्य में श्याव—श्यबल कुत्तों के द्वारा आहुति के परिगृहीत होने की बात कही गयी है। मीमांसकों का यह सिद्धान्त है कि निन्दा वाक्यों का तात्पर्य किसी की निन्दा में न होकर विधेय की स्तुति में होता है। इसलिये

---

[1] १. तदप्रमाण्यमनृत—व्याघात—पुनरुक्तदोषेभ्यः (न्याय सूत्र २।१।५७)।

[2] २. कर्मकर्तृसाधनवैग्रण्यातु (न्या० सू० २।१।५८ पर भाष्य)।

On the auspicious occasion of 75th Birthday of Sri Swami Karpatriji Maharaj

With Best Compliments from :

BALD GAUM AUTO INDUSTRIES Pvt. Ltd.

Industrial Estate
JODHPUR-342 003 (RAJ.)

TELGRAMS : BALIND
TELEPHONE : 21431 & 21831

Manufacturers of :

All Types of Automobile Radiators and Spares i.e. Jeep, Cars, Trucks & Tractors in technical Collaboration with M/s. Joshua Bigwood Ltd. England.

With Best Compliments from :

M/s. HINDUSTHAN RADIATORS COMPANY

Industrial Estate. JODHPUR (Raj.)

Office : **Station Road, Jodhpur**
Phone : 22277

Grams : RADIATORS
Phone : Factory : 21431 & 23069
Telex : 352 211 HIND IN

TAMBRA PATRA AWARDED IN 1977 BY PRESIDENT OF INDIA

Manufacturers & Expcters of :

Automobile Radiators for Jeeps, Cars, Trucks, Tractors and Industrial Engines, Inter coolers and Inter cooler Sections for Heavy compressors in technical Collaboration with West Germany.

Original Equipment Supplied to :

1. Holman Climax Mfg. Ltd. — Titagarh.
2. C. P. Tools (India) Ltd. — Bombay.
3. Ingersoll Rand (India) P Ltd. — Ahmedabad.
4. Indian Cranes Co. Ltd. — Calcutta
5. Plasser (IndIa) P. Ltd. — Faridabad
6. Rajasthan State Road-Transport Corpn. — Jaipur

Supplying as Import substitute to :

1. O. N. G. C.
2. Indian Railways.

यहाँ पर संकल्पित पक्ष में दृढ़ निष्ठा करने के लिए अन्य पक्षों में दोष दिखलाया गया है। फलतः यतो व्याघात दोष नहीं है।[1]

(ग) सामधेनी ऋचाएँ संख्या में एकादश हैं। उन्हें पन्द्रह बनाने के लिए ही प्रथम तथा अन्तिम ऋचाओं की तीन बार आवृत्ति की जाती है। 'अनुवादोपपत्तेश्च' (न्याय सूत्र २।१।६०) में स्पष्ट कहा गया है कि किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए की गयी आवृत्ति अनर्थक नहीं होती। 'यह है पन्द्रह बार बोले गये वाणी रूपी वनु से अपने उस शत्रु को नष्ट करता हूँ जो हमसे द्वेष करता है और फलतः हम भी जिससे द्वेष करते हैं।[2] यह मन्त्र पन्द्रह सामिधेनी ऋचाओं को वज्र होना बतलाता है परन्तु बिना मन्त्र की आवृत्ति किए पंचदश संख्या बन नहीं सकती। फलतः यहाँ कोई भी 'पुनरुक्त' दोष नहीं है।

निष्कर्ष यह है कि वेद के आप्रामाण्य का विचार गौतम तथा वात्स्यायन ने ब्राह्मण वाक्यों के आधार पर ही किया है। दोष तथा उसका समाधान दोनों की आधारशिला ब्राह्मण वाक्य ही तो है। दोषों के समाधान द्वारा वेद का प्रामाण्य सिद्ध किया गया है—न्याय सूत्रों तथा उसके भाष्य में। अतः इसके द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थ वेद ही है—इसमें किसी प्रकार का सन्देह उपस्थित नहीं होता।

वादरायण की सम्मति—महर्षि वादरायण ने अपने ब्रह्मसूत्र में अनेक ब्राह्मण वाक्यों को श्रुति शब्द के द्वारा साक्षात् संकेतित किया है। ऊपर कहा गया है कि उपनिषद् 'ब्राह्मण' के ही अंतिम अंश हैं। इसीलिए वे वेदान्त जैसे सार्थक नाम के द्वारा सूचित किये जाते हैं। वेद के अन्त में स्थित होने के कारण उपनिषद् वेदान्त शब्द द्वारा निर्दिष्ट किये जाते हैं। इन उपनिषदों की ही मीमांसा 'ब्रह्मसूत्र' में उपन्यस्त की गयी है और यह ब्रह्मसूत्र अनेक स्पष्ट शब्दों में उपनिषदों को 'श्रुति' कहकर पुकारता है। दो तीन उदाहरण प्रर्याप्त होंगे।

(क) परात्तु तच्छ्रुतेः (ब्रह्मसूत्र २।३।४१) सूत्र में अविद्यावस्था के जीव के कर्तृत्व का विचार किया गया है। जीव का कर्तृत्व ईश्वरानपेक्ष है या ईश्वर सापेक्ष है ? इस प्रश्न का उत्तर शंकराचार्य के शब्दों में है कि कर्माध्यक्ष सर्वभूताधिवास साक्षी एवं चेतयिता परमात्मा की अनुज्ञा से ही जीव की कर्तृत्व भोक्तृत्व रूप संसार की सिद्धि होती है। इसमें प्रमाण है श्रुति और यहाँ श्रुति के द्वारा कौषीतकी उपनिषद् (३।८) का संकेत किया गया है जिसका आशय है जिस जीव का परमात्मा संसार से उन्नयन करना चाहता है उससे तो वह साधुकर्म करवाता है और जिसे अधोलोक में ले जाना चाहता है उससे असाधु कर्म करवाता है। परमात्मा का ही आदेश जीव के लिए सर्वोपरि है।

(ख) "सूत्रकश्च हि श्रुतं राचक्षते हि तद्विदः" (ब्र० सू० ३।२।४) अर्थ का आशय है कि स्वप्न भविष्य में होने वाले साधु एवं असाधु कार्यों का सूचक नियमेन होता है। इस तथ्य के सूचक हैं श्रुति के वाक्य और इन वाक्यों के अन्तर्गत छान्दोग्य उपनिषद् (५।२।९) का निर्देश शंकराचार्य ने किया है।[1] और उपनिषदों के वाक्य भी यहाँ श्रुतिवाक्य मानकर उद्धृत किये गये हैं।

(ग) तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च (ब्र० सू० ३।२।७) सूत्र में वादरायण ने सुषुप्ति विषयक श्रुतियों का उल्लेख किया है। जिनके द्वारा यह सिद्ध किया जाता है कि जीव सुषुप्तावस्था में भिन्न-भिन्न नाड़ियों में निवास करता है। इस पर विचार किया गया है कि सुषुप्ति स्थान भिन्न होते हैं ? अथवा परस्परापेक्ष से एक ही सुषुप्ति स्थान होता है। यह पूरा का पूरा प्रकरण उपनिषदों के ही आधार पर है। शांकर भाष्य में छान्दोग्य ८।६।३, बृहदा० २।१।१९, कौषी० ४।१९, बृहदा० २।१।१७ आदि विभिन्न वाक्यों का उद्धरण देकर विषय की भरपूर मीमांसा की की गयी है।

हमारे लिए इतना ही ज्ञान आवश्यक है कि इन सूत्रों में वादरायण तथा भाष्यकार शंकर ने बृहदारण्यक, छान्दोग्य, कौषीतकी, कठ आदि उपनिषदों को ही 'श्रुति' शब्द से अभिहित किया है। फलतः वे ब्राह्मणों को, जिसके अन्तर्गत उपनिषदों का पूरा साम्राज्य विराजता है—श्रुति का ही अंग मानते हैं, अन्यथा नहीं।

जैमिनि का प्रामाण्य—अन्त में मीमांसा सूत्रों का इस समस्या के समाधान के लिए योगदान की परीक्षा करें। यह तो सर्वत्र प्रसिद्ध है कि वेद के दो विभाग हैं—कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड। ज्ञानकाण्ड की मीममांसा ब्रह्मसूत्रों का विषय है तथा कर्मकाण्ड की विचारणा जैमिनि सूत्रों का विषय है। महर्षि जैमिनि ने अपनी द्वादशलक्षणी 'कर्ममीमांसा' के द्वारा वेद के समग्र कर्मकाण्ड का—यज्ञ, उनके अनुष्ठान एवं विधान, उनके भीतर विद्यमान नाना विसंगतियों का—बड़े विस्तार के साथ बड़ी, ऊहापोह शैली में विचार प्रस्तुत किया है। जैमिनि के सूत्रों में आदि से अन्त तक ब्राह्मण ग्रन्थों में निर्दिष्ट विषयों का ही प्रचुर मात्रा में विवेचन एवं उपबृंहण है। यहाँ सर्वत्र ही ब्राह्मण द्वारा विशेषण उपन्यस्त विषयों की मीमांसा है और ये ब्राह्मण ग्रन्थ श्रुति के अविभाज्य अंग स्वीकृत किये गये हैं।

महर्षि जैमिनि के ग्रन्थ निर्माण का उद्देश्य ही है धर्ममीमांसा और इसीलिए उसका आदिम सूत्र है—अथातोधर्मजिज्ञासा। और यह धर्म का अर्थात् वैदिक धर्म का स्वरूप ब्राह्मणों से ही प्रतिपादित है। इसके विषय में मीमांसा दर्शन के प्रतिष्ठापक और जैमिनि एवं भाष्यकार शबर स्वामी के मत में किसी प्रकार का वैमत्य नहीं है।

शेषे ब्राह्मण शब्दः (मीमांसा सूत्र २।१।३०) के ऊपर भाष्यकार शबर स्वामी का कथन नितान्त स्पष्ट है—

'मन्त्राश्च ब्राह्मणं च वेदः। तत्र मन्त्रालक्षण उक्ते परिशेषसिद्धत्वात् ब्राह्मण लक्षण भवचनीयम्।' तात्पर्य यह है कि मन्त्र और ब्राह्मण दोनों

---

[1] अभ्युपेत्यकाले दोष वचनात् (वही २।१।५९ पर भाष्य देखिए)।

[2] तथा च मन्त्राविवादः—'इदमहं भ्रातृव्यं पंचदशावरेण वा व बाधे यो स्मरण द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः'।

---

[1] यदा कर्मस्तु काम्येषु, रियामं स्वप्नेषु पश्यति।
समृद्धि तत्र जानीयात्तस्मिन् स्वप्न निदर्शने॥ (छान्दोग्य उप०५।२।९)।

परमपूज्य गुरुदेव स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के श्रीचरणों में सपरिवार बारम्बार नमन

चरण किंकर

—गोपाल दास डागा
—गोविन्द लाल डागा
—गिरधर लाल डागा

मेसर्स **सुन्दर लाल डागा**

जोशी वाडा
बीकानेर-३३४ ००१ (राजस्थान)

दूरभाष : कार्यालय—४६१५, निवास—३९७५

मिलकर वेद होते हैं। मन्त्र का लक्षण जब कह दिया तब परिशेषात् ब्राह्मण का लक्षण भी सिद्ध हो ही जाता है। उसे कहने की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

धर्म का लक्षण जैमिनि ने किया है—चोदनालक्षणो यो धर्मः (जै० सू० १।१।२) यहाँ विधिवाक्य के द्वारा स्थापित इष्टसिद्धिदायक वस्तु ही 'धर्म' शब्द के द्वारा अभिहित की गयी है। फलतः धर्म में विधिवाक्य की ही प्रमाणता मानी गयी है। और यह विधि वाक्य तो ब्राह्मणों में ही उपलब्ध होता है मन्त्रों में नहीं। यथा 'स्वर्गकामोयजेत्' यह विधि वाक्य ताण्डय महाब्राह्मण में उपलब्ध होता है।[1]

मीमांसा सूत्रों का पूरा प्रासाद ही ब्राह्मण साहित्य में निर्दिष्ट विधि विधानों के आधार पर ही तो प्रतिष्ठित है। सैकड़ों ऐसे स्थल हैं जहाँ महर्षि जैमिनि ब्राह्मण को वेद रूप मानकर अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। फलतः भारतीय विभिन्न दार्शनिकों की दृष्टि में ब्राह्मण वेद का अविभाज्य अंग है।

मनुस्मृति का प्रामाण्य—मनुस्मृति के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि यह स्मृति वेद अथवा श्रुति के अन्तर्गत ब्राह्मणों का भी समावेश पूर्णतया करती है। वह ब्राह्मणों को भी उसी प्रकार श्रुति मानती है, जिस प्रकार किसी मन्त्र को। कतिपय उदाहरणों से इसका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

(१) धर्मंजिज्ञासमानां प्रमाणं परमंश्रुतिः (म० स्मृ० १।१३)। इसका अर्थ है कि धर्म की जिज्ञासा करने वालों के लिए श्रुति परम प्रमाण है। धर्म से तात्पर्य अग्निहोत्रादिकों से है, परन्तु यह धर्म वर्णित है कहाँ ? ब्राह्मणों में ही तो, यथा शतपथ ब्राह्मण की उक्ति है 'अग्निहोत्रंजुहुयात् (श० ब्रा० २।८)।

(२) श्रुतिस्तु वेदोविज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः (म० स्मृ० २।१०)। यहाँ श्रुति तथा वेद का अभेद प्रतिपादित किया गया है। 'विविधाश्चौपर्षनधीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः' (म० स्मृ० ६।२९) यहाँ मनु के उपनिषदों को 'श्रुति' अर्थात् वेद कहा है। ये उपनिषद् तो ब्राह्मण के ही तो अंग हैं।

(३) उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा सर्वथा वर्तते यज्ञः इतीयं वैदिकी श्रुतिः ।। (२।१५) यहाँ मनु ने 'उदिते जुहोति, अनुदिते जुहोति' इन ब्राह्मण वाक्यों को श्रुति माना है।

(४) वर्णाश्रम धर्म का विधान वेद में मनु मानते हैं, किन्तु अग्निहोत्र, दर्श पौर्णमास आदि धार्मिक विधानों एवं अनुष्ठानों का निर्देश तो ब्राह्मणों के ही उपलब्ध होता है। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो मनुस्मृति में ब्राह्मणों के प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों का स्थान निर्देशपूर्वक प्रयोग किया गया है जिससे उस वैदिक निर्देश का सम्बन्ध ब्राह्मणों से स्पष्टतः स्थापित किया गया है। किसी युद्ध में विजयी सेना के लिए मनु का आदेश है कि वह 'उद्धार' को अपने राजा को दे जिसकी ओर से सैनिक ने लड़कर विजय प्राप्त किया है।

(५) राज्ञश्च दद्युरुद्धार रत्येषा वैदिकी श्रुतिः (७।७९) यहाँ वैदिकी श्रुति से तात्पर्य ऐतरेय ब्राह्मण के इस वाक्य से है जहाँ पूर्वोक्त तथ्य तथा शब्द दोनों प्रयुक्त किये गए हैं—'इन्द्रो वैवृत्रंहत्वा—स महान् भूत्वा देवता अब्रवीत् उद्धारं म उद्धरत्'[1] (ऐत० ब्रा० ३।२१)। निष्कर्ष यह है कि विजित द्रव्यों में से उत्तम बहुमूल्य द्रव्यों को छाँटकर निकाला गया सुवर्ण, रजत आदि पदार्थ 'उद्धार' शब्द के द्वारा अभिहित किया गया है। यह शब्द वेद में ही प्रयुक्त है, मनुस्मृति में यह ब्राह्मण वाक्य का अक्षरशः अनुवाद किया है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि मनुस्मृति में ब्राह्मण ग्रन्थों में निर्दिष्ट धर्मों को वैदिक श्रुति द्वारा प्रतिपादित धर्म अंगीकृत किया है। मनु प्राचीन परम्परा के ही तो पूर्ण समर्थक जो थे।

ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के व्याख्यान माने जाते हैं। इससे तो उनके वेदत्व में किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती। बिना सम्प्रदाय की विच्छिन्नता के किसी कर्ता की स्मृति न रहने से ब्राह्मण भी उसी प्रकार अपौरुषेय है, जिस प्रकार मन्त्र है। व्याख्यानरूपता एवं व्याख्येयरूपता पौरुषेयता एवं अपौरुषेयता के प्रयोजक नहीं हैं अर्थात् जो ग्रन्थ व्याख्येय (व्याख्या करने योग्य) है वह अपौरुषेय है तथा जो व्याख्यात है वह पौरुषेय है—यह कथन कथमपि उचित नहीं माना जा सकता। गौतम के न्याय सूत्र भी व्याख्येय हैं, तो क्या उसे कोई भी व्यक्ति उसे वेद मानता है ? नहीं, कथमपि नहीं। दूसरी ओर यह भी विचारणीय है। मन्त्रों में भी व्याख्यान शैली का दर्शन होता है। मन्त्रों की जो आवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, उसके तत् तत् स्थान पर उनके पर्याय ही विद्यमान होते हैं। फलतः एक शब्द के स्थान पर तत्पर्याय देने की शैली ब्राह्मणों के समान मन्त्र भागों में भी विद्यमान दीखती है। तो इतने मात्र से क्या कोई भी सचेता मन्त्रों को वेद वाक्य करने के लिए कथमपि उद्यत होगा ? नहीं, कभी नहीं। इसलिए ब्राह्मणों में मन्त्रों के व्याख्यान होने पर भी उसे पौरुषेय मानने का कोई भी तर्क तथा युक्ति नहीं है।

इस अनुशीलन से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ब्राह्मणों में भी मन्त्रों के समान ही अपौरुषेयता विद्यमान है। इसलिए दोनों ही श्रुति है—वेद है। मन्त्र को श्रुति मानना एवं ब्राह्मण को श्रुति भिन्न मानना—ऊपर प्रदर्शित प्रमाणिक प्राचीन परम्परा का सर्वथा अपलाप करना है। फलतः प्राचीन परम्परा तथा तर्कयुक्ति दोनों के आधार पर ब्राह्मण श्रुति का ही अविभाज्य अंग सिद्ध होता है—इस सिद्धान्त में सन्देह करने का कोई भी स्थान नहीं है।

---

[1] विशेष द्रष्टव्य—स्वामी करपात्री जी रचित 'वेदार्थ पारिजातः' प्रथम भाग, पृष्ठ ७२९–७५०, कलकत्ता, १९७९ ई०।

[1] 'उद्धार' शब्द का अर्थ है—उत्तमं द्रव्यमुद्धृत्य दद्युरित्यर्थः (मेधातिथि) उद्ध्रियते इति उद्धारो जितधनादुत्कृष्टधनं सुवर्ण रजत कुप्यादि राज्ञे समर्पणीयम् केल्लुकभट्ट।

गोरक्षा आन्दोलन के सूत्रधार

धर्म सम्राट्

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के

७५वें जन्म दिवस पर

श्रीचरणों में वन्दन

रामलाल भगवान दास बजाज

अबोहर–पंजाब

भारतीय संस्कृति एवं सनातन धर्म के मूर्तिमान स्वरूप

अनन्त श्रीविभूषित

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के

७५वें जन्म दिवस पर

कोटि-कोटि नमन

गुलाबचन्द गिरधारीलाल

(कमीशन एजेन्ट्स)

अबोहर–पंजाब

फोन : 2259

वेदसारसर्वस्वरूपिणी श्रीमद्भगवद्गीता

• आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र •

भारतवर्ष में जीवन का विश्लेषण पुराकल्प से होता चला आ रहा है और जीवन को जितने कोणों से देखा जा सकता है उन सभी से उसे देख लिया गया है। उसके मर्म को समझने समझाने के लिए जिस वाङ्मय का निर्माण किया गया वह वैदिक वाङ्मय कहलाता है। वेद का अर्थ ज्ञान है। उस ज्ञान को काष्ठापन्न स्थिति में जिस वाङ्मय ने पहुँचाया उसका नाम उपनिषद् है। काष्ठा पर पहुँच जाने के कारण ही उसे वेदान्त कहते हैं। भारतीय दर्शन में ब्रह्म, जीव, जगत के विमर्श के लिए जिस मार्ग से तत्वदर्शन का प्रयास किया जाता है वह 'प्रस्थान' कहलाता है। प्रस्थान एक नहीं तीन माने गये हैं जो प्रस्थानत्रयी के नाम से ख्यात है। उनके नाम हैं—उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता। ये प्रामाणिक कोटि के मार्ग हैं अतः इन्हें 'प्रमाण' भी कहते हैं। इन तीनों में आगे चलकर श्रीमद्वल्लभाचार्य ने चतुर्थ प्रमाण श्रीभागवत को भी मान लिया। इसलिए प्रस्थानत्रयी से प्रस्थानचतुष्टयी या प्रमाणचतुष्टय का प्रवाह चल पड़ा—

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ।।

वेदा का अर्थ यहां 'उपनिषद्' ही है। 'श्रीकृष्ण वाक्यानि' का तात्पर्य 'श्रीमद्भगवद्गीता से है। 'व्याससूत्र' 'ब्रह्मसूत्र का ही अपरपर्याय है। 'व्यास की समाधिभाषा' का प्रयोजन 'श्रीमद्भागवत' से है। श्रीमद्भगवद्गीता के लिए प्रख्यात है—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।

उपनिषदों का व्यवस्थित निचोड़ ही गीता है। उपनिषदों में विभिन्न दृष्टियों से जीवन को निरख परख कर जिस रूप में रखा गया है वह अद्भुत है। 'गीता' भी महाभारत का एक अंश ही है। व्यास ने जिस मेधा से भगवान श्रीकृष्ण के वचनों को उसमें सुरक्षित कर दिया है दूसरा कदाचित ही वैसा कर पाता। उपनिषदों का निष्कर्ष जिस प्रकार गीता में संगृहीत हुआ उसमें श्रीकृष्ण की विचक्षण-बुद्धि का चमत्कार प्रथमकोटिक है और संग्रहीता व्यास की प्रज्ञा द्वितीय कोटिक। पर ब्रह्मसूत्र में व्यास की शेमुषी ने प्रथमकोटिक उपनिषद्-संरक्षित तत्व का विमर्श दूसरे ही प्रकार से कर दिया है। व्यास को इतने पर भी संतोष नहीं हुआ तो उन्होंने भागवत में अन्य प्रकार से तत्व निदर्शन कर डाला और तब उनके चित्त को विश्रान्ति मिली। ब्रह्मसूत्र में प्रमुख रूप से तत्वज्ञान का विश्लेषण है। गीता में प्रमुखतया कर्ममार्ग का गंभीर अनुसन्धान है और श्रीभागवत में भक्ति या उपासना-मार्ग का प्रधानतया विवेचन है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि अन्य मार्गों का चिंतन-मनन तत्तत्स्थलों में नहीं है। प्राधान्येन जो हो उसी के आधार पर निर्देश करना पड़ता है। यहां मुझे केवल गीता के संबन्ध में ही यत्किंचित् कहना है।

गीता ने पहले यही बताया है कि सांख्य और योग दो मुख्य मार्ग हैं। सांख्य ही ज्ञानमार्ग है और योग कर्ममार्ग। दोनों ही समान हैं दोनों में कोई भेद नहीं करना चाहिए। किंतु अर्जुन के जिज्ञासा करने पर उन्हें स्पष्ट करना पड़ा कि जगत् में कोई कर्म के बिना रह नहीं सकता। इसलिए कर्म से संसिद्धि में लगना चाहिए। उन्होंने सोदाहरण बताया कि—

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ।।

ज्ञानमार्ग निवृत्तिमार्ग या संन्यासमार्ग है, कर्ममार्ग प्रवृत्तिमार्ग या गृहस्थ-मार्ग है। भारत में गृहस्थाश्रम, इसलिए श्रेष्ठ माना जाता है कि सभी आश्रम उसी पर आश्रित रहते हैं। उसमें लोकसंग्रह की भावना विशेष होती है। गोसाईं तुलसीदास ने विदेहराज जनक की वन्दना यों की है—

प्रनवौं परिजन सहित बिदेहू । जिन्हहिं रामपद गूढ़ सनेहू ।
जोग भोग महँ राखेहु गोई । प्रगटेउ राम बिलोकत सोई ।।

इन्हीं महाराज जनक के उपदेश से व्यासजी के सुपुत्र शुकदेव जी संन्यस्त मार्ग पर जाते जाते रह गये। इसका विस्तृत उल्लेख श्रीमद्देवीभागवत में है। शुकदेवजी के मन में युवावस्था में ही संन्यासमार्ग या निवृत्तिमार्ग पर जाने की प्रबल इच्छा हो गई। उन्हें उनके पितृचरण व्यासदेव ने बहुत समझाया, पर वे अपने तर्क से उनकी स्थापना का खंडन कर देते थे। हठ छोड़ ही नहीं रहे थे। हार कर व्यासजी ने उनसे कहा कि यदि जनकराज को भी अपने तर्कों से संतुष्ट कर आओ तो मैं तुम्हारा आग्रह मान लूँगा। पिता के आदेश से वे महाराज जनक के यहां गये। बड़ी कठिनाई से सात दिनों के अनन्तर शुकदेवजी सात ड्योढ़ियाँ पार कर आठवें दिन आक्रुष्ट रूप में जनक के समक्ष उपस्थित हुए। जनकराज ने कहा कि ब्रह्मन्, आज आप विश्राम करें आपका आक्रोश कुछ शांत हो तब चर्चा करना उपयुक्त होगा। इसलिए झखमार कर शुकदेव जी ने दूसरे दिन उनसे विषय-विमर्श के लिए भेंट की। अपने सारे तर्क किये और अपने पक्ष का समर्थन किया। जनकजी ने पूछा कि संन्यासी होकर आप दंड धारण करेंगे या नहीं। आसन कमंडलु रखेंगे या नहीं। यदि दंडादि नहीं रखेंगे तो संन्यास-धर्म का पालन न कर सकेंगे। इन्हें

अनन्तश्री विभूषित

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

को

७५वीं वर्ष गांठ पर

शत-शत प्रणाम

—नन्दकुमार राठी

राठी ब्रदर्स

३, नयी मण्डी, सिरसा (हरियाणा)

तार—राठी
फोन—2489, 2709

भारतीय संस्कृति के महान् रक्षक

धर्म सम्राट्

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के

७५वें जन्म दिवस पर सादर नमन

तार—राठी
दूरभाष—१३७१, १६०६

मे० भूरामल अनिल कुमार

३८, धान मण्डी

श्री गंगानगर (राजस्थान)

—सम्बन्धित शाखाएं—

तार—राठी
दूरभाष—१२३
- मे० सुगनचन्द भूरामल एण्ड सन्स

१०७, नई मण्डी
फतेहाबाद (हरियाणा)

तार—राठी
दूरभाष—२४८६, २७०९
- मे० राठी ब्रदर्स

३, नई मण्डी
सिरसा (हरियाणा)

तार—राठी
दूरभाष—२६०२, २४८९
- मे० सुगनचन्द भूरामल एण्ड सन्स

काटन मर्चेन्ट्स एण्ड कमीशन एजेन्ट्स
अबोहर (पंजाब)

तार—राठी
दूरभाष—३६८९, ३०३०
- मे० कमल काटन ट्रेडर्स

बैंक स्ट्रीट
भटिण्डा (पंजाब)

रखने से इनका बंधन रहेगा या नहीं। बंधन छोटा हो या बड़ा, बंधन तो बंधन ही है। इसलिए सबसे मुख्य है मन की साधना—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

मन की साधना के लिए क्रमशः चारो आश्रमों में रहना ही श्रेयोमार्ग है। पहली सीढ़ी से यदि चौथी सीढ़ी पर पैर रखने का प्रयास करोगे तो कदाचित् ठीक से पैर उस पर न पहुँच सके और नीचे गिर पड़ना पड़े। इसलिए ब्रह्मचर्य के अनंतर आप गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करें यही सनातन और श्रेयस्कर मार्ग है। शुकदेव जी जनकराज के उपदेश से समाधान पाकर लौट आये। तब उनके पितृचरण ने उनका पितरों की पीवरी नाम की कन्या से विवाह कर दिया और उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश किया।

तात्पर्य यह कि सात्विक जीवन व्यतीत करते हुए गार्हस्थ्यधर्म का पालन करते हुए भी कोई वही संसिद्धि प्राप्त कर सकता है जो ज्ञानमार्गी प्राप्त करता है। योगी या कर्ममार्गी के योग को स्पष्ट करते हुए इसी से गीता में कहा गया है—'योगः कर्मसु कौशलम्' और 'समत्वं योग उच्यते' समत्वं का अर्थ है अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति में एकरूपता। जैसा सूर्य के उदाहरण से किसी ने बताया है।

उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥

सूर्य अरुण उदित होता है और अरुण अस्तगंत होता है। बड़ों की संपत्ति या विपत्ति में एकरूपता रही है।

कर्ममार्गी के लिए गीता में फलासक्ति के त्याग की साधना बताई गई है। यह समझकर कर्म करे कि मुझे केवल कर्म करने का अधिकार है। फल पर अधिकार मेरी सीमा के परे है। फल देने वाली कोई अदृष्ट शक्ति है। फल पर ध्यान रखने से कर्म पर ध्यान नहीं रहेगा। कर्म ही यथावत् न होगा तो फल कर्मानुरूप मिलेगा कैसे। कर्म पर ध्यान रहेगा तो फल वांछित मिलने की पूरी संभावना रहेगी और कदाचित् फल वांछित न मिला तो अनुताप न होगा।

गीता में इसी अनासक्ति को दूसरे रूप में व्याख्यायित करते हुए भक्ति-मार्ग का भी निरूपण कर दिया गया है। कर्मफल का त्याग सरलता से यों भी हो सकता है कि अपने सब कर्म भगवदर्पित कर दिये जाएं। इस प्रकार कर्म ही अपने न रह जायेंगे फिर उनके फल की चिन्ता से सम्पर्क आप से आप दूर हो जायेगा। जब कर्म में ही अपनत्व नहीं तब उसके फल से क्या लेना देना। भक्ति का विस्तार से विवरण-विश्लेषण नहीं है। इसी की पूर्ति भागवत में की गई है। वहाँ भक्ति का विस्तार से विमर्श परामर्श किया गया है। जिस प्रकार कर्ममार्ग गृहस्थ-मार्ग है उसी प्रकार भक्तिमार्ग भी गृहस्थों के लिए ही है। जीवन में जिन भावों का भौतिक संस्पर्श गृहस्थ करता है वे ही जब भगवत्संस्पर्श पा जाते हैं तब उनका चिन्मयीकरण हो जाता है। भक्ति में सात्विक वृत्ति स्थायी हो जाती है इसीलिए चित्त निर्मल हो जाता है। चित्त का 'त' हट जाता है और भक्त चिन्मय हो जाता है।

सबको संपिडित करके कहना यह है कि गीता का मुख्य रूप में 'योग' या कर्ममार्ग होने पर भी उसमें ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग भी विमृष्ट है। इसलिए यह ऐसा ग्रन्थ है जिसमें जीवन की भारत में मानी जाने वाली तीनों ज्ञान, कर्म, भक्ति की—धाराएं संनिविष्ट हैं। सभी के लिए इसमें अपेक्षित साधना-सामग्री मिल जाती है।

◆

धर्मसम्राट, धर्मसंरक्षक

परमपूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज

के ७५वीं वर्षगाँठ पर

शतशत प्रणाम

◆

सेन्ट्रल आटोमोबाइल्स

आटोमोबाइल इंजीनियर्स

१४।२९, महात्मा गांधी रोड, रायपुर (म० प्र०)

जीप, इन्टरनेशनल ट्रैक्टर, एम्बेसेडर कार एवं

हिन्दुस्तान ट्रकों के अधिकृत विक्रेता

फोन :
कार्यालय : २६३३२, २६१२१
शो रूम : २६८४१
वर्कशॉप : २४६०७
निवास : २३७५८

वेद के अनुसार दुःख की निवृत्ति का उपाय

● श्रीस्वामी विपिनचन्द्रानन्द सरस्वती 'जजस्वामी' ●

विश्व के समस्त प्राणी सुख चाहते हैं। ऐसा सुख चाहते हैं, जो नित्य हो, प्रत्येक देश एवं अवस्था में रहे, किसी के पराधीन न हो अर्थात् देश, काल, वस्तु से बाधित न हो तथा यह सुख सर्वदा ज्ञात हो, अज्ञात न हो। इस प्रकार के सुख की प्राप्ति का भरसक प्रयत्न करते हैं तथा निरन्तर तल्लीनता से जुटे रहते हैं। परन्तु खेद है कि सुख हाथ नहीं आता और परछाईं की तरह दूर-दूर भागता जाता है। सुख की कतिपय झलक तो अवश्य प्रतीत होती है (यदि न हो तो संसारी प्राणियों का जीवन-यापन ही असम्भव हो जाये), किन्तु सुख स्थायी न होकर सुखाभास मात्र बन कर रह जाता है।

इसका कारण क्या है? कारण यह है कि अतिशय सुख का जो स्रोत है उससे हमारा सम्बन्ध विच्छेद अथवा विस्मृत हो गया है। हम क्षुद्र तथा आगमापायनी स्थितियों से सुख की प्राप्ति की भिक्षा माँगते रहते हैं और प्राप्त न होने पर दुःखी होते हैं एवं दुःख की शृंखला में जकड़ते जाते हैं। सुख का मूल स्रोत, जगत् का मूल कारण तथा सर्वाधिष्ठान-परमात्मा हैं और वही इसका अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है। उसका स्वरूप अबाधित सद्घन, स्वयंप्रकाश-चिद्घन एवं परम आनन्दघन है। विचार अथवा भक्ति के द्वारा उससे सम्बन्ध स्थापित करके निरतिशय सुख एवं परमानन्द की प्राप्ति होगी, जो किसी देश, काल, वस्तु से बाधित नहीं होगी और सर्वदा अनुभवारूढ़ रहेगी।

इसका उपाय क्या है? सनातन धर्म में मान्य वेद-शास्त्र इस मार्ग का भलीभाँति दिग्दर्शन कराते हैं। विश्व के अन्य मत अथवा धर्म भी परमात्मा का वर्णन करते हैं और परमात्मा सत्य हैं अतः समस्त देश एवं काल में एक ही तत्त्व हैं। हाँ, उसकी प्राप्ति एवं अनुभूति के मार्ग अवश्य ही भिन्न-भिन्न हैं। अन्य मतों में ईश्वर को केवल सगुण-निराकार माना है और उसका ज्ञान एवं परिचय उसके पुत्र एवं सन्देश वाहक इत्यादि के द्वारा सृष्टि में प्रसारित किया जाता है। उन सन्देशों एवं आदेशों का पालन करके परमात्मा से सम्बन्ध बनाया जाता है। किन्तु शुद्ध ब्रह्म अहं के रूप में उन मतों के अनुसार कभी अनुभवारूढ़ नहीं हो सकता। यह केवल सनातनधर्म की विशेषता है कि जीव अविद्या एवं माया उपाधि को बाधित करके ईश्वर के शुद्ध ब्रह्म स्वरूप से अभिन्नता ज्ञात करता है और भक्त भगवान् बन सकता है। इस धर्म के मतानुसार परमात्मा केवल सगुण-निराकार ही नहीं, अपितु निर्गुण-निराकार अथवा सगुण-साकार भी है और भूतल पर अवतरित होकर चक्षुओं का विषय बनकर अलौकिक आनन्द प्रदान करता है।

अच्छा, तो सनातनधर्म के अनुसार इसकी प्राप्ति का उपाय क्या है?

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥
—(ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र १)।

(अनुवाद—प्रकृति में जो भी चल-अचल संसार है वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादनीय है, उसका त्याग के द्वारा भोग करो, लोभ मत करो, धन किसका है?)।

प्रकृति में जो भी चल-अचल ईश्वर कृत सृष्टि है अथवा नाम-रूपात्मक जीव सृष्टि है तथा अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड है, वह सब ईश्वर द्वारा भासित है और वह ईश्वर ही सबका मूल अथवा मालिक है, उसी के द्वारा यह सब आच्छादित है। आच्छादन किस प्रकार है? आच्छादन इस प्रकार है—जैसे मिट्टी से घड़ा, लोहा से तलवार और स्वर्ण से आभूषण आच्छादित है। तात्पर्य यह है कि मूल कारण कार्य को आच्छादित करता है।

सृष्टि नाम—रूपात्मिका है। ईश्वर-सृष्टि और जीव-सृष्टि भी प्रतीति मात्र है। क्योंकि ब्रह्मस्वरूप अधिष्ठान में अध्यस्त है। अधिष्ठान स्वरूप परमात्मा सर्वावभासक, स्वयं प्रकाश, अद्वितीय सत्य-चित्-आनन्द है। तत्त्वतः वह निरुपाधिक है। उससे भिन्न दुःख के निमित्त-कारण संसार का अस्तित्व नहीं है, केवल प्रतीति मात्र है।

उक्त मंत्र आगे आदेश देता है कि उसको छोड़कर भोग करो अर्थात् आत्मा का पालन करो। तात्पर्य यह कि जो कुछ भी नामरूपात्मक जगत् है उसको त्यागकर अथवा बाध करके, आच्छादन करनेवाले मूल ईश अथवा ब्रह्म से अपना भोग अथवा आत्मा का पालन करो अर्थात् इसमें स्थित हो जाओ। यह वेद का आदेश है।

आगे कहा जाता है कि लोभ मत करो। लोभ अधिकाधिक वस्तुओं की प्राप्ति एवं संग्रह की वृत्ति है, उसका अपलाप करो। मूल कारण ईश—परमात्मा से हमने सबको एवं अपने को भी आच्छादित कर लिया अर्थात् अपने आत्मा से ऐक्य कर लिया और जब नाम—रूपात्मक जगत् की सत्ता नहीं है, फिर किस असत्य पदार्थ की प्राप्ति की इच्छा होगी और लोभ का विषय हो ही क्या सकता है? अतः वृत्तियाँ भी लोभाकार अथवा कामाकार, क्रोधाकार, मोहाकार न होकर ब्रह्माकार हो जायेगी। फलस्वरूप वेदाज्ञा "मा गृधः" का पालन होगा और अतिशय सुख की प्राप्ति होगी।

मन्त्र के अन्तिम भाग में आदेश है "कस्य स्विद्धनम्" अर्थात् धन किसका? धन किसी का नहीं। क्यों किसी का नहीं? प्रथम तो धन नाम की वस्तु नाम—रूप प्रतीति के अतिरिक्त वास्तव में है ही नहीं।

On the auspicious occasion of

75th Birthday of

Dharmsamrat Pujya Swami Karpatriji

With Best Compliments

Gram : 'ZETOR'
Phone : 23636

ALLIED TRADERS

AUTHORISED DEALERS FOR : ESCORTS LIMITED, I. E. D.
(YELLOW LIVE), PERKIN DIESEL ENGINE & SPARE PARTS

Dealers in :

- TRACTOR SPARES
- TRAILERS
- TANKERS
- FARM MACHINERIES
- EARTHMOVING & MINING MACHINERIES

Hindustan HWD-50 H. P. Tractor

SALES - SERVICE - SPARES

PHOOL CHOWK,
RAIPUR (M. P.)

पुनः मिथ्या वस्तु से सम्बन्ध भी मिथ्या अथवा असत्य ही होगा। इसलिए धन किसी का नहीं है। फलस्वरूप न धन है, न धन का अस्तित्व है, न धन प्राप्ति अथवा लोभ की वृत्ति है। समस्त वृत्तियाँ अपने अधिष्ठान रूप परमात्मा में ही विलय होंगी तथा कोई फल व्याप्ति नहीं बनेगी। ऐसी स्थिति अथवा ऐसा ज्ञान प्राप्त हो तो जीव उपाधि रहित परमात्मा अर्थात् ब्रह्म से अभिन्न हो। जीव का उपाधि रहित स्वरूपसर्वाधिष्ठान, सर्वावभासक देश, काल, वस्तु से अपरिच्छिन्न स्वयं प्रकाश और सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद शून्य अद्वितीय सच्चिदानन्दघन ज्ञानस्वरूप स्पष्ट अनुभव होगा। फलस्वरूप दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति सहज एवं सुलभ होगी।

यह मार्ग वेदान्त ज्ञान प्राप्त सूक्ष्म बुद्धि अधिकारियों के लिए है, किन्तु जो हृदय प्रधान व्यक्ति हैं उनके लिए भक्ति मार्ग पर अग्रसर होना सुलभ है। यही मंत्र इसका भी उपदेश करता है।

किस प्रकार भक्ति मार्ग का उपदेश इस मंत्र से प्राप्त होता है? ईश अथवा सबका नियामक षड्गुण सम्पन्न भगवान् है, जिसमें ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य गुण हैं, उनका व्यक्त स्वरूप राम, कृष्ण, नारायण, शिव, शक्ति आदि हैं। उनके द्वारा जितना चर-अचर प्रपञ्च एवं ईश्वर कृत सृष्टि और जीव कृत अहंता–ममता रूप संसार है, उस सबको पूर्ण रूप से आच्छादित कर दो अर्थात् भगवद्भाव से भर दो, ओतप्रोत कर दो। पूर्ण रूप से भगवद्भाव का उदय एवं भान होना चाहिये। "वासुदेवः सर्वमिति", 'सियाराममय सब जग जानी।'

भगवद्भाव सम्पन्न होने पर जो वस्तुएँ आराध्यदेव भगवान् के द्वारा हमारे लिए प्रसाद रूप से 'तेन त्यक्तेन' छोड़ी जायें, केवल उनका ही हम भोग करें। जो भगवत् प्रसादी न हों अथवा उनके द्वारा छोड़ी न हों, वे हमारे लिए निषिद्ध हैं।

पुनः हम लोभ न करें अर्थात् जो वस्तु भगवद्भोग से छोड़ी हुई प्रसाद रूप में हमको प्राप्त हों, उसी में सर्वथा सन्तुष्ट रहें। विशेष की अभिलाषा अथवा चेष्टा न करें। अपने जीवन में सन्तोष धन का बाहुल्य हो। लोभ वृत्ति अथवा विषय भोगों का त्याग हो एवं हृदय भगवत्–कृपा से तृप्त रहे, सराबोर रहे।

'कस्य स्विद्धनम्'—धन किसका है? धन तो किसी व्यक्ति विशेष का नहीं। धन नाम के जड़ पदार्थ का क्या उल्लेख किया जाय, यह शरीर और मन भी उन्हीं देव का है। अतः हम शरण्य की शरण हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का श्रुति सम्मत आदेश है—'तमेव शरणं गच्छ', आदेश पालन का रूप है "श्रीकृष्णः शरणं मम"।

इस बोध अथवा भाव सम्पन्न व्यक्ति को किसी प्रकार का दुःख व्याप्त नहीं हो सकता और परमानन्द की प्राप्ति एवं जीवन्मुक्ति का विलक्षण सुख प्राप्त होता है। परमात्मा से प्रार्थना है कि वे हमको अपने स्वरूप का बोध एवं अपने गुण–स्वभाव का प्रेम प्रदान करें। कारण? जिस अवसर पर बुद्धि फेल हो जाती है, धर्म एवं साहस टूट जाता है तब श्री भगवान् का अनुग्रह अलौकिक चमत्कार दिखाया करता है। येन-केन प्रकारेण वेदाज्ञा पालन करके अपने दुःख की आत्यन्तिकी निवृत्ति मनुष्य का परम कर्तव्य है। यही वेद के अनुसार दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति का उपाय है।

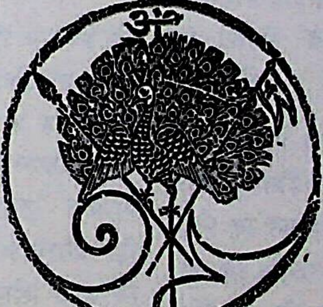

On the auspicious occasion of
75th Birthday of
PARAMPUJYA SWAMI KARPATRIJI MAHARAJ

With Best Compliments :

SWASTIK ENTERPRISES

Escort Farm Equipment
Ford Tractors Equipment
Rajdoot

AUTHORISED SALES & SERVICE DEALERS FOR
ESCORTS AND FORD TRACTORS,
RAJDOOT MOTORCYCLES & SCOOTERS.

Branches

SADA Building,
Supela-BHILAI (M. P.)
Phone : Off. 5839 Res. 210
Gram : "BHIRAJDOOT"

M. G. Road.
RAIPUR (M. P.)
Phone : 25879

5/45 Moudhapara,
RAIPUR-492001 (M. P.)
Phone : Offi. 26385, Res. 25576
Gram : 'GARGAS' RAIPUR

वेदों की अपौरुषेयता, अनादिता

● पं० केदारनाथ त्रिपाठी ●

वेद-श्रुति-आम्नाय-त्रयी और निगम ये एक ही अर्थ के बोधक शब्द हैं। "श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः, आम्नायस्य क्रियार्थत्वात्, त्रय्या हि रक्षितो धर्मः, निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्" इन वचनों में वेद के ही अर्थ में तत्तत् शब्द प्रयुक्त हैं। इनमें वेद और निगम शब्द ज्ञान के अभिप्राय से हैं तथा श्रुति और आम्नाय शब्द वाक्य के अभिप्राय से हैं। अर्थात् 'ज्ञानजनक अलौकिक वाक्य या अलौकिक वाक्य जन्य ज्ञान' ऐसा विवक्षाधीन वैकल्पिक प्राधान्य मूलक ये शब्द हैं। त्रयी शब्द तो विभाग की दृष्टि से है। वेद शब्द "विद् ज्ञाने" धातु से निष्पन्न है, अतः जिससे मानव पुरुषार्थ के असाधारण साधन का ज्ञान प्राप्त हो, वह वेद है। निपूर्वक गम् धातु से निष्पन्न निगम शब्द भी उपर्युक्त ज्ञान की प्राप्ति करानेवाला वेद शब्द के ही समान है। वाक्य के अभिप्राय से प्रयुक्त होनेवाला श्रुति शब्द भी अन्वर्थक है। अर्थात् वह वाक्य श्रुति है, जो केवल गुरुपाठ के द्वारा सुना जाता है, न कि किसी के द्वारा किया या रचा जाता है। वाचस्पति मिश्र ने अपनी सांख्यतत्त्व कौमुदी में आनुश्रविक पद की व्याख्या में लिखा है—"गुरुपाठात् अनु=पश्चात् श्रूयते इत्यनुश्रवो वेदः। एतद्युक्तं भवति—श्रूयत एव परं न केनापि क्रियत इति।" आम्नाय शब्द 'आङ्पूर्वक अभ्यासार्थक म्ना' धातु से बना है। अर्थात् प्रति सर्ग जिसका अभ्यास या आवर्तन हो अथवा गुरुपरम्परा द्वारा जो सदा एक सा अभ्यस्यमान होता हो, वह वेद वाक्य आम्नाय है।* इस प्रकार असाधारण ज्ञान या असाधारण वाक्य की दृष्टि से वेद श्रुति आदि शब्द हैं। निरुपद त्रयी शब्द भी विभक्त ऋक् यजुः और साम के अर्थ में असाधारण है।

विश्व में एक से एक वैज्ञानिक आविष्कार भले ही आश्चर्य की वस्तु हैं, फिर भी वेद के रूप में विश्व को प्राप्त यह अलौकिक न्यास सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यह विश्व के समस्त ज्ञान विज्ञान का असीम स्रोत है। यहाँ तक कि विज्ञानवाद, शून्यवाद आदि नास्तिकवाद का भी स्रोत वेद ही है। वहाँ "तद्धैक आहुरसदेवेदमग्रआसीत्" इत्यादि वचन पूर्वपक्ष के हैं। जो पाश्चात्य मनीषी वेद को नित्य अनादि नहीं मानते हैं, वे भी इतना स्वीकार करते हैं कि इसके निर्माण काल का निर्धारण कर सकना अशक्य है, या यह विश्व का सबसे पुरातन ग्रन्थ है। इससे मानना आवश्यक हो जाता है कि वेद ही सभी ज्ञान-विज्ञान का मूल स्रोत है। पारम्परिक विद्वानों आचार्यों की तो यह मान्यता है कि वेद स्वयं प्रकाश, स्वतः प्रमाण एवं तत्त्वों के निश्चय में अन्तिम शक्ति रूप हैं। इसीलिए वेदों के निर्णय में कोई भी अन्य प्रमाण हस्तक्षेप नहीं कर सकते और न वेद अपने निर्णय में प्रमाणान्तर के साक्ष्य की अपेक्षा करता है। ऐसे वेद के सम्बन्ध में स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि अतिशय महत्त्वशाली अनिर्ज्ञातमूल ये वेद क्यों स्वतः प्रमाण या प्रमाण हैं ? क्या ये अपौरुषेय अनादि हैं या पौरुषेयसादि हैं ? इसका विचार यहाँ संक्षेप में विभिन्न दर्शनों की दृष्टि से करना इस निबन्ध का उद्देश्य है।

दर्शनों में सर्वाधिक प्राचीन सांख्यदर्शन शब्द मात्र को अनित्य मानता है। अतएव वेदों को भी अनित्य मानता है—"न शब्दनित्यत्वं कार्यत्वप्रतीतेः" (५।५८), "न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः" (५।४५)। अर्थात् "स एवायं गकारः" इस प्रत्यभिज्ञा के बल से वर्णों को नित्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि "नष्टो गकारः उत्पन्नो मकारः" इत्यादि प्रत्यक्ष प्रतीति से वर्णों का अनित्यत्व स्पष्ट सिद्ध है। उक्त प्रत्यभिज्ञा तो गत्वादि जाति विषयक होने से भी उपपन्न हो जाती है। वेदों की अनित्यता तो स्वयं वेद में ही प्रतिपादित है, जैसे—"स तपोऽतप्यत, तस्मात् तपस्तेपानात् त्रयो वेदा अजायन्त" (बृ. उ० १।२।६)। जो वचन वेदों की नित्यता के पक्ष में मिलते हैं, वे मन्त्रों की सजातीय आनुपूर्वी के प्रवाहाविच्छेद के तात्पर्य से हैं। इस प्रकार सांख्यमत में वेद यद्यपि अनित्य हैं, तथापि वे पौरुषेय नहीं हैं। सांख्य कहता है—"न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्" (५।४६)। यह भी नहीं है कि अपौरुषेय होने से वह नित्य हो जायगा, क्योंकि अङ्कुर आदि पुरुषकृत न होने पर भी अनित्य होते हैं—"नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत्" (५।४८)। वस्तु दृष्ट हो या अदृष्ट हो, जिसमें "कृतम्" यह बुद्धि होती है, वही पौरुषेय है, जैसे—घट पट आदि।

तात्पर्य यह है कि पुरुषोच्चरित होने मात्र से पौरुषेय नहीं हो सकता, क्योंकि सुषुप्ति कालीन श्वास-प्रश्वास में बुद्धिपूर्वक पुरुषकृत होने का व्यवहार नहीं होता है। ऐसे ही स्वाभाविक निःश्वास के तुल्य वेद भी महत्तत्त्वौपाधिक ब्रह्मा से स्वतः प्रादुर्भूत हुए, इसलिए अनित्य होते हुए भी अपौरुषेय हैं। इसी प्रकार अनित्य होने पर भी वेद स्वतः प्रमाण हैं। सांख्यमत में प्रामाण्य के लिए नैयायिकों की तरह पुरुष गुण से जन्य होना आवश्यक नहीं है। प्रत्युत पौरुषेय होने की स्थिति में पुरुषगत दोष से आस्कन्दित होने की ही आशङ्का होगी। प्रामाण्य के सम्बन्ध में वाचस्पति मिश्र ने तत्त्व-कौमुदी में कहा है—"तच्च स्वतः प्रमाणम् अपौरुषेय वेदवाक्यजनितत्वेन सकलदोषाशङ्का विनिर्मुक्तेर्युक्तं भवति।"

---

*'श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायः' इत्यमरः।

परमपूज्य विश्ववंदनीय
धर्मसंरक्षक श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के
७५वें जन्मदिवस पर

साष्टांग प्रणाम

श्री शारदा ट्रेडर्स

फाजिलका (पंजाब)

With Best Compliments From :

Shree Bharat Industries

Manufacturers, Galvanizers & Steel Fabricators

B-70, Mayapuri Industrial Area,
Ph. 1, New Delhi - 110064

3, Ansari Road, Daryaganj,
New Delhi - 110002

Tele : Address : BUCKET

Phones : Office : 279847
270238
Works : 594015

योगदर्शन की दृष्टि में वेद स्वरूपतः अनित्य और प्रवाह रूप में नित्य हैं और ईश्वर द्वारा मूलतः बुद्धिपूर्वक उच्चरित होने के कारण पौरुषेय हैं। अर्थात् ईश्वर द्वारा वेद यथानुपूर्वीक उच्चरित होता है तथा पुरुष विशेष ईश्वर द्वारा मूलतः उच्चरित होने से वह पौरुषेय है। "मूलवक्तारिन्तु दृष्टानुमितार्थो (आगमः) निर्विप्लवः स्यात्" इस योग भाष्य के व्याख्यान में वाचस्पति मिश्र ने कहा है—"मूल वक्ता हि तत्रेश्वरो दृष्टानुमितार्थ इत्यर्थः" इति। पुनः "क्लेश कर्म-विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः" इस सूत्र के भाष्य में कहा गया है—"शास्त्रं पुनः किं निमित्तम्? प्रकृष्टसत्त्व निमित्तम्।" अर्थात् ईश्वरीय बुद्धि-सत्त्व गत प्रकर्ष और शास्त्र दोनों में अनादि सम्बन्ध है तथा अपने प्रकृष्टसत्त्वोत्कर्ष के द्वारा ईश्वर ही वेदों का मूल वक्ता है। इसीलिए वेद में प्रामाण्य है। इस प्रकार योगदर्शन के अनुसार वेद पौरुषेय है, स्वरूपतः अनित्य होनें पर भी अनादि प्रवाह वाला होने से नित्य है तथा ईश्वरीय सत्त्व-प्रकर्ष के कारण प्रमाणभूत है। यहाँ बुद्धिपूर्वक उच्चरितत्व ही पौरुषेयत्व है।

न्याय वैशेषिक मत में सृष्टि के समान वेदों का भी कर्ता ईश्वर है। "उपादान-गोचरापरोक्ष ज्ञान चिकीर्षा कृतिमत्त्वं कर्तृत्वम्" इस लक्षण के अनुसार सर्वज्ञत्व सर्वशक्तिमत्त्वादि गुणों का आश्रय ईश्वर है। इसीलिए ईश्वर में भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा आदि दोषों का अभाव है। इस प्रकार ईश्वर में समस्त दोषों का अभाव तथा सर्वज्ञत्वादि गुणों की सत्ता होने से ईश्वरीय गुण जन्य होने के कारण पौरुषेय और अनित्य भी वेद प्रमाण है। "बुद्धिपूर्वा वाक्य कृतिर्वेदे" इस वैशेषिकसूत्र के (६।१।१) भाष्य में कहा गया है—"श्रुतिस्मृति लक्षणोऽप्याम्नायः वक्तृप्रामाण्यापेक्षः" इति। अर्थात् केवल लौकिक वाक्य ही नहीं, अपितु श्रुति-स्मृति रूप आम्नाय भी वक्ता के प्रामाण्य की अपेक्षा करता हुआ ही बोधजनक होता है और प्रमाण होता है। इसलिए वेद का प्रामाण्य वक्ता (ईश्वर) के आप्तत्व के अधीन है, "तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्" इस वैशेषिकसूत्र (अ. १ सू. ३) का यही अभिप्राय है। वाक्य प्रयोक्तृनिष्ठवाक्यार्थ यथार्थ ज्ञानवत्त्व ही आप्तत्व है और यही वक्ता का गुण है, जिससे जन्य होने के कारण शब्द में प्रामाण्य माना जाता है। जो वक्ता बिना ज्ञान के ही वाक्य बोलेगा, उसका वचन निश्चित ही अप्रमाण होगा।

"तद्वचनात्" इस सूत्र में 'तत्' पद से परमेश्वर को तथा 'वचन' पद से प्रणयन अर्थ को लिया गया है। इस प्रकार सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा प्रणीत होने के कारण ही वेद पौरुषेय हैं और प्रमाण है। उदयनाचार्य ने लिखा है—"यथार्थानुभवजनकत्वं हि प्रामाण्यम् न तु नित्यत्वप्रयुक्तम्, तदपि दोषाभावप्रयुक्तम्, तच्च धर्मिग्राहक प्रमाणादेव परमेश्वरे सिद्धम् इति" (किरणावली, पृ० ३१५)। "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" इस सूत्र के भाष्य के व्याख्यान में उदयनाचार्य ने वेद को सर्वज्ञेश्वर द्वारा प्रणीत होने के कारण स्पष्टतः पौरुषेय कहा है (किरणावली, पृ० ३१६) एवं जैसे लौकिक वाक्य के प्रामाण्य के लिए गुणजन्यत्व आवश्यक है, वैसे वेद वाक्य के प्रामाण्य में भी ईश्वरीय गुणजन्यत्व प्रयोजक है। किरणावली में कहा गया है—"प्रामाण्यं प्रति यथा दोषाभावस्य तथा वक्तृगुणस्यापि कारणत्वम्" इति।

न्यायदर्शन के "तदप्रामाण्यमनृत व्याघात पुनरुक्तदोषेभ्यः" (अ. २ आ. १ सू. ५७) इस सूत्र में वेद के अप्रामाण्य की आशङ्का की गयी है। उसमें दिये गये हेतु अनृतत्व और पुनरुक्तत्व रूप दोष वक्ता से ही सम्बद्ध हैं, जिनका परिहार आगे के सूत्रों में किया गया है और व्यक्त किया गया है कि वाक्य के प्रामाण्य के लिए वक्तृगत दोषाभाव और वक्तृगत यथार्थ ज्ञान रूप गुण नितान्त आवश्यक है। अतः वेद आप्तोक्त होने से प्रमाण है, यह न्यायमत है। आप्त वह है, जो प्रयोग हेतु भूत यथार्थ वाक्यार्थ ज्ञान वाला है। आप्तोक्त होने से ही वेद पौरुषेय हैं। नैयायिक यहाँ पर इस प्रकार के अनुमान का प्रयोग करते हैं—"वेदजन्य शाब्दबोध जनक यथार्थ वाक्यार्थ ज्ञान रूपो गुणः आत्मसमवेतः, ज्ञानत्वात्" इस अनुमान से इतर बाध सहकृत होकर ईश्वर की सिद्धि हो जाती है। "अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिः सृताः। प्रतिमन्वन्तरञ्चैषा श्रुतिरन्या विधीयते॥" "वेदान्त कृद् वेद विदेव चाहम्" इत्यादि स्मृतियाँ तथा "तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे" इत्यादि श्रुति वचन भी न्याय मत के उपोद्बलक हैं। यदि कहें कि नित्य निर्दोषत्व ही वेद के प्रामाण्य का यह प्रयोजक है और उस प्रामाण्य का ग्रहण महान् लोगों द्वारा वेद के स्वीकृत होने से हो जायगा, अतः ईश्वर वेद का कर्ता नहीं है, तो मीमांसक का तर्क न्याय को अस्वीकार्य है, क्योंकि सृष्टि और प्रलय होने के कारण वेद के नित्यत्व एवं उसके प्रामाण्य का सृष्ट्यारम्भ में महजन द्वारा परिग्रहादि असंभव है।

वेदान्त में सर्वज्ञ ब्रह्म से निःश्वसित न्याय से बिना प्रयत्न के ही वेद उत्पन्न हैं। "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदः, तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" इत्यादि श्रुतियाँ इसमें प्रमाण हैं। ब्रह्म से उत्पन्न होने पर भी पुरुष प्रयत्न निरपेक्ष होने के कारण वेद अपौरुषेय हैं। अर्थ ज्ञान एवं प्रयत्न पूर्वक रचे गये कालिदासादि के वाक्य पौरुषेय हैं। किन्तु उनसे विलक्षण उत्पत्ति वाले वेद अपौरुषेय हैं। अपौरुषेय होने के कारण ही वेदान्त मत में भी वेद स्वतः प्रमाण हैं। इस दर्शन में भी वेद स्वरूपतः सादि होने पर भी प्रवाहतः अनादि हैं, नित्य हैं। अर्थात् प्रति सर्ग में पूर्व के समान ही वेद उत्पन्न होते हैं, इसलिए प्रवाह रूप में नित्य हैं (द्रष्टव्य—"शास्त्रयोनित्वात्" सूत्र का भाष्य भामती प्रभृति)।

जैमिनीय मीमांसा दर्शन वेद को शाश्वत, स्वतः प्रमाण एवं अपौरुषेय मानता है। इसका अपौरुषेयत्व सांख्य और वेदान्त के अपौरुषेयत्व से सर्वथा विलक्षण है। सांख्य में भी यद्यपि वेद कर्ता ईश्वर नहीं होता, तथापि सांख्य का वेद अनित्य है। वेदान्त में ब्रह्म पुरुष के होते हुए पुरुष प्रयत्न निरपेक्ष होने से वेद अपौरुषेय माना गया है। जैमिनीय मीमांसा में तो निःश्वसित न्याय से भी वेद का कर्ता ईश्वर नहीं है। अपितु मीमांसा दर्शन के अनुसार सृष्टि प्रलय की परम्परा ही अप्रामाणिक है। अतः वेद स्वतः सदा सत् नित्य निर्दुष्ट हैं, यही वेदों का अपौरुषेयत्व है। इसकी दृष्टि में पौरुषेय होने पर पुरुषगत दोष से आस्कन्दित होने की आशङ्का

गोरक्षा के लिए सतत संघर्षरत सनातन धर्म संरक्षक, माँ सरस्वती के वरद पुत्र

यतिचक्रचूड़ामणि परमपूज्य श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वीं वर्षगाँठ पर साष्टांग प्रणाम

विनीत :
भागीरथ मुथा, भँवरलाल मुथा,
मदनलाल मुथा, नंदकिशोर मुथा,
शिवरतन मुथा, घनश्याम मुथा
एवम् समस्त मुथा परिवार

भागीरथ मुथा एण्ड कम्पनी

अनाज, सुगर, किराना के कमीशन एजेंट

4712, लक्ष्मी बाजार, दूसरा माला, क्लाथ मार्केट,
दिल्ली—110 006

*** रामदयाल भागीरथ एण्ड कं॰**
गुड़, शक्कर, बिनौला, देशी घी के व्यापारी व
कमीशन एजेंट
शिवाञ्ची गेट के अन्दर, उम्मेद मार्केट
जोधपुर (राज०)
फोन—घर : 23076, दुकान : 22604

*** मेसर्स भागीरथ मुथा एण्ड कं॰**
गुड़, शक्कर, बिनौला, अनाज के थोक व्यापारी एवं
कमीशन एजेंट
A-6, नयी अनाज मण्डी, भगत की कोठी
बासनी मण्डी, जोधपुर (राज०)
फोन—घर : 24530, दुकान : 23873 • ग्राम-मुथा

से वेद का स्वतः प्रामाण्य दूर रहा, प्रामाण्य भी सन्दिग्ध हो जायगा। अतः नित्य निर्दुष्टत्व ही वेद के प्रामाण्य का मूल है, न कि न्याय वैशेषिक की तरह पुरुषगत गुणजन्यत्व वेद प्रामाण्य का प्रयोजक है। क्योंकि पौरुषेय पद यदि सामान्य पुरुष प्रणीतत्व अर्थ में हो तो प्रदोष की आशङ्का रहेगी और प्रामाण्य अवश्य सन्दिग्ध होगा। यदि पुरुष विशेष ईश्वर प्रणीतत्व पौरुषेय पद का अभिप्रेतार्थ हो तो वैसा ईश्वर प्रमाण और प्रयोजन के अभाव में इस दर्शन में अस्वीकृत है। क्योंकि सर्ग और प्रलय हो तो ईश्वर का प्रयोजन हो, किन्तु प्रलय ही नहीं होता है ऐसी स्थिति में सृष्टि धारा का कभी विच्छेद नहीं होता। उसी प्रकार वेद प्रवाह भी अविरल लग्न है और अपौरुषेय है। इसीलिए वेद स्वतः प्रमाण अनादि और नित्य है।

इसके अलावे बुद्धि पूर्वक करनेवाला वेद की रचना कर भी नहीं सकता क्योंकि वेदार्थ किसी की बुद्धि में आ नहीं सकता है। कारण, वेदार्थ अपूर्व है, और प्रत्यक्षादि अन्य प्रमाणों का अविषय है। ऐसी स्थिति में वेद वाक्य के पहले वह बुद्धि में कैसे आ सकता है? अतः सुतरां सिद्ध है कि वेद अपौरुषेय है (द्रष्टव्य–प्रकरणपञ्चिका, प्रमाण प्रकरण)। काठक, कौथुम, तैत्तिरीयक आदि वेद सम्बन्धी समाख्यायें उनके अध्ययन-सम्प्रदाय का प्रवर्तक होने के कारण उपपन्न हैं। इसलिए कठ आदि ऋषि भी वेद के रचयिता नहीं हैं। एवं वेद के किसी कर्ता का स्मरण भी नहीं होता है, जैसे रघुवंशादि महाकाव्य, महाभारत तथा रामायण के कर्ता कालिदास, व्यास एवं वाल्मीकि का स्मरण उस उस ग्रन्थ के साथ होता है, इसलिए भी वेद अकर्तृक है। इसीलिए मीमांसा में वेद का लक्षण "अपौरुषेयं वाक्यं वेदः" ऐसा किया गया है। कहीं पर तो "प्रमाणान्तरेणार्थमुपलभ्य विनिर्मितत्वं पौरुषेयत्वं, तद्भिन्नवाक्यत्वमपौरुषेयत्वम्" ऐसा वेदलक्षण का व्याख्यान किया गया है।

भारतीय आस्तिक दर्शनों के उपर्युक्त अध्ययन से वेदों की रचना, प्रामाण्य और अनादित्व के सम्बन्ध में संक्षेप से निम्नलिखित मान्यताएँ स्पष्ट होती हैं—सांख्य, वेदान्त और पूर्वमीमांसा तीनों ही वेदों को अपौरुषेय मानते हैं। अन्तर यही है कि सांख्य मत में ईश्वर का अभाव होने से अथवा पुरुष तत्त्व के निष्क्रिय निर्विकार होने से उसमें किसी प्रकार का कर्तृत्व नहीं होने के कारण वेद अपौरुषेय हैं। फिर भी वेद सांख्य मत में स्वरूपतः अनित्य और सादि है तथा अपौरुषेय होने से स्वतः प्रमाण है। वेदान्त मत में "शास्त्र योनित्वात्" सूत्र के अनुसार उत्पत्तिमान् होने पर भी पुरुष बुद्धि प्रयत्न निरपेक्ष निःश्वसित न्याय से उत्पन्न होने के कारण अपौरुषेय है। अपौरुषेय होने के कारण स्वतः प्रमाण है तथा स्वरूपतः अनित्य होने पर भी इतर प्रपञ्च की तरह प्रवाह नित्य है।

मीमांसा दर्शन के अनुसार वेद स्वरूपतः नित्य निर्दुष्ट होते हुए सांख्य की ही तरह निर्माता पुरुष के अभाव में अपौरुषेय हैं और शाश्वत एवं अनादि हैं तथा पुन्दोष से सर्वथा विनिर्मुक्त होने के कारण नित्य निर्दुष्ट होने से स्वतः प्रमाण हैं। परमेश्वर पक्षपाती मीमांसा के कुछ व्याख्याताओं का कहना है कि परमेश्वर के सर्वज्ञ होने से वह गतकल्पीय वेद का स्मरण कर इस कल्प में उसका उपदेश करता है। अर्थात् अभ्युपगम सिद्धान्त से परमेश्वर स्वीकार भी कर लिया जाय तो भी वेद का वह कर्ता नहीं होगा, उपदेष्टा ही होगा। वस्तुतः मीमांसा दर्शन में श्रुति ही सर्वोच्च पद पर आसीन है और मानव समाज से उसका प्रत्यक्ष और सीधा सम्बन्ध है। वह स्थान परोक्ष ईश्वर को अप्राप्त है।

न्याय वैशेषिक और योगदर्शन तीनों ही वेद को पौरुषेय मानते हैं, किन्तु उसके सर्वज्ञत्वादि गुणजन्य होने के कारण न्याय वैशेषिक मत में तथा ईश्वरीय बुद्धि सत्त्व के शाश्वत उत्कर्ष से जन्य होने के कारण योग मत में वेद परतः प्रमाण है।[1] वे भी इन्हें स्वरूपतः सादि एवं प्रवाहतः अनादि मानते हैं। न्याय और वैशेषिक में परस्पर इतना ही अन्तर है कि न्यायदर्शन वेद को आप्त वाक्य के रूप में स्वतन्त्र एवं चतुर्थ प्रमाण मानता है, जबकि वैशेषिक दर्शन वेद सहित सभी आप्त वाक्य को प्रमाण मानते हुए भी स्वतन्त्र अतिरिक्त प्रमाण नहीं मानता, किन्तु लिङ्ग विधया पदार्थों का संसर्ग बोध कराने वाला मानता है तथा उसे अनुमान प्रमाण के अन्तर्गत गतार्थ मानता है।

इन आस्तिक दर्शनों में वेद के पौरुषेयत्व अपौरुषेयत्व को लेकर या स्वतः परतः प्रामाण्य को लेकर भले ही मतभेद हो, किन्तु वेदों के प्रामाण्य के सम्बन्ध में थोड़ा भी अन्तर नहीं है। बल्कि पौरुषेयतावादी इसलिए पौरुषेय मानते हैं कि ईश्वर की सर्वज्ञता गुण से जन्य होने के कारण वेद का प्रामाण्य निर्विशङ्क रहेगा। उनके अनुसार गुणजन्या प्रमा एवं दोष जन्या अप्रमा होती है। अपौरुषेयत्ववादी इसलिए वेदों को अपौरुषेय मानते हैं कि पुन्दोष के कलङ्क की आशङ्का से रहित होकर वेद स्वतः प्रमाण बने रहें। दर्शनों में केवल पद्धति मात्र का भेद है, उद्देश्य तो सभी का एक है, "वेदों का निर्बाध प्रामाण्य।" पद्धतियों में कौन युक्त है और कौन अयुक्त है, इस पर विचार यहाँ अप्रासाङ्गिक होगा।

---

[1] द्रष्टव्य-योगदर्शन ईश्वर लक्षण सूत्र।

With Best Compliments

1956-1981

IN TWENTY FIVE YEARS

HERO

HAS COME A LONG WAY
IS LONGING TO GO FURTHER

Continuing a traditional commitment
to quality and economy in the
SILVER JUBILEE YEAR

Hero thanks the people who made it possible : the workers, the suppliers, of inputs, the cooperative dealers and, above all, the valued customers but for whose patronage there would have been no Progress, no Achievements, no Jubilee. In the years to come HERO pledges to attain still greater heights of quality to ensure that it remains the largest selling bicycle in India with the widest range at utmost economy.

HERO CYCLES PVT. LTD.

HERO NAGAR, G. T. ROAD,
LUDHIANA-141003.

Tele : 28000 Telex : 0386-205 Cable 'HERO'

वेद का संक्षिप्त परिचय

● आचार्य आनन्द झा ●

"सन्मार्ग" के द्वारा "वेद विशेषाङ्क" का प्रकाशन अवश्य श्लाघनीय है। यह इसलिए कि वेद का भी संक्षिप्त परिचय यही सही माना जायेगा कि वह "सन्मार्ग" के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वेद शब्द के अर्थ तीन होते हैं प्रकृत में। यथाः—(१) वह शब्दराशि जिसके द्वारा प्रतिपादित अर्थ को अपनाकर उसका अध्येता अपने चरम लक्ष्य तक पहुँच पाये। (२) वह वेदन अर्थात् सही ज्ञान; जिसे अपनाकर वेदनशील व्यक्ति अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर पाये और (३) यह कि जो सही रूप में समझा जाकर क्रिया के द्वारा समझने वाले को चरम लक्ष्य तक पहुँचा पाये।

किसी भी मार्ग की सत्ता अर्थात् अच्छाई यही निर्विवाद है कि वह गन्तव्य तक अर्थात् प्राप्तव्य तक पहुँचा पाता है। तदनुसार लक्ष्य तक पहुँचा देने की क्षमता ही होती है किसी मार्ग की सन्मार्गता। वह सन्मार्गता प्रकृत वेद शब्द के उक्त तीनों अर्थों में विद्यमान है। प्राणि समाज का जीवन सन्मार्ग पर चलकर ही वस्तुतः सफल होता है यह एक अनुभूत तथ्य है। अतः वेद-प्रतिपादित क्रियाओं का समादर श्रेयस्कर है।

कथित सत्य को ही रूपान्तर से यों कहा जा सकता है कि यह समग्र चराचरात्मक संसार एक "अग्नीषोमात्मक" व्यापक यज्ञ रूप में चल रहा है, जिसके स्वरूप को सही रूप में समझने वाले वैज्ञानिक जन अतिविरल हैं। अति गम्भीर भाव से चिंतन करने पर इसे कौन विवेकी नहीं मानेगा कि समग्र प्राणी एवं अप्राणी का स्पन्दन, सूर्य और चन्द्र की क्रिया पर आधारित है। सूर्य और चन्द्र—इनके बीच चन्द्र है वह हव्य–सोम जिसकी कलात्मक पत्तियों का सूर्याग्नि में, हवनात्मक यज्ञ, अनादि काल से होता आ रहा है, आज भी हो रहा है और अनन्त काल तक होता रहेगा, जिसके साक्षी शुक्ल और कृष्ण ये दो पक्ष प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। इसी अभिप्राय से याज्ञिक मीमांसा-दर्शन संसार को अनादि और अनन्त मानता है और शाम्भव दर्शन समग्र जागतिक-स्पन्द को भगवान् भव का विमर्श।

अङ्गी महायज्ञ के समग्र अङ्ग अवान्तर यज्ञ ही होते हैं, क्योंकि पूर्वापरीभूतावयव वह क्रिया-समुदाय ही होता है यज्ञ, जो कि सही रूप में सम्पादित होने पर अदृष्ट व्यापार के सम्पादन द्वारा, अवश्य सफल होता है। कर्म-मीमांसा-दर्शन उक्त "अग्नीषोमात्मक" महायज्ञ के अवयवभूत विभिन्न यज्ञों पर ही प्रकाश डालता है, इस रहस्य की ओर गम्भीर-भाव से ध्यान देने पर यह अस्पष्ट नहीं रह जाता है कि वह शब्दराशि है वेद जो कि यज्ञों का प्रतिपादन करता है। तभी मीमांसा-दर्शन के द्वितीय सूत्र द्वारा यह कहा गया है कि यज्ञात्मक धर्म "वेदैकगम्य" है। इस ओर ध्यान देकर ही परवर्ती यज्ञ-मीमांसकों ने यज्ञात्मक धर्म का लक्षण अर्थात् स्वरूप यह बतलाया है कि "वह सफल कर्म है धर्म जिसका प्रतिपादन करता है वेद।

अतः यह स्वीकार करना ही होगा कि वेद अत्यधिक उपादेय है। वेद प्रतिपादित यज्ञों की व्यापकता की ओर संकेत योगेश्वर श्रीकृष्ण ने भी मानव-जीवन के लिए अमूल्य निधि स्वरूप अपनी गीता में (१) द्रव्य-यज्ञ, (२) तपोयज्ञ, (३) योग-यज्ञ, (४) स्वाध्याययज्ञ और (५) ज्ञान-यज्ञ आदि की चर्चा करके किया है। अतः सफल मानव-जीवन के लिए शब्दराशि विशेषात्मक वह वेद जिसे ही जगह-जगह पर "निगम" नाम से भी कहा गया है, निःसन्देह अत्यन्त उपादेय है। कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने भी वेद को "निगम" कहा है। वेद में यदि ऐसी उपादेयता नहीं होती तो वेदव्यास अपनी श्रेष्ठ रचना श्रीमद्-भागवत को निगम शब्द से कहे जाने वाले वेदात्मक कल्पवृक्ष का अमृतमय फल नहीं कहते।

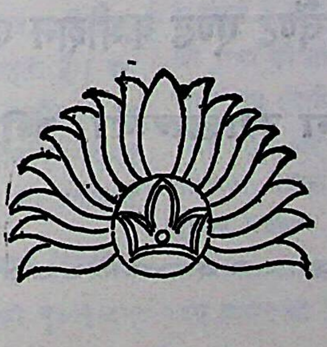

धर्मसम्राट् विश्ववंदनीय

परमपूज्य श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वीं वर्षगाँठ पर

सादर चरणस्पर्श

—बंशीलाल भड्डड़

बंशीलाल जयनारायण

ऊन मर्चेण्ट एण्ड कमीशन एजेण्ट

डागों का मोहल्ला, बीकानेर

फोन : ३५२५]

[तार : जय बजरंग

वेद और परवर्ती भक्ति परम्परा

• प्रोफेसर राममूर्ति त्रिपाठी •

उक्त विषय पर जब हम कुछ सोचना आरंभ करते हैं तब दो मान्य मनीषियों के परस्पर विसम्मत दो तरह के विचार मिलते हैं। महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज का मत है कि परवर्ती भक्ति परम्परा का संबंध वेद से नहीं है—वैदिक साधना से नहीं है। उनका पक्ष है कि जब आचार्य शंकर अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में कहते हैं—"चतुर्षु वेदेषु परं श्रेयोऽलब्ध्वा शाण्डिल्य इदं शास्त्रमधिगतवान्"[१] यह उक्ति वेद निन्दापरक होने से अमान्य है—तब वे वस्तुस्थिति की ओर से गजनिमीलिका करते हैं। आचार्य शंकर ने ही नहीं, आनंदगिरि और रत्नप्रभाकर भी अज्ञात स्रोत से निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत करते हैं और उनमें भी भागवत अथवा पांचरात्र धारा की महिमा वेदों की अपेक्षा अधिक कही गई है। आनंदगिरि उद्धृत करते हैं—"स्वाध्यायमात्राध्येतुः विशिष्यते भागवतशास्त्राक्षरमाध्येता"[२]। रत्नप्रभाकार भी उद्धरण देते हैं—"एकस्यापि तंत्राक्षरस्याध्येता[३] चतुर्वेदिभ्योऽधिकः"॥ कविराज जी का पक्ष है कि यह वेद निंदा नहीं है, वस्तुस्थिति है। आद्य शंकराचार्य पांचरात्र को अंशतः अवैदिक मानते हैं जब कि वैष्णव आचार्य उसके वैदिकत्व का समर्थन करते हैं। यामुनाचार्य आगम प्रामाण्य में यही तो कहते हैं।

कविराज जी अपने पक्ष को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि पाञ्चरात्र अथवा भागवतधर्म भक्ति प्रधान है। वैदिक साहित्य में भक्ति की चर्चा अधिक नहीं है। यद्यपि कई लोग वैदिक उपासना का भक्ति के स्थान में ग्रहण करते हैं—किसी अंश में यह ठीक भी है—तथापि 'भक्ति' शब्द का जो परवर्ती परम्परा में वाच्यार्थ निर्धारित हुआ (चित्त का भावमय प्रकाश विशेष) वह वैदिक कर्मकाण्ड अथवा ज्ञानकाण्ड या उपासना काण्ड में स्पष्ट रूप से नहीं मिलता।[४] अन्यत्र वे पुनः कहते हैं—'यह कहना अनावश्यक है कि भक्तिमार्ग में शक्ति का स्वीकार करना आवश्यक है। शक्ति के विशुद्ध तथा निर्मल स्वरूप के न स्वीकार करने से ईश्वर, जीव और जगत् तथा उनका परस्पर संबंध अज्ञान कल्पित होने के कारण हेय हो पड़ते हैं—भक्ति, करुणा, कर्म आदि का स्रोत सूख जाता है।'[५] उनकी दृष्टि में 'भक्ति' शक्ति का नामान्तर है। और यह 'शक्ति' शक्तिमान् परतत्व की स्वरूपता स्वाश्रिता है। उपपत्ति में कहते हैं कि श्रुति 'स एकाकी नारमत, स द्वितीयमैच्छत' भी कहती है और 'द्वितीया द्वै भयं भवति' भी कहती है। इस विरोधाभास की निवृत्ति के लिए एक ही रास्ता शेष रहता है और वह यह कि एक ही अपनी 'शक्ति' से 'अनेक' हो जाय ताकि 'द्वितीय' हो भी तो स्वाभिन्न होने से भीति-हेतु न बन सके। एक अनेक तभी हो सकता है जब उसमें वैसा होने की संभावना हो। अर्थात् संभावना रूप से शक्त्यात्मना अनेक उसमें पूर्वतः स्थित हों। इस प्रकार परतत्व को शक्तिमान् मानना पड़ता है। यही स्वरूपभूता निजा शक्ति परवर्ती भक्ति परंपरा में 'भक्ति' (साध्य) के नाम से जानी गई। स्वामी करपात्री जी ने भी 'भक्ति रसार्णव' में लिखा है—"यद्यपि भक्तिराह्लादिनीशक्तिरूपा, नित्या विभ्वीच, तथापि सारश्रवण-जनित-द्रुतचित्तजनितवृत्तावरभिव्यज्यते–इति तदर्थं वृत्तिरपेक्षिता"—अर्थात् भक्ति तत्वतः तो है शक्तिमान् की ह्लादिनीशक्तिरूपा निजा शक्ति ही, जो नित्य और शक्तिमान् ही की तरह व्यापक है—परन्तु उसकी अभिव्यक्ति बिना 'वृत्ति'—अन्तःकरण की भगवद् गुणश्रवणजनित द्रुतात्मा चित्तवृत्ति के हो नहीं सकती। इसलिये कहीं-कहीं मधुसूदन सरस्वती जैसा भक्त भी 'भगवदाकाराकारितान्तःकरण की वृत्ति' को ही भक्ति कहता है। चित्त की वृत्ति रूप में शक्ति आत्म प्रकाश करती है—वह सत्य है, परन्तु वास्तव में वह स्वरूपतः चित्त की वृत्ति नहीं हैं। चित्त की वृत्ति होना तो दूर, माया अथवा महामाया की वृत्ति भी नहीं है। वह साक्षात् चित् शक्ति का विलास है। सच्चिदानन्दमय की स्वरूपभूता यह सच्चिदानंदमयी शक्ति ही स्वरूप शक्ति या चित्शक्ति है। ह्लादिनी रूपा स्वरूपशक्ति के अतिरिक्त भागवतस्वरूप के आस्वादन का दूसरा कोई उपाय नहीं है। एक ही तत्व एकरूप भेद से आस्वादयिता तथा आस्वाद्य है।

परवर्ती भक्ति का जो स्वरूप इस प्रकार उभरता है—कविराज जी की धारणा है कि उसका पल्लवन आगमों में ही मिलता है—संकेत अन्यत्र अस्पष्ट रूप से भले ही मिलता हो। वैदिक दर्शनों में—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, पातन्जल, पूर्व तथा उत्तर मीमांसा–कहीं भी स्वरूपभूता स्वाश्रिता चिन्मयी शक्ति का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। मिलता भी है तो या तो जड़ रूप में या पुरुष के लिए ही चितिशक्ति के रूप में–चितिगत शक्ति के रूप में नहीं। संकेत अवश्य मिल जाते हैं—पल्लवन नहीं। पल्लवन तो आगमों में ही मिलता है।

गोस्वामी ललिताचरण जी उक्त स्थापना के विपरीत 'हित-संप्रदाय' के संदर्भ में विश्लेषित 'भक्ति' के संबंध में कहते हैं—"युगल उपासना में श्री राधा की प्रधानता रखने में एक भय रहा है। इससे एक प्रकार का शक्तिवाद स्थापित होता है—जो वैष्णव धर्म के मूल पर ही कुठाराघात करता है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि वैष्णव धर्म के साथ शक्तिमत का बड़ा लम्बा संघर्ष चला था। अतः यह निर्विवाद है कि सब वैष्णव संप्रदाय इस बात के लिए सतर्क थे कि उनके किसी सिद्धान्त पर शाक्तमत की छाया न पड़ जाय। हित प्रभु ने अपने प्रेम सिद्धान्त की रचना इस प्रकार की है कि राधा के प्रति उनका सहज पक्षपात शक्तिवाद नहीं

---

[१] ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य। [२] आनंदगिरि टीका। [३] रत्नप्रभा (टीका)। [४] भारतीय संस्कृति और साधना, भाग २, पृ० १८३। [५] वही, पृ० १८५

परमपूज्य स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज के
७५वीं वर्षगाँठ पर उनकी दीर्घायु की
परमेश्वर से प्रार्थना सहित

कोटिशः प्रणाम

मथुरा दास बालकिशन
ओम प्रकाश एवं सत्यनारायण

जैसलमेरिया हैण्डलूम

वल्लभदास जैसलमेरीया एण्ड संस

(हैण्डलूम कपड़े के थोक विक्रेता)

तम्बाकू बाजार, जोधपुर

शतशत नमन

प्रेमनारायण कल्ला
श्रीनारायण कल्ला

महेशकुमार दिनेशकुमार

डागों का मुहल्ला,

बीकानेर (राजस्थान)

फोन :
कार्यालय : ४९४५
निवास : ३१०९
ग्राम : "जगदम्बा"

बनपाया है। उनके सिद्धान्त में भी राधा-कृष्ण प्रेम के सहज योग्य और भोक्ता हैं—उनमें भक्ति-शक्तिमान् का संबंध नहीं है। प्रेमपात्र की—योग्य की—सहज प्रधानता होती है। नित्य प्रेमविहार में श्री राधा प्रेमपात्र हैं और उनकी प्रधानता सहज प्रधानता है—शक्ति की प्रधानता नहीं।"[1]

स्वामी करपात्री जी ने भी कहा है[2]—हितार्द्वैती चरमतत्त्व को प्रेमतत्त्व कहते हैं। वही स्वतंत्र और परमाराध्य है। उसके स्पर्श से भगवान् भी विवशतावश अपने को भूल जाते हैं। भगवत्ता प्रेमाश्रिता ही है। प्रेम को शक्ति रूप नहीं मानना चाहिए—इससे शाक्त मत के प्रवेश संभव है। प्रेम अविनश्वर तत्त्व है। यदि प्रेम भगवान् से अभिन्न माना जाय, उसका गुण माना जाय या उसकी शक्ति मानी जाय—तब भगवान् की अनुभवसिद्ध परवशता किस प्रकार संभव होगी ? शक्ति का स्वातंत्र्य माना जाय तो शाक्त मत का प्रवेश होता है, भगवान् का स्वातन्त्र्य माना जाय, प्रेम का स्वाभाविक स्वातन्त्र्य बाधित होगा—फलतः भगवान् की प्रेम परवशता औपचारिक ही होगी। वस्तुस्थिति यह है कि प्रेम के संस्पर्श मात्र से परमेश्वर भी अपनी सर्वसत्ता को संकुचित करता है और केवल राधा को जानता है। फलतः प्रेम ही परमाराध्य है—भगवत्ता उसका अन्ततम गुण है। प्रेम संबंध भी नहीं है—अन्यथा उसकी अद्वैतता भंग होगी। प्रेम ही कृष्ण, राधा, सहचरी तथा वृंदावन रूप में आत्माभिव्यक्ति करता है—लीला के लिए। इस प्रकार ये वैष्णव लोग प्रेम या भक्ति को शक्ति रूप मानने में असहमति व्यक्त करते हैं।

मेरा विचार यह है कि जहाँ भी अभिव्यक्ति है—वहाँ 'शक्ति' (संभावना के रूप में—सत्कार्यवाद) माननी ही पड़ेगी। जब अभिव्यक्ति की शक्ति होगी—तभी तो अभिव्यक्ति होगी।

कुछ लोगों का यह ख्याल भी है कि व्रज में चैतन्य मत का आगमन बंगाल के शाक्त प्रदेश से हुआ है। अतः उनमें शाक्तमत का प्रभाव संभव है—पर पश्चिमांचल में पल्लवित वैष्णव संप्रदायों में उसकी छाया नहीं है। यद्यपि राधाभाव का प्राधान्य चैतन्य की भाँति राधावल्लभ तथा हरिदासी मत है—तथापि परवर्ती दोनों 'शक्ति' की जगह 'प्रेम' का 'प्रेमतत्त्व' को प्रतिष्ठित करते हैं—उसे ही रस कहते हैं और श्याम-श्यामा के रूप में वही तत्त्व विकसित होकर के लीन होता है। चैतन्यमतानुयायी रूप सनातन 'व्रज रस' के, राधावल्लभी 'वृन्दावन रस' के तथा स्वामी हरिदास जी 'नित्यविहार' रस के सिद्ध हैं।

रूपसनातन व्रज कह्यौ वृन्दावन हरिवंश ।
नित्यविहार 'उपास' में श्री हरिदास प्रशंस ।। (रूपसखी)

पूर्वांचल और उत्तरांचल की वैष्णवधारा में कुछ तो अंतर है—पर वह अंतर शक्तितत्त्व के सद्भाव और असद्भाव का नहीं है। वल्लभमत में स्पष्ट ही भक्ति ह्लादिनी रूपा महाभावस्वरूपा राधा कही गई है। चैतन्य मत तो निर्विवाद शक्ति भाव संवलित है। राधावल्लभ तथा हरिदास में 'प्रेमतत्त्व' का चरमतत्व के रूप में मानना शक्ति सिद्धान्त का विरोधी नहीं है। स्वयम् 'भक्तिरसार्णव'कार का कहना है—

"रस रूपं परं ब्रह्म दिव्या निजरूपया ।
शक्त्या संवलितं तत्व प्रेमतत्व प्रचक्षते ।।

अर्थात् प्रेमतत्व स्वरूप भूत दिव्यशक्ति संवलित रसरूप परब्रह्म ही प्रेमतत्व है। वहाँ कहा जाता है—

नायक तहाँ न नाइका रस कर बावत केलि ।

स्पष्ट है कि रसमय प्रेमतत्व में नायक-नायिका के रूप में विकसित होने की जो संभावना है वही 'शक्ति' है—सर्वभावनसामर्थ्य है। रहा शाक्तमत से संघर्ष का सवाल—उसका रहस्य दूसरा है। संघर्ष शाक्तमत के उस रूप से है जो समष्टि मंगल से हटकर व्यष्टि मंगल के दौरान उभरा था—विघटनात्मक प्रवाह में ऊपर आ गया था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'चारुचन्द्र लेख' में इसी विघटित रूप का चित्रण किया है। निस्संदेह व्रज की वह भक्तिसाधना, जो 'तत्सुखसुखित्वं' तक जाती है—स्वार्थांधता की छाया—कलंक से असंपृक्त होगी।

इस लम्बे विवरण से यह स्पष्ट है कि कविराजजी भक्ति को शक्ति का पर्याय मानते हैं और इसका उपजीव्य वैदिक साहित्य में संकेतित 'एकायन' को यथा कथान्वित् मानते हुए भी मुख्यतः पाञ्चरात्र तथा आगे चलकर उससे एक होने वाले भागवत मत से (सात्वतमत) मानते हैं। शाण्डिल्य और नारद को यह तत्व पाञ्चरात्र आगम में जितना उन्मुक्त रूप में मिला—उतना वेदों में नहीं। स्मरणीय है कि शाण्डिल्य व्रजवासी गोपगणों के पुरोहित थे। व्रज वही क्षेत्र है जहाँ मधुवन है और मधुवन वह है जहाँ मधुविद्या का साक्षात्कार वैदिक ऋषियों को हुआ था। इस मधुविद्या में परवर्ती भक्ति रस की संभावना है—पर उसका पल्लवन जैसा पाञ्चरात्र में है—वैसा वेदों में नहीं। इसीलिए उन्हें—शाण्डिल्य को—वेदों से वह शान्ति नहीं मिली—जो पाञ्चरात्र से मिली। आद्य शंकराचार्य पाञ्चरात्र को अवैदिक कहते हैं, पर वैष्णव आचार्य उसे संबद्ध करने का प्रयत्न करते हैं।

दूसरी ओर प्रातर्वन्द्य करपात्र स्वामी का मत है कि उन्हें आस्था उसी धारा में होगी जो श्रौत हो—श्रुति सम्मत हो—अतः 'भक्ति'—यहाँ तक कि जो कामेश्वर-कामेश्वरी, राधा-कृष्ण, सीता-राम के कूलों में प्रवाहित होती रही—उसका भी उद्गम् वैदिक ऋचाओं में—वैदिक साहित्य में ढूंढ निकाला है। 'भक्तिरसार्णव' में प्रसष-सूक्त तथा देवी सूक्त के साक्ष्य पर विचार करते हुए निष्कर्ष निकाला है—

"एवञ्च सर्वस्यापि सूक्तजातस्य निरतिशयानंदरूपे शक्त्याधिष्ठिते परब्रह्मण्येव चरमं तात्पर्यम्। तदैव च जगति कामेश्वरी कामरूपेण, सीताराम रूपेण, राधाकृष्णादिरूपेण च नैकरूपैः विलसति-इत्येव निष्कंटकः पन्थ्याः"[2]। अर्थात् उनके मतानुसार भी समस्त सुप्रसिद्ध पुरुष सूक्त तथा देवी सूक्त जैसे वाङ्मय का चरम तात्पर्य "पूर्णशक्ति सम्पन्न भगवान्" में ही है। उन्होंने अनेक वैदिक मंत्रों में गोलोक परक वर्णन भी उद्घाटित किए हैं। उनकी धारणा है कि 'गुणोपसंहार न्याय' से वेद तथा उपनिषद् में वर्णित राधा तत्व पुराणों में पल्लवित है। 'अनयाराधितः' में संकीर्तित

---

[1] श्री हितहरिवंश गोस्वामी, पृ० २१५, २१६।

[2] भक्ति रसार्णव, पृ० ११४।

[1] व्रज का सांस्कृतिक इतिहास, भाग २, पृ० १८२।

[2] भक्ति रसार्णव, पृ० १६७।

धार्मिक जगत की
नैया के एकमात्र खेवैया
यतिचक्रचूड़ामणि धर्मसम्राट्
स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज
चिरायु हों

७५वें जन्मदिवस पर
श्रीचरणों में सादर नमन

धर्मसंघ परिवार
अखिल भारतीय धर्मसंघ
शाखा नं० ११५०११,
किराना बाजार, अकोला (विदर्भ)

श्री गुरुचरणों में
कोटि-कोटि प्रणाम

• रतनलाल शर्मा
प्रभात बुलियन मैल्टर्स
१२३५, कच्चाबाग
चाँदनी चौक, दिल्ली–११०००६

• हरिओम शर्मा
प्रिण्ट रोल्स इण्टरप्राइज
छिली ईंट रोड, आगरा

पूज्य श्रीस्वामी करपात्री जी
महाराज के ७५वीं जन्मतिथि
पर
विश्वकल्याणार्थ
धर्मध्वज
लहराता रहे

हरकरणदास मांगीलाल
खनिज उद्योग प्रतिष्ठान
पो० चाइबासा (सिंहभूम)
बिहार

फोन : ३११
तार : रूँगटा

राधातत्व श्रौत ही है—"राधाख्यं श्रौतमेव तत्वं प्रकाशितम्"[1] । ये सांप्रतिक ऐतिहासिकों से समहत नहीं है कि राधा की चर्चा पहले साहित्य में प्राकृत से संस्कृत साहित्य में आई और उसके बाद धार्मिक तथा आध्यात्मिक वाङ्मय में। कविराज जी ने भी 'गावो भूरिशृङ्गाः' में गोलोकवर्णन का संकेत माना है।

इस प्रकार मैंने प्रस्तुत विषय पर लिखते हुए आरंभ में कहा है कि इस संदर्भ में दो परस्पर विसम्मत विचारधाराएँ हैं—एक का उपबृंहण कविराज गोपीनाथ जी कर रहे हैं और दूसरे का करपात्री जी कर रहे हैं। पर परवर्ती 'भक्ति' का उपजीव्य पाञ्चरात्र-सात्वत परम्परा को बता रहा है—दूसरा साक्षात् वेदों को। मध्यम मार्ग यह अवश्य है कि दोनों वैदिक साहित्य में इसके 'संकेत' पर एकमत हैं।

'भक्ति' पर विचार करने वाले डा० मुंशीराम शर्मा, पं० बलदेव उपाध्याय आदि वैदिक स्वतवनात्मक मंत्रों में भक्ति के मूलरूप 'राग' का अस्तित्व बता कर वहीं से इसकी धारा का निरूपण करते हैं, पर परवर्ती भक्ति अंतःकरण की रागात्मिकावृत्ति नहीं है—वह "भक्ति सुतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ज्ञानविज्ञाना।।"

× × ×

अथवा—भगति करत नर बिनहिं प्रयासा।
संसृति मूल अविद्या नासा—

है। वह मूल शक्ति का पर्याय है। परवर्ती 'भक्ति' के इस रूप को केन्द्र में रखकर जब विचार किया जाता है—तब समस्या बड़ी होती है—और उसके संकेत तथा पल्लवन—उपबृंहण का संदर्भ आता है।

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि संकेत भले ही वेदों में हो, पर प्राधान्य तथा पल्लवन पाञ्चरात्रागम तथा भागवत धारा में ही मिलता है।

---

[1] भक्तिरसार्णव, पृ० ५७।

With Compliments From :—

ANANTRAM LACHHMANDAS AGGARWAL

6692/1, Khari Baoli,
DELHI-110006

PHONES : 230948
233596

GRAMS : 'PELLITORY'
DELHI

Wholesalers and Stockists for the products manufactured by

M/s Dhrangadhra Chemical Works Limited

DHRANGADHRA & SAHUPURAM

•

M/s Borax Morarji Limited

AMBARNATH

•

M/s Kanoria Chemicals & Industries Limited,

RENUKOOT (U. P.)

•

M/s Ultramarine & Pigments Ltd.,

AMBATTUR, MADRAS

वेद और तान्त्रिक-तत्त्व

• डॉ० सदाशिव अंबादास डांगे •

तान्त्रिक पद्धति और वेद इन दो में वास्तविक संबंध है या नहीं इस प्रश्न पर निर्णायक मत अभी तक प्राप्त नहीं है। तांत्रिक ग्रंथों का अध्ययन वरावर जारी रहा है, और इस क्षेत्र में सर जॉन वुड्राफ, जो आर्थर अवॅलॅन के नाम से भी प्रसिद्ध हैं, डॉ० वी भट्टाचार्य, हरप्रसाद शास्त्री आदि विद्वानों ने अपना योगदान किया है। डॉ० काणे ने अपने 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र' के पाँचवे खंड में (पृ० १०३१ से आगे) इस संवन्ध में पर्याप्त विवेचन किया है। यह वात सर्वविदित है कि सभी नव्य या अनन्तर उत्पन्न हुए पंथ अपने अपने पंथ को गौरव प्राप्त कराने के लिए उसका वेदों से संवन्ध वताते रहे हैं। जैसे, **कुलार्णव तन्त्र** कहता है, "न हि वेदाधिका विद्या।" और कौलशास्त्र (तांत्रिक शास्त्र) को 'वेदात्मक' कहता है (२. १४१, तस्माद् वेदात्मकं शास्त्रं विद्धि कौलात्मकं प्रिये, तथैव ३.११३)। वुड्रॉफ का स्पष्ट कहना है कि तंत्र कल्पना और तांत्रिक विधि वैदिक आचार के ही प्रतिरूप है (Counter parts)[१] किन्तु, अपने इस मत की पुष्टि के लिए उद्धृत किये हुए उनके उदाहरण सन्तोषजनक एवं वास्तव नहीं हैं। वे कहते हैं कि श्राद्ध में मांस का प्रयोजन और सोम–सुरा का व्यवहार इत्यादि में तान्त्रिक 'म'–कारों का बीज है। यह वात युक्तियुक्त नहीं है। वैसे ही, उनका यह कहना है कि वैदिक विधियों में प्रयुक्त पुरोडाश तांत्रिक 'मुद्रा' का मूलरूप है,[२] यह भी ठीक नहीं है। मत्स्य का व्यवहार यद्यपि हुआ करता था तथापि मुख्यतः वह श्राद्ध के संवन्ध में और विवाह के संवन्ध में हुआ करता था। श्राद्ध में 'शतवलि'—मत्स्य के मांस का विधान किया हुआ है (आपस्तम्व ध. सू. २. ७. १७. २, शतवलेर्मत्स्यस्य मांसेन)। किन्तु वैदिक यज्ञीय विधियों में मत्स्य का उपयोजन नहीं दिखाई देता।

यद्यपि तांत्रिक विधियों में शाक्त और वौद्ध प्रकार विभिन्नता से माने जाते हैं, तथापि दोनों में साधारण तत्त्व समान है। पञ्चमकार–कल्पना में मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा और मैथुन इन पाँच का अन्तर्भाव है।[3] तथापि प्रमुखता से मैथुन ही तन्त्र विधियों का सार है और कहा भी है "मैथुनं परमं तत्त्वं" और "पञ्चमं देवि सर्वेषु मम प्राणप्रियं भवेत्"। महानिर्वाणतंत्र की ये उक्तियाँ शंकर के मुख से प्रसूत हुई हैं। वैसे ही 'मुद्राएँ, एक दूसरे संदर्भ में, चार मानी गयी हैं—कर्ममुद्रा, धर्ममुद्रा, महामुद्रा और समयमुद्रा।[१] मुद्राएँ कर्ममुद्रा, ज्ञानमुद्रा, महामुद्रा और फाग्मुद्रा नाम से भी प्रसिद्ध हैं। गुह्यसमाजतंत्र में 'महामुद्रा' सवसे महत्त्वपूर्ण मानी गयी है और इसमें विश्व की विभिन्न स्त्रियों के साथ संबन्ध की योजना है। वौद्धिक तंत्रों के अनुसार भी मैथुन ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। **प्रज्ञोपायविनिश्चय सिद्धि** ग्रंथ में मैथुन व्यभिचार की सीमा को स्पर्श करता हुआ अत्यधिक वीभत्स होता जाता है। वौद्ध तंत्र के अनुसार "ॐ मणि पद्मे हूँ" मंत्र भी स्त्री-पुरुष यौन संवन्धात्मक अर्थ प्रसृत करता है। इस प्रकार में 'मुद्रा' वह स्त्री है जो इस प्रकार की विधि में भाग लेती है। उसका जननेन्द्रिय 'पद्म' या पद्मभांड है, और पुरुषसाधक का जननेन्द्रिय 'माणि' या वज्र है। इस स्त्री–पुरुष–संवंध को वर्णात्मक रूप से भी समझाया गया है। 'प्रज्ञा' यह स्त्री है और 'उपाय' (उप+आय) उसके पास जाकर संवंध करनेवाला पुरुषलिंग है। उसी प्रकार दूसरा अक्षर-मंत्र 'एवम्' है, जिसमें 'ए' स्त्री है और 'वम्' पुरुष है। 'ए' स्त्री-योनि है और 'वम्' उसमें स्थिर होनेवाला पुरुषलिंग है। इन दोनों का संयोग ही सव सृष्टि का कारण वताया गया है। **देवेन्द्रपरिपृच्छतन्त्र** में इसी तत्त्व का विस्तार कर, कहा है ए-कार माता है, व–कार पिता है; और विन्दु (एवम् के म्–कार से उच्चारित) इन दोनों का संयोग है। उसी प्रकार ए-कार प्रज्ञा है; व–कार संभोग करनेवाला पुरुष–अधिपति है; और 'विन्दु' अनाहत तत्त्व है। इनमें से ही वर्णमाला निर्माण होती है।[२] तांत्रिक विधि में विहित 'संबन्ध' की विशेषता यह मानी गयी है कि इसमें साधक का वीर्यपात न हो (न विन्दोः पातनं कार्यं, कृते च ब्रह्महा भवेत्; **कालीविलासतंत्र** १०.२१)। इससे सिद्ध होता है कि यद्यपि अन्य मुद्राओं का उल्लेख तांत्रिक ग्रंथों में किया हुआ है, तथापि विशेष विवरण मैथुन महा-मुद्रा का ही किया है। अतः तांत्रिक आगम के स्रोत के संवन्ध में विचार करना हो, तो मैथुन या मिथुन–कल्पना पर ही अधिक लक्ष देना उचित है।

---

१. सर जॉन वुड्रॉफ, शक्ति एण्ड शाक्त, लुशाक एण्ड कम्पनी, १९१८, पृ० १३२।

२. वही, पृ० २७।

३. महानिर्वाणतन्त्र १. ५७ मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च।
एतानि पञ्च तत्त्वानि त्वया प्रोक्तानि शंकर॥

१. हर्बर्ट व्ही. गुन्थर का, युगनद्ध, वाराणसी, १९५२, पृ. ८७, जहाँ इन्द्रभूति लिखित ज्ञानसिद्धि से और अद्वयराज के चतुर्मुद्रा से उल्लेख दिये हैं।

२. एकारस्तु भवेन्माता वकारस्तु पिता स्मृतः।
विन्दुस्तत्र भवेद्योगः स योगः परमाक्षरः॥
एकारस्तु भवेत्प्रज्ञा वकारः सुरताधिपः।
विन्दुश्चानाहतं तत्त्वं तज्जातान्यक्षराणि च॥

सनातनधर्म विभूषण धर्मध्वज उन्नायक

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वें जन्मदिवस पर कोटिशः नमन

रामकुमार माहेश्वरी

लच्छीराम देवीप्रसाद

क्लॉथ मर्चेण्ट व कमीशन एजेण्ट

महावीर बाजार, क्लॉथ मार्केट, दिल्ली

फोन : आफिस : २५८९३३
निवास : २२५८८५

तार : "MILLIONTEX"

पूज्य गुरुदेव के

श्रीचरणों में

शतशत नमन

ग्रेटर राजस्थान इलेक्ट्रिक ट्रेडिंग कं०

कोट गेट, बीकानेर (राजस्थान) फोन : ८५१

स्टाकिष्ट फॉर : एंकर ब्राण्ड

इलेक्ट्रिक एसेसरीज एण्ड स्वीच गीयर्स

डॉ० काणे ने इस विषय पर विचार करते हुए मैथुनतत्त्व की अपेक्षा मत्स्य, मांस और सुरा पर ही अधिक लक्ष केन्द्रित किया है और शक्तिपूजा के संबंध में भद्रकाली का उल्लेख किया है।[1], यद्यपि मैथुन का उल्लेख किया है।[2] शाक्त और तान्त्रिक पद्धतियों में भेद दिखाते हुए काणे का यह मत सही है कि शाक्तों में शक्ति या देवी की पूजा का महत्त्व है, किन्तु तान्त्रिकों में (जिस शब्द से वे बौद्ध तन्त्र की ओर निर्देश करते हैं) ऐसी बात नहीं है।

काणे के मत से बौद्ध तान्त्रिक ग्रन्थ **प्रज्ञोपाय-विनिश्चयसिद्धि** और **ज्ञानसिद्धि**, इ. स. ८वीं सदी से पूर्व के नहीं है; और उससे पहले ही भारत में शाक्त–तान्त्रिक विधियों का चलन रहा था। शक्ति, माया और वाग्देवता की कल्पना ऋग्वेद से बराबर चलती आयी है। वरुण आदि देवों की स्त्रीरूपधारिणी शक्तियाँ भी वेदों में पायी जाती हैं। तथापि वे निश्चित रूप से वेद में तन्त्रतत्त्व के पाये जाने के संबंध में, संदेह में पड़े दिखाई देते हैं। उनका एक मात्र लक्ष्य यह दिखाई देता है कि बौद्ध तन्त्रों से पूर्व ही भारत में शाक्ततन्त्र की परम्परा रही; और चीन-तिब्बत से तन्त्र की देन माननेवाले विद्वानों से वे सहमत नहीं हैं। इसके विपरीत, वे साधार दिखलाते हैं कि भारत से ही तान्त्रिक कल्पना और विधियों के तत्त्व चीन और तिब्बत में गये हैं।[3] यह तो ठीक है। किन्तु, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, केवल मांस और सुरा और भद्रकाली और चण्डी ये ही तंत्रसार नहीं हैं। फिर भी काणे इस संबन्ध में केवल इ० स० ६०० का उद्धहरण देते हैं जो बाणभट्ट की कृतियों पर आधारित है।[4] वैसे ही दुर्गा-पूजा याने शक्तिपूजा महाभारत में भी पायी जाती है, यह भी ठीक है।[5] इस संबन्ध में ध्यान रखना आवश्यक है कि रामायण में सुरा-मांस से नदी का तर्पण करने का उल्लेख है। अयोध्या से वन के लिए प्रस्थान करने के बाद गंगा पार करते समय सीता गंगा नदी से कहती हैं, "हे देवनदि, मेरे पति के राज्य पर पुनरधिष्ठित हो जाने पर सहस्र गौवें और वस्त्र ब्राह्मणों को दान करूँगी। उसी प्रकार तेरी भी पूजा करूँगी; सहस्र सुराघट और मांसौदन देकर तेरा तर्पण करूँगी; उसी प्रकार तेरे किनारे पर स्थित विभिन्न देवताओं को भी सुरा–मांसौदन देकर तृप्त करूँगी।[6] इसी प्रकार वह यमुना से भी कहती हैं (रामा० अयोध्या, ५६, २०–२१)। आगे इन दोनों नदियों को पार करके वह न्यग्रोधवृक्ष के पास आती हैं; उसको प्रणाम करती हैं और प्रदक्षिणा करती हैं (वही, २६, पर्यंगाद्वनस्पतिम्)। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि सीता केवल नदियों को सुरा–मांसौदन समर्पित करना चाहती हैं। क्यों ? नदियाँ देवियाँ हैं, इसलिए।

विष्णु पुराणादि में मातृकाओं का यह आहार स्पष्ट रूप से कहा गया है (५. ७. ६०)। हमें पुराणों के संदर्भ देखना अनावश्यक है, इसलिए उनकी ओर निर्देश नहीं करेंगे। किन्तु रामायण के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि देवियों और मातृकाओं के लिए, तथा च देवीस्वरूपिणी नदियों–वनस्पतियों के लिए सुरा–मांसाहार प्राचीन काल से प्रचलित था। क्या वैदिक साहित्य में मी यही तात्त्विक भूमिका पायी जाती है ? शुक्रनीतिसार के अनुसार (४. ३. ३९) तन्त्र अथर्ववेद का उपवेद है (अथर्वणां चोपवेदस्तन्त्ररूपः स एव हि)। और इस पर काणे का कथन है कि अथर्ववेद और तन्त्र-विधि इनमें साक्षात् संबन्ध नहीं है।[1] किन्तु यह मत मान्य नहीं हो सकता। भले ही इ० स० ७वीं सदी के तान्त्रिक रूप को वेदों में पाना असम्भव है; तथापि तान्त्रिक-तत्त्व के मूल स्रोत के स्वरूप अथर्व-वेद में अवश्य मिलते हैं। हमने ऊपर देखा है कि तन्त्र-प्रचार में प्रमुख मैथुन 'म'–कार है और मिथुनत्व–भावना ही तान्त्रिक आचार की नींव है।

इस दृष्टि से, वेदों की 'महानग्नी' की कल्पना देखना आवश्यक है। तान्त्रिक विधियों में जिस प्रकार स्त्री-पुरुष संबंध पर विशेष ध्यान दिया जाता है, उसी प्रकार 'महानग्नी–महानग्न' युगल वैदिक काल में प्रसिद्ध था। और उनके संबंध में उच्चारित होनेवाले मन्त्र यौन-संवन्ध के स्पष्ट द्योतक थे। ये मन्त्र अथर्ववेद में आते हैं, और ऋग्वेद के खिल-सूक्तों में मी इनका समावेश है।[2] महानग्न-महानग्नी के युगल में निश्चित रूप से परवर्ती काल के 'महामुद्रा'—साधक का बीज दिखायी देता है। महानग्नी के 'जघन' का मी उल्लेख है, जिस पर अश्विनीकुमार अपने तेज का सिंचन करते हैं। इसी के साथ सुरा और और 'अक्ष' (द्यूत के फाँसे) पर मी अश्विनीकुमार उसी तेज का सिंचन करते हैं।[3] इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि मिथुनीकरण, जहाँ मैथुन मी परिकल्पित है,[4] वैदिक विधियों का एक अविभाज्य अंग रहा।[5] यद्यपि महानग्नी को सुरा अर्पण करने का, या उसकी पूजा में सुरा-सेवन का उल्लेख यहाँ स्पष्ट रूपेण नहीं है, फिर भी महानग्नी और सुरा दोनों का संबन्ध अश्विनीकुमारों के सिंचन से स्पष्ट है। यह भी ध्यान रहे कि

---

[1] उक्त ग्रंथ, पृ० १०३५–१०४३।

[2] वही, पृ० १०५६।

[3] उक्त ग्रंथ, पृ० १०४०।

[4] वही, जहाँ चण्डिका का उल्लेख है।

[5] वही पृ० १०४६।

[6] रामायण अयोध्या, ५२—

गवांशतसहस्राणि वस्त्राण्यन्नं च पेशलम्।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदास्यामि तव प्रियचिकीर्षया॥८८॥
सुराघटसहस्रेण मांसभूतौदनेन च।
यक्षे त्वां प्रयता देवि पुरीं पुनरुपागता॥८९॥
यानि त्वत्तीरवासीनि दैवतानि वसन्ति च।
तानि सर्वाणि यक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च॥

---

[1] उक्त ग्रं०, पृ० १०३७।

[2] अथर्ववेद २०. १३६. ५–१३; ऋग्वेद खिल ५.२२; शांखा. श्रौ. सू. १२. २४. २. ४।

[3] उ. ग्रं. १४. १. ३६ येन महानग्न्या जघनमश्विना येनवा सुरा।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम्॥

[4] उ. ग्रं. २०. १३६. ११ महानग्नी–यम··· ··· ··मामद्धि-ओदनम्॥

[5] इस संबन्ध में देखा जा सकता है मेरा ग्रंथ—**सेक्स्युअल सिम्बॉलिज़्म फ्रॉम द वेद, दिल्ली १९७९।**

"Glory to the Sri Krishna Samkirtan which cleanses the heart of all the dust accumulated for years together. Thus the fire of conditional life, of repeated birth and death, is extinguished. The Samkirtan movement is the prime benediction for humanity at large because it spreads the rays of the benediction Moon. It is the life of all transcendental knowledge, it increases the ocean of transcendental bliss, and it helps to have a taste of the full nectar for which we are always anxious."

—Lord Chaitanya Mahaprabhu

उड़िशा सिमेंट लिमिटेड

ORISSA CEMENT LIMITED

RAJGANGPUR (ORISSA)

Manufacturers of :

Konarak Brand Cement

Special Cement, Quality Refractories,

Soda Ash and Amonium Chloride.

यह 'सिंचन' विवाह के संवन्ध में उल्लेखित है; और इसी प्रकार, नववधू का भी सिंचन करने की अश्विनीकुमारों से प्रार्थना की गयी है। अन्वष्टक-श्राद्ध में भी सुरा का एक महत्त्वपूर्ण उल्लेख पाया जाता है। पिण्डदान के समय, पुरुष पितृगण को ओदन-पिंड दिये जाते हैं; किन्तु स्त्रीगण को इन पिंडों के साथ सुरा भी दी जाती है।[1] अतः यह स्पष्ट है कि मातृवर्ग या देवियों को सुरा से संवन्धित किया जाता था। मांस का तो कोई प्रश्न ही नहीं। इसी तत्त्व को लेकर रामायण में नदियों को सुरा–मांस प्रदान करने की कल्पना आती है। महानग्नी वधू की ही नहीं समस्त स्त्री-जाति की संकेत मातृका मानी जानी चाहिए। और दूसरे संकेत से महानग्नी पृथ्वी का संकेत है, जिसका दूसरा सांकेतिक नाम इन्द्राणी है। इन्द्राणी के रूप में उसका इन्द्र के साथ स्पष्ट यौन–संवन्ध कहा गया है।[2]

इस कार के यौन–प्रतीक केवल काल्पनिक नहीं थे। विधियों में इनका व्यवहार होता था। इसी परम्परा–विश्वास के आधार पर अश्वमेध यज्ञ का अश्व 'महानग्न' था और उसके साथ संवन्ध करनेवाली राज्ञी 'महानग्नी' थी। किन्तु ये संवन्ध केवल कृषि–पैदास के क्षेत्र में और प्रजनन के वास्तविक क्षेत्र में रहे। और भी इस प्रकार के उदाहरण हैं, जो 'महाव्रत' नामक याग में वरावर मिलते हैं, जहाँ मागध पुरुष और वेश्या का मैथुन किया जाता था। और ब्रह्मचारी–वेश्या संवाद भी किया जाता था। वैदिक मिथुन–परंपरा के क्षेत्र में किये जाने वाले ऐसे विधान आगे चलकर लुप्तप्राय होने लगे। किन्तु शक्ति–शिव की नयी परम्परा ने इ० स० पहली सदी के लगभग इसी पुरानी परम्परा को गुप्तरूपेण प्रचलित रखा। मूलतः कृषि–प्रधान जनता के ये प्रकट यज्ञीय-विधि अब गुप्तता से किये जाने लगे, और इसी गुप्तता के कारण इनमें नये सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण का जागरण होने लगा। कालिदास की "वागर्थाविव सम्पृक्तौ" "पार्वती-परमेश्वरौ" की कल्पना इसका प्रमाण है (रघुवंश १.१)।[3] ठीक यही कल्पना मृच्छकटिक नाटक में भी पायी जाती है (१. २)। किन्तु स्मरण रहे कि इस प्रकार की 'संमिश्रता' की कल्पना सर्वप्रथम इन्द्र-इन्द्राणी के संवन्ध में आती है। कहा गया है कि इन्द्र वह पुरुष है जो यजमान की दाहिनी आँख में रहता है। इन्द्राणी वह पुरुष है जो उसकी बायीं आँख में रहता है।[4] ध्यान रहे कि पुरुष को ही स्त्री कहा गया है। और यहीं पर पुरुष–स्त्री के एक शरीरान्तर्गत युग्म की कल्पना सफल होती है, जो आगे चलकर शिव-अर्धनारीश्वर के रूप में पनपती है, जिसका वर्णन "कान्तासंमिश्रदेह" इस उपाधि से किया गया है। शाक्तों के शिव-शक्ति-आलिंगन का मूल यहीं पर है। शतपथ में आगे यह भी कहा गया है कि ये दोनों हृदयान्तर्गत आकाश में प्रविष्ट होकर संभोग करते हैं।

वैदिक मिथुनी करण सिद्धान्त की यह विशेषता है कि उसमें 'संभोग' वास्तव में नहीं है, केवल यौन संवन्ध है, और विधि के बाहर इस प्रकार को कोई स्थान नहीं है। ठीक यही भावना तान्त्रिक आचारों में मूलतः रही है। हमने ऊपर देखा है कि नारी-स्वरूप 'महामुद्रा' में विन्दुपात (रेतस्खलन) को ब्रह्महत्या के वरावर माना गया था। वैसे ही वाणी प्रसार के क्षेत्र में जिस प्रकार कालिदास "वागर्थाविव सम्पृक्तौ" शिव-शक्तियुक्त की कल्पना करते हैं, ठीक उसी प्रकार का वचन कामकला विलास तन्त्र-ग्रंथ में मिलता है। वहाँ सित–शोणित-विन्दु–युगल की कल्पना की है, जो शिवशक्ति रूप होकर "वागर्थसृष्टिहेतु" वताई गई है (श्लेक ७)। वैसे ही ठीक कालिदास-वचन का स्मरण देनेवाला वचन भी वहाँ मिलता है[1]। और भी, जैसा कि तान्त्रिक ग्रन्थों में वर्ण-संकेत भी मिथुन प्रधान माने गये हैं, और 'एवम्' में ए=स्त्री और व=पुरुष, तथा म् (विन्दु)=संभोग हैं, ठीक उसी प्रकार वैदिक याग विधियों के मंत्रों में भी मिथुनत्व की कल्पना की गई है। वहाँ ऊँ पुरुष माना गया है, और ऋच् स्त्री मानी गयी है। इतना ही नहीं, 'वषट्' का उच्चारण और 'हिँ' का उच्चारण भी पुरुष माना गया है और ऋच् स्त्री है।[2] इन्द्र–इन्द्राणी 'अर्धनारी' युगल वेदग्रंथ में ही रहा। किन्तु अथर्व–वेद की 'महानग्नी'—परम्परा आगे वढ़ी और 'मातृका' में परिणत हुई। शिव–शक्ति की कल्पना ने इन्द्र–इन्द्राणी युगल को वेदकाल के अनन्तर ही रोका यह वात नहीं। अथर्ववेद में भी शिवस्वरूप महाव्रात्य के रूप में हम एक और युगल पाते हैं। वह है मागध और पुंश्चली का, जो हर स्थान हर अवस्था में महाव्रात्य के साथ रहता है (अथर्ववेद १५. १. ५, १३ और अन्य स्थान)। इन सब वातों से स्पष्ट होता है कि तान्त्रिक तत्त्वों का सूत्रपात वैदिक काल में ही हुआ था, जहाँ आदिम मातृशक्ति की कल्पना 'महानग्नी' में की गयी थी। उसका नर-देव महानग्न था। जैसे ऊपर देखा गया है, सुरा का विशेष स्थान भी तभी का है। यह वैदिक मिथुन-तत्त्व मागध–पुंश्चली के युगल में भी स्पष्ट हुआ, जो महाव्रात्य की पार्श्वभूमि पर विकसित हुआ, जिसमें शिव-शक्ति और शाक्त मिथुन-मैथुन कल्पना का सबसे प्राचीन बीज मानना चाहिए। शिव–शक्ति की कल्पना आगे वढ़ी। और इसी कल्पना को लेकर जिसे तान्त्रिक–तत्त्व कहा जाता है वह विकसित हुआ। बौद्ध तान्त्रिकों ने इसी तत्त्व को लेकर अपना 'अनूठा' और वज्रयानी रूप प्रसाधित किया।

---

१. आश्वलायन गृ. सू. २. ५. ८ स्त्रीभ्यश्च सुराचाचामित्यधिकम्। पारस्कर गृ. सू. ३. ३. ११; तथा काण्क गृह्य सू. ६५. ७. ८।

२. मैत्रायणी संहिता ३. ८. ४; काण्कसंहिता ८.१७. १२. (इन्द्राणी) त्रिंशदस्या जघनं योजनानिउपस्थ इन्द्रं स्थविरं बिभर्ति॥

३. तु. मालविकाग्निमित्रम् १.१ कान्ता संमिश्रदेहोऽपि।

४. शतपथ ब्रा. १४. २. ३ बृहदारण्यक उपनिषद् ४. २. ३ अथैतद्वामे अक्षिणि पुरुषरूपम् एषा पत्नी।

---

१. कामकलाविलास, १२ वागर्थौ नित्ययुक्तौ परस्परं शिवशक्तिमयौ—एतौ।

२. शतपथ ब्रा. १-५-२-११; १-४-१-२; पञ्चविंश ब्रा. ६-८-२; देखिये मेरा उक्त ग्रंथ, पृ. ९९–११४।

* * *

"SHREENIWAS" FABRICS FOR A SUPER CHOICE OF POLYESTER

SUITINGS, SHIRTINGS, SAREES AND DRESSES IN COTTON AND BLENDS,

A WIDE RANGE

TO CHOOSE FROM FOR THE ENTIRE FAMILY

THE WORD OF FASHION

◆

The Shreeniwas Cotton Mills Limited

402, Senapati Bagpat Marg
Lower Parel
BOMBAY 400013

Regd. Office :

Shreeniwas House, Hazarimal Somani Marg
BOMBAY 400 001.

आचार्य सायण और पाश्चात्य वेद व्याख्याकार

• डॉ० व्रजबिहारी चौबे •

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जब सर विलियम जोन्स के प्रयास से रायल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना हुई और संस्कृत के पण्डितों की सहायता से संस्कृत ग्रन्थों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद का कार्य प्रारम्भ हुआ, संस्कृत के प्रति पाश्चात्य विद्वानों की रुचि बढ़ी। बड़े उत्साह के साथ पाश्चात्यों ने संस्कृत का अध्ययन एवं संस्कृत में निहित ज्ञान-भण्डार की खोज शुरू की। प्रारम्भ में सामान्य रूप से संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं की ओर पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान आकृष्ट अवश्य हुआ, किन्तु बाद में वैदिक साहित्य के अध्ययन में उनकी विशेष रुचि हुई, क्योंकि यह विश्व का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य था। १८०५ में कोलब्रुक ने "एशियाटिक रिसर्चेज़" नामक शोध पत्रिका के अष्टम अंक में वेद के ऊपर अपना एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विस्तृत विवरणात्मक एवं खोजपूर्ण निवन्ध प्रकाशित किया। इस निवन्ध में उसने वैदिक साहित्य के सम्पूर्ण अंगों पर प्रकाश डाला था। कोलब्रुक प्रथम व्यक्ति था जिसने वैदिक अध्ययन का दीप पाश्चात्य देशों में प्रज्वलित किया। उसने बहुत परिश्रमपूर्वक वैदिक ग्रन्थों के हस्तलेखों को संगृहीत किया और उन्हें लन्दन भेजा। इन हस्तलेखों के लन्दन पहुँचने के बाद कठिनाई यह थी कि इनको कैसे पढ़ा और समझा जाये। जब तक इनको पढ़ा और समझा नहीं जा सकता था तब तक इनकी वास्तविक उपयोगिता एवं महत्ता का भी परिज्ञान नहीं हो सकता था। अतएव इस कार्य के लिए कई पाश्चात्य विद्वानों को भारत आना पड़ा और यहाँ के पण्डितों की सहायता लेनी पड़ी। पण्डितों की सहायता से 'स्टीवेन्सन' (Stevenson) ने सर्वप्रथम ऋग्वेद का प्रथम अष्टक के तृतीय अध्याय के तृतीय सूक्त तक का अंग्रेजी अनुवाद किया। इसके पश्चात् डा० रोएर (Roer) ने ऋग्वेद का प्रथम अष्टक के दो अध्यायों अर्थात् ३२ सूक्तों तक का अनुवाद किया। ये दोनों अनुवाद भारत में ही प्रकाशित हुए थे। फ्रीड्रिख रोजेन (Friedrich Rosen) नामक एक जर्मन् विद्वान् ने लन्दन में संगृहीत वैदिक हस्तलेखों की उपयोगिता को अच्छी प्रकार से समझा और उसने इस आवश्यकता का अनुभव किया कि इन्हें किसी प्रकार योरोपियन विद्वानों की समझ के योग्य बनाया जाय। इसलिए उसने बड़े उत्साह के साथ ऋग्वेद के सम्पादन का कार्य शुरू किया, किन्तु प्रथम अष्टक के प्रकाशित होने के पूर्व ही १२ सितम्बर १८३७ को उसकी मृत्यु हो गयी। आगे का कार्य वहीं रुक गया। १८३८ में उसका प्रथम अष्टक 'ऋग्वेद संहिता लिबर प्रिमस संस्कृत एट लैटिन' (*Ṛgveda Saṃhita Liber Primus Sanskrit et Latine*) के नाम से प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में रोजेन ने ऋग्वेद के मन्त्रों का उसी पृष्ठ पर लैटिन अनुवाद भी दिया जो यद्यपि सम्पादित मूल ऋग्वेद का प्रमुख भाग न होकर उसके सहायक के रूप में था, किन्तु वह अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण, सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों का ध्यान रखने वाला तथ्यपूर्ण एवं प्रामाणिक था। रोजेन के पश्चात् लैंगलूइस (Langlois) ने ऋग्वेद के चार अष्टकों का फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया। उसने व्याख्या की जो पद्धति अपनायी वह डा० रोजेन की पद्धति से बिल्कुल विपरीत थी। उसने ऋग्वेद के अस्पष्ट एवं रहस्यात्मक मन्त्रों की स्पष्ट, सरल एवं बुद्धिगम्य व्याख्या करने का संकल्प लेकर अनुवाद कार्य शुरू किया और इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रयास में वह पर्याप्त सीमा तक सफल भी हुआ। किन्तु उसके अनुवाद के विषय में यह कहा जा सकता है कि इस अनुवाद कार्य में वह ऋग्वेद के मूल रूप को सुरक्षित रखने में पूर्णरूप से सचेत नहीं रहा है। कहीं-कहीं तो वह मूल परम्परा से आवश्यकता से अधिक दूर हट गया है। इस कमी का एक कारण यह भी था कि लैंगलूइस ने ऋग्वेद का जो अनुवाद किया वह वेद और वेद के भाष्य के हस्तलिखित ग्रन्थों से किया क्योंकि उस समय तक कोई भी ऋग्वेद का भाष्य सहित प्रामाणिक संस्करण प्रकाश में नहीं आया था। यह बात ठीक है कि इस कार्य में अनुवाद कर्ता की कठिनाइयों की विशालता और उसके परिश्रम की महत्ता पर प्रकाश अवश्य पड़ता है, किन्तु अनुवाद की प्रामाणिकता में उतनी ही आशंका या कमी का बोध होता है, क्योंकि सभी हस्तलिखित ग्रन्थ कम या वेश स्वाभाविक रूप से गलत पाठ वाले होते हैं।

अब तक पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा ऋग्वेद के ऊपर सामान्य रूप से कतिपय अष्टकों या सूक्तों के व्याख्यान के रूप में जो कार्य हुआ उसका आधार भारतीय पण्डितों का वेद विषयक ज्ञान तथा हस्तलिखित ग्रन्थों में पड़ा सायन भाष्य था। इसके अतिरिक्त वेदों को समझने तथा योरोपीय विद्वानों तक उनको पहुँचाने का कोई तीसरा साधन नहीं था किन्तु धीरे-धीरे वेदविषयक स्वतन्त्र चिन्तन की भी शुरूआत हुई। १९वीं सदी के पंचमदशक में प्रो० बरनफ जो 'कालेज डे फ्रैन्क' में संस्कृत का प्रोफेसर था, ने वेद के अध्ययन में विशेष रुचि ली और उसने स्वयं तो इस विषय में इतना कार्य नहीं किया, किन्तु अनेक ऐसे शिष्यों को उत्पन्न किया जिन्होंने वेद के ऊपर स्वतन्त्र रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किये। विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेद के प्रति योरोपियनों में रुचि उत्पन्न करना उसका विशेष लक्ष्य था। प्रो० बरनफ ने वेद को समझने के लिए सायण तथा भारतीय पण्डितों से हट कर एक नया मार्ग निकाला जो तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के नाम से प्रसिद्ध है। प्रो० बरनफ को आधुनिक तुलनात्मक भाषा विज्ञान का पथ निर्माता एवं अगुआ माना जाता है। उसने संस्कृत की, ग्रीक, लैटिन तथा अन्य योरोपीय भाषाओं के साथ तुलना की और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि तुलनात्मक भाषा विज्ञान के द्वारा ही वेदों को सही रूप से समझा जा सकता है। इस पद्धति से वेदों का अध्ययन करने के लिए प्रो० बरनफ ने

धर्मसम्राट् सनातनधर्म संरक्षक

परमपूज्य गुरुदेव श्रीस्वामी करपात्री महाराज के

७५वीं वर्षगाँठ पर

शतशत नमन

मेसर्स मोहन इण्डष्ट्री

सी-८, फोकल प्वांइट

राजपुरा–१४०४०१ (पंजाब)

हर प्रकार के गोल, चौरस, प्लेन, प्रिंटेड तथा

I. S. I. मार्का टीन के डिब्बों के निर्माता

फोन : २४२१, २२६१

तार : "खंडेलिया"

जिन शिष्यों को प्रशिक्षित किया उनमें डा० रॉथ तथा मैक्समूलर का नाम अग्रणी है। वेदाध्ययन के क्षेत्र में इन दो विद्वानों ने जो कार्य किया उसने न केवल योरोप में वल्कि भारत में भी एक नये युग की शुरूआत की। वेदाध्ययन के क्षेत्र में एक नयी क्रान्ति आयी। वैदिक विद्वानों में दो प्रकार की विचाधारा चल पड़ी। एक विचारधारा यह थी कि वेदों को समझने के लिए सायण के माध्यम से भारतीय परम्परा को आधार बनाना चाहिये और दूसरी विचार धारा थी कि वेद को तुलनात्मक भाषा विज्ञान के आधार पर समझा जाना चाहिए क्योंकि वेद केवल भारतीय नहीं बल्कि योरोपीय परिवार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं।

सन् १८४६ में डा० रॉथ का 'त्सुर लितरातु उण्ड गेशिख्त डेस वेद डेर अभान्दलुंगेन' Zur Literatur Und Gischichte des Weda Der Abhandlungen)—'A treatise on the literature and History of the veda' प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ ने वेदाध्ययन के लिए प्रेरणा प्रदान की। इस ग्रन्थ के विषय में 'केगी' ने लिखा कि 'इस ग्रन्थ ने वेदाध्ययन के क्षेत्र में एक नई क्रान्ति ला दी जिससे प्रेरित होकर सभी संस्कृत के विद्वान् वेदाध्ययन में प्रवृत्त हुए।' बरनफ द्वारा बोये गये तुलनात्मक भाषा विज्ञान के बीज को आधार बना कर तथा सम्पूर्ण भारोपीय विचारधारा का ज्ञान वेद व्याख्या के लिए आवश्यक मान कर रॉथ ने सेण्ट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी के वेदभाग का संकलन किया। यह रचना उसके वेद विषयक उत्साह एवं अथक परिश्रम की परिचायक है। इस वृहद् कोश की भूमिका में डा० रॉथ ने सायण के माध्यम से भारतीय परम्परागत वेद व्याख्या को अपूर्ण बताया। उसने लिखा है कि वैदिक साहित्य के किसी एक भाग से अथवा धर्म एवं उपासना से जहाँ तक सम्बन्ध है इन भाष्यकारों से बढ़कर कोई दूसरा पथ-प्रदर्शक नहीं मिल सकता, क्योंकि इस क्षेत्र में सभी दृष्टियों से वे सही हैं; व्याख्यान में पाठ का शब्दशः अनुकरण करते हैं और इस बात के कहने से नहीं थकते अथवा घबड़ाते जिसे वे अनेक बार पहले कह चुके हैं। उनके इस व्याख्यान रूप को देखकर प्रायः ऐसा महसूस होता है कि वे अपने लिए तथा अपनी भाषा के जानकारों के लिये न लिखकर विदेशियों के लिए लिख रहे हैं। डा० रॉथ का कथन है कि ऐसे स्थलों पर तो सायणादि भारतीय भाष्यकार प्रामाणिक हैं, किन्तु प्राचीन संहिताओं के मन्त्रों के व्याख्यान में बात बिल्कुल विपरीत दिखाई पड़ती है। डा० रॉथ का कथन है कि संहिताओं के मन्त्रों के व्याख्यान के लिए निर्णय की स्वतन्त्रता, विशाल दृष्टिकोण तथा ऐतिहासिक प्रतिभा आदि जिन गुणों की आवश्यकता है वे गुण भारतीय भाष्यकारों में उपलब्ध नहीं। भारतीय भाष्यकारों का विचार कर्मकाण्ड की परम्परा से बोझिल है। कर्मकाण्डपरक ज्ञान के क्षेत्र में निर्णय की स्वतन्त्रता का यहाँ अत्यन्त अभाव है। भारत में कोई भी व्यक्ति ऐतिहासिक विकास का विचार रखने वाला कभी नहीं रहा है। डा० रॉथ का कहना है कि जिन गुणों ने कर्मकाण्ड विषयक जानकारी के लिए इन भाष्यकारों को सर्वश्रेष्ठ बनाया है, उन्हीं गुणों ने उन्हें मन्त्रों की व्याख्या में पूर्णतः अयोग्य बना दिया है। भारतीय भाष्यकारों को संस्कृत भाषा की जानकारी थी इसलिए उसके सामान्य वाक्यांशों तथा मुहावरों को उन्होंने वैदिक सूक्तों में भी देखना शुरू कर दिया। चूँकि उन्हें किसी भी प्रकार का कर्मकाण्डगत अन्तर स्वीकार्य नहीं था इसलिए उन्होंने इस कर्मकाण्ड की पद्धति को सृष्टि के आदि काल से ही प्रचलित मान लिया। उनकी यह कल्पना थी कि भारतीय धर्म के निर्माताओं ने प्राचीन काल में इसी प्रकार यज्ञ किया था जैसा भाष्यकारों के समय में या उनकी पूर्व परम्परा में प्रचलित था। अपनी परम्परा में प्रचलित सर्वमान्य पुराकथात्मक तथा लौकिक पद्धतियाँ उनकी दृष्टि में सर्वथा अकाट्य थी इसलिए उन्होंने इन सबको प्राचीन श्रुतियों में खोजना प्रारम्भ किया। डा० रॉथ का कथन था कि वस्तुतः वैदिक ऋषि जिस वातावरण में रहे वह वातावरण उन भाष्यकारों के वातावरण से सर्वथा भिन्न था। मन्त्रद्रष्टा वैदिक ऋषि देवताओं के साथ साक्षात् रूप से सम्बन्धित थे इसलिए उनके सूक्तों में प्रतिपादित या प्रकटित ज्ञान परवर्ती पीढ़ी के ज्ञान से कहीं बहुत ऊँचा था।

रॉथ इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था कि सायण वेदों को किसी एक योरोपीयन से अधिक और अच्छी प्रकार से समझता था। उसके मत में एक जागरूक योरोपीयन भाष्यकार वेद को सायण आदि की अपेक्षा सही ढंग से जान सकता है। इसलिए आज से कुछ शताब्दी पूर्व भारतीय भाष्यकारों के समय में वेदों के विषय में जो जानकारी थी और जैसा अर्थ प्रचलित था उस अर्थ को या जानकारी को प्राप्त करना हम अपना प्रथम कर्त्तव्य मानकर नहीं चलते बल्कि उस भाव की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं जिसको मन्त्रद्रष्टा वैदिक ऋषियों ने अपने मन्त्रों तथा कथनों में अभिव्यक्त किया है। इसलिए हम इस मत के हैं कि सायण तथा अन्य वेद भाष्यकारों की कृतियाँ वेद व्याख्या के लिए कोई नियम नहीं बनाती बल्कि वे अन्य सहायताओं में से एक हैं, जिनको आज का व्याख्याकार इस कठिन कार्य के प्रारम्भ करने में स्वयं प्राप्त कर सकता है। सायण तथा भारतीय परम्परा से हटकर वेदों का व्याख्यान किस प्रकार से किया जा सकता है इस विषय में डा० रॉथ का कथन है कि वेद व्याख्या का कार्य एक ऐसा कठिन कार्य है जिसको केवल प्रथम प्रयास में ही पूर्ण नहीं किया जा सकता और न किसी एक व्यक्ति के द्वारा ही पूर्ण किया जा सकता है। इसलिए हमने भाषा विज्ञान द्वारा स्वीकृत मार्ग पर चल कर लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास किया है। शैली तथा प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से समान भाव वाले समस्त वाक्यों या वाक्यांशों को एक साथ रख कर उनकी तुलना के द्वारा उसमें निहित मूल भावों को निकालना अच्छा मार्ग है। यह बड़ा परिश्रम साध्य तथा कठिन मार्ग है जिस पर न तो पहले कोई भारतीय भाष्यकार ही चला और न ही कोई आधुनिक अनुवादक। हमसे पहले इस प्रकार की व्याख्या का कोई रूप नहीं था। इस प्रकार हमारे ऊपर दो प्रकार का उत्तरदायित्व आया है एक व्याख्याकार का और दूसरा कोषकार का। दस या बीस अन्य वाक्यों की जिनमें वह शब्द आया है, तुलना किये बिना केवल एक वाक्य में उद्धृत शब्द की व्याख्या उस शब्द का निर्वचन करके जो करना चाहते हैं, वे उस शब्द के सही अर्थ को नहीं जान सकते। इस निर्वचन पद्धति के द्वारा मूल वास्तविक अर्थ की तरफ नहीं बढ़ा जा सकता।[१]

---

[१] प्रो० ग्रिफिथ द्वारा जे० मूईर के 'आन द इण्टरप्रेटेशन आफ द वेद' से उद्धृत, 'ऋग्वेद अनुवाद' भूमिका, पृ० ॥।

पूज्य श्रीस्वामी करपात्रीजी की

७५वीं वर्षगाँठ पर

सद्‌भक्तिपूर्ण नमन

भार्गव भूषण प्रेस

पूर्वोत्तर भारत में आधुनिकतम साधन युक्त

एकमात्र मुद्रण प्रतिष्ठान

त्रिलोचन, वाराणसी

फोन : ५२९९६

बरनफ का दूसरा शिष्य मैक्समूलर भी स्वतन्त्र चिन्तन का था किन्तु रॉथ के समान वह सायण का विरोधी नहीं था। उसके मत में सायण से पूर्ववर्ती वेदव्याख्यान की जो भारतीय परम्परा चल रही थी वही त्रुटिपूर्ण थी। उसका कहना था कि ब्राह्मणों के लेखक कर्मकाण्ड द्वारा अन्धे थे तथा परवर्ती निरुक्त ग्रन्थों के रचयिता निर्वचन सम्बन्धी कल्पनाओं द्वारा भ्रान्त हो गये थे। इन दोनों परम्पराओं ने अपनी प्रमाणिकता एवं विश्वास के द्वारा सायण जैसे भाष्यकार को भी पथभ्रष्ट कर दिया था। जहाँ सायण को पथभ्रष्ट करने वाली किसी परम्परा का प्रमाण नहीं मिला वहाँ उसका भाष्य विवेक पूर्ण हुआ है। मूलर के मत में सायण की भाष्य पद्धति इस बात की स्वतन्त्रता नहीं देती कि वह कोई स्वतन्त्र व्याख्या स्वीकार करे जिसको तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा एक पूर्वाग्रह रहित आज का वेद व्याख्याकार प्राप्त कर सकता है। किन्तु इसके बावजूद मैक्समूलर सायण भाष्य की महत्ता एवं उपयोगिता का कायल रहा। उसने प्रथम बार ऋग्वेद संहिता का सायण भाष्य के साथ सम्पादन किया जो ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के संचलकों के संरक्षण में पाँच भागों में सन् १८४९से लेकर १८७५ ई० तक लगभग छब्बीस वर्षों में सम्पूर्ण रूप में प्रकाशित हुआ।

छब्बीस वर्षों के सायण भाष्य के सम्पादन काल में मैक्समूलर की आस्था सायण के प्रति अधिक बढ़ी। 'सैक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट सीरीज' भाग बत्तीस जिसमें वैदिक सूक्तों का अनुवाद था, की भूमिका में मूलर ने सायण के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए लिखा कि—यह बात उन लोगों के लिए सर्वविदित है जिन्होंने मेरे साहित्यिक प्रकाशनों को देखा है कि भारतीय धार्मिक परम्परा में प्रचलित और सायण भाष्य में सुरक्षित वेदों की परम्परागत व्याख्या के महत्व पर मैंने कभी भी अतिशयोक्तिपूर्ण विचार व्यक्त नहीं किया हैं। मुझे इस बात का आश्चर्य नहीं है कि जो लोग अभी-अभी वेदाध्ययन के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए हैं, सायण की वेद व्याख्या के प्रति उपेक्षा की भावना रखते हैं। वे यह नहीं जानते कि वैदिक भाषा तथा वैदिक धर्म के दुर्ग में प्रथम प्रवेश पाने के लिए उसके (सायण के) मार्गदर्शन के हम कितने ऋणी हैं, और वे भी इस बात को न जानते हुये भी उस भारतीय ईस्टौथियस (सायण) के कितने ऋणी हैं। मैं अपने उस विचार को कि कई माने में सायण वेद कैसे समझा जा सकता है, की अपेक्षा वेद कैसे नहीं समझा जा सकता है की शिक्षा देता है; वापिस नहीं लेता जिसे मैंने कई वर्षों पूर्व व्यक्त किया था, और जिसके लिए उस समय मेरी बड़ी निन्दा की गयी थी। आज अगर सायण के बिना भी हम वेदाध्ययन के क्षेत्र में चल सकते हैं तो भी हमें अपने दिमाग में यह बात धारण करनी होगी कि आज से २५ वर्ष पूर्व उसके नेतृत्व की रस्सी के बिना हम प्रथम कदम भी नहीं रख सके होते। इसलिये आज यदि हम उससे आगे देख सकते हैं जितना उसने देखा था, तो भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम उसके कन्धों पर खड़े हैं।[1]

डॉ० रॉथ की ही सरणि पर चलने वाला प्रो० बेनफे था। उसने भी रॉथ की तरह भारतीय वेद व्याख्या पद्धति की आलोचना की और तुलनात्मक भाषा विज्ञान पद्धति को वेद व्याख्या के लिये आवश्यक माना। उसने लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति जिसने भारतीय भाष्यों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है इस बात से अवगत होगा कि वैदिक मन्त्रों की रचना से लेकर भाष्यकारों के समय तक कोई भी परम्परा ऐसी नहीं मिलती जो अविच्छिन्न रूप से चलती रही हो। बल्कि इसके विपरीत प्राचीन वैदिक मन्त्रों तथा उनके भाष्यों के बीच में परम्परा का एक सुदीर्घ विच्छेद दिखायी पड़ता है जिसके अन्तराल में कुछ ही अवशेष बचे होंगे जिससे होकर अधिक से अधिक कुछ जानकारी बच गयी होगी और परवर्ती काल में वही कर्मकाण्डगत विधियाँ, शब्दों, सूत्रों तथा संभवतः उनसे सम्बन्धित मन्त्रों द्वारा आगे प्राप्त हुई होगी। परम्परा के इन अवशेषों जिनको हम अत्यल्प कह सकते हैं, के अलावा इन भारतीय वेद व्याख्याकारों को मुश्किल से कोई वेद व्याख्या के लिये सहायक सामग्री प्राप्त हुई होगी। उन्हें जो सामग्री उपलब्ध हुई थी संस्कृत भाषा के प्रयोग, शब्दों के व्याकरण एवं निर्वचनात्मक कोष के माध्यम से आज हमें भी उपलब्ध है। हमें आज जो उपलब्ध है इसके अतिरिक्त उन्हें कुछ मिला होगा यह नहीं कहा जा सकता। अधिक से अधिक उनको लौकिक संस्कृत भाषा के साहित्य में सुरक्षित सामग्री से कुछ सहायता मिली होगी, किन्तु यह लाभ या सुविधा अवेस्ता से प्राप्त सहायता की तुलना में अत्यन्त नगण्य है। आज संस्कृत की समकक्ष अन्य भोरोपीय भाषाओं की तुलना से भी हमें बहुत कुछ सामग्री प्राप्त हो सकती है और वेद को समझने के लिए आवश्यक हो सकती है। इस सामग्री से भारतीय भाष्यकार वंचित थे। प्रो० बेनफे का कहना है कि सभी सहायताओं के बावजूद भारतीय वेद व्याख्या पद्धति मूलरूप में पूर्णतया भ्रान्त है, क्योंकि पूर्वाग्रह के कारण इसके आधार पर अति प्राचीन परिस्थितियों का अनुमान किया जाता है। वैदिक ऋषियों की धर्म विषयक जो मान्यताएँ हैं वे परवर्ती भारतीय धर्म में नहीं दिखाई पड़तीं। इसलिए परवर्ती मान्यताओं के आधार पर वैदिक मान्यताओं का सामंजस्य करना या वैसी कल्पना करना ठीक नहीं। दूसरी तरफ सम्पूर्ण प्राचीन मान्यताओं को समझने का आधार आज हमारे पास सुरक्षित है। आज हमें दुनिया के अन्य प्राचीनतम जातियों तथा मनुष्यों के जीवन, विचार तथा उनके प्राचीन गीत आदि उपलब्ध हैं। यह लाभ किसी प्रकार से कम नहीं हो सकता। यदि भारतीय अपनी परम्परा के जितने ऋणी हैं उससे भी अधिक एतद्विषयक वृत्त से अधिक परिचित होते तो भी यह लाभ हमारे लिये किसी भी प्रकार कम नहीं हो सकता[1]।

प्रो० लुडविग तथा ग्रासमान ने भी डा० रॉथ की ही विचारधारा को आगे बढ़ाया। दोनों ने इसी पद्धति का अनुसरण करते हुए जर्मन भाषा में ऋग्वेद का अनुवाद किया। लुडविग का ऋग्वेद अनुवाद छह भागों में १८७६-८८में प्रकाशित हुआ तथा ग्रासमान का कवितामयऋग्वेद-अनुवाद दो भागों में १८७६-७७ में प्रकाशित हुआ। अपने अनुवाद में वे इस पूर्वाग्रह को लेकर चले हैं कि भारतीय व्याख्या निश्चित रूप से गलत, तथ्यहीन एवं भ्रान्त हैं क्योंकि ऋग्वेद मूलतः एक भारोपीय दस्तावेज है जिसका भारत के साथ अत्यल्प सम्बन्ध है।

योरोप में वेदाध्ययन तथा वेद व्याख्या के क्षेत्र में जो दूसरी विचारधारा चली उसने भारतीय परम्परा को अधिक महत्त्व दिया। इस विचार-

---

१. 'सेक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट', भाग ३२, भूमिका।

१. ग्रिफिथ द्वारा जे० मूईर के 'आन द इण्टरप्रेटेशन आफ द वेद' से उद्धृत, ऋग्वेद-अनुवाद, भाग १, भूमिका, पृ० १२।

On the auspicious occasion of 75th Birthday of

DHARM SAMRAT SWAMI KARPATRIJI MAHARAJ

Best Compliments From :

NELLIMARLA JUTE MILLS CO. LIMITED

3A, Shakespeare Sarani,
CALCUTTA-16

Telegrams :
CHIMARLA, CALCUTTA

Telephones ;
43-1842/5 (**Four lines**)

MANUFACTURERS :

QualityB. Twill Bags, Cement Bags, Jute Twine
AND
Cotton Bagging

Mills at :
NELLIMARLA
Dist. Visakhapatnam
(Andhra Pradesh)

धारा को प्रचलित करने का श्रेय प्रो० एच० एच० विल्सन को है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों ने जब मैंक्समूलर को ऋग्वेद के सम्पादन के लिये मनोनीत किया उसी समय विल्सन के मन में भी यह बात आयी कि सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता का एक अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित होना चाहिए। भारत छोड़ने से पूर्व ही वह उस कार्य को शुरू कर चुका था और इसमें काफी प्रगति भी कर ली थी। विल्सन से पूर्व स्टीवेन्सन रोएर, रोजेन तथा लैंगलुइस के अनुवाद ऋग्वेद के कुछ अंशों पर प्रकाशित हो चुके थे लेकिन वे पूर्ण रूप से विल्सन की दृष्टि में सन्तोषजनक नहीं थे क्योंकि वे किसी प्रकाशित प्रमाणित संस्करण पर आधारित नहीं थे। विल्सन की दृष्टि में अनुवाद का वास्तविक महत्व इस बात में नहीं है कि साहित्यिक रचना की दृष्टि से उसमें बहुत से गुण हैं, बल्कि इस बात में है कि वह प्राचीन हिन्दू-धर्म की उपासना पद्धति तथा सामाजिक संगठनों को कितना और किस रूप में प्रस्तुत कर रहा है। और जब तक उसकी भाषा को सुरक्षित न रखा जाय और उसको बुद्धिगम्य न किया जाय प्राचीन भारतीय धर्म के विषय में तथ्यों तथा विचारों का गलत प्रभाव हो सकता है।[1]

विल्सन का अनुवाद इस दृष्टि से प्रामाणिक माना जा सकता है क्योंकि उसके सामने सायणभाष्य सहित ऋग्वेद का मैंक्समूलर द्वारा सम्पादित प्रामाणिक संस्करण था। मूल ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद करने में विल्सन का यह प्रयास रहा कि मूल भाव को, जहाँ तक वह बुद्धिगम्य हो सके, अधिक से अधिक सुरक्षित रखा जाय। इस लक्ष्य से उसने सायण भाष्य को ही अपने अनुवाद का आधार बनाया। विल्सन का कथन है कि प्रत्येक मन्त्र पर सायण भाष्य तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में सायण मन्त्र के सामान्य अर्थ को या व्याख्या को सामान्य प्रचलित संस्कृत में प्रस्तुत करता है; यदि मन्त्र में कोई वाक्य साकांक्ष है तो वह उसकी पूर्ति करता है; तथा यदि मन्त्र में किसी आख्यान का संकेत मिलता है तो उसे वह विस्तार में देता है। व्याख्या का दूसरा भाग मन्त्रगत शब्दों के व्याकरण सम्बन्धी वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालता है जो पाणिनि व्याकरण पर आधारित है जिसका पता पाणिनि के सूत्रों को बार-बार उद्धृत करने से चलता है। व्याख्या का तीसरा भाग मन्त्रगत शब्दों के स्वर-वैशिष्ट्य का उल्लेख करता है और इसके लिए भी पाणिनीय सूत्रों को बार-बार उद्धृत किया गया है। मन्त्रव्याख्या के अन्तिम दो भाग पूर्णरूप से टेक्नीकल हैं जिसका अनुवाद नहीं किया जा सकता। इसलिए प्रथम भाग ही अनुवाद का आधार है। इन व्याख्याभागों के अतिरिक्त सायण प्रत्येक सूक्त के प्रारम्भ में एक छोटी सी भूमिका या प्रस्तावना देता है जिसमें ऋषि, देवता तथा छन्द का उल्लेख करता है और इसके लिये अनुक्रमणियों को उद्धृत करता है। प्रस्तावना में ही वह प्राय: उस सूक्त अथवा सूक्तगत मन्त्रों का याज्ञिक विनियोग भी बताता है। विनियोग की प्रामाणिकता के लिये आश्व० श्रौ० सू० आदि ग्रन्थों को भी उद्धृत किया गया है। विल्सन ने स्पष्ट रूप से इस बात को स्वीकार किया है कि उसने विनियोग पद्धति का उपयोग अपने अनुवाद में नहीं किया क्योंकि याज्ञिक कर्म का यहाँ केवल नाम से ही उल्लेख किया गया है और उनका पूर्ण विवेचन बहुत बड़े परिश्रम के बिना सम्भव नहीं हो सकता था। इसलिए नहीं कि विषय महत्वपूर्ण नहीं था अथवा उसकी ओर उसकी रुचि नहीं थी।[1] विल्सन ने अनुवाद करते समय वेद के विभागों—संहिता, मण्डल, अष्टक, अध्याय, अनुवाक और वर्ग का नाम उसी रूप में दिया है जिस रूप में सायण ने दिया था। इनके समकक्ष कोई अंग्रेजी का शब्द नहीं दिया। ऐसा करने का कारण यह था कि यद्यपि उनका अनुवाद क्रमश: Collection Circle, Book, Lecture, Chapter, Hymn तथा Section किया जा सकता था जैसा कि कुछ लोगों द्वारा किया भी गया है किन्तु ये मूल शब्द के भाव को किसी भी प्रकार व्यक्त नहीं कर पाते। इसीलिये इनके प्रयोग से गलत प्रभाव पड़ सकता था। इसीलिये विल्सन ने उन्हें व्यक्तिवाचक नाम के रूप में लिया है और रोमन में लिखा है। विल्सन का यह कहना है कि वह नहीं समझता कि इससे कोई बहुत असुविधा होगी, बल्कि इसके विपरीत इन नामों से मूल भाव को समझना आसान है। सायण के अनुसार ही विल्सन ने प्रत्येक मन्त्र के छन्द का उल्लेख किया है यह दिखाने के लिये कि इनके कितने प्रकार प्रयुक्त हुए हैं।

प्रो० विल्सन ने उन विद्वानों के प्रश्नों का उत्तर दिया जो प्रामाणिकता की दृष्टि से सायण भाष्य पर आशंका करते थे। उसने स्पष्ट रूप से इस तथ्य को उद्घोषित किया कि ऋग्वेद के विषय में सायण का ज्ञान योरोपीयन विद्वानों से कहीं अधिक था और उसके पास अपने अध्ययन द्वारा अथवा अपने सहायकों के द्वारा उन सभी व्याख्या पद्धतियों का ज्ञान था जो बहुत दिनों से परम्परागत चली आ रही थी।[2] अपने ऋग्वेद अनुवाद के दूसरे भाग की भूमिका में विल्सन ने भारतीय भाष्यकारों के वैदिक व्याकरण विषयक ज्ञान की प्रामाणिकता पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया कि वैदिक पाठ को विशेषकर व्याकरण सम्बन्धी शब्दरचना को लेकर अथवा ऐसे शब्दों के प्रयोग को लेकर जो अन्यत्र किसी ग्रन्थ में प्रयुक्त नहीं मिलते, सही रूप से समझने के लिए जो बाधाएँ या कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं, उनका समाधान भारतीय भाष्यकारों की सहायता से ही हो सकता है। ऐसे शब्द रूपों के विषय में संदेह किया जा सकता है किन्तु उसी के आधार पर उनको अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। वैदिक भाषा को समझने में वास्तविक कठिनाई जो उत्पन्न होती है वह किसी पद के स्वेच्छानुसार वचन या विभक्ति के व्यत्यय अथवा किसी क्रिया के पुरुष और काल के व्यत्यय के कारण आती है जिसका संकेत पाणिनि ने अपने व्याकरण में किया है और जिसके उदाहरण बहुसंख्या में मिलते हैं। उन असामान्य शब्दों के विषय में जो वेद में नि:सन्देह बहुसंख्या में प्रयुक्त हुए हैं, यह सम्भव है कि उनका भाष्यकारों द्वारा किया गया व्याख्यान सही अथवा असंदिग्ध न हों, या जिसके विषय में चुनौती दी जा सकती है, अथवा जो परस्पर विरोधी हैं, किन्तु उनके विषय में उन भाष्यकारों से अतिरिक्त किन प्रामाणिक साधनों से संतोषप्रद अर्थ की जानकारी प्राप्त की जा सकती है? ऐसी कल्पना की जाती है कि इस प्रकार के संदिग्ध शब्द जिन मन्त्रों में आते हैं, उन सबका ध्यानपूर्वक संकलन किया जाय तो उसके एक निश्चित और

---

[1] विल्सन, 'ऋग्वेद-अनुवाद', भाग १, भूमिका पृ० २।

[1] वही, पृ० ४९–५०।

[2] वही।

सनातनधर्म के संरक्षण में अग्रगण्य

पूज्यपाद गुरुदेव स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

की

७५वीं वर्षगाँठ पर

कोटिशः प्रणाम

—रामप्रसाद सर्राफ

१४५ बी., काटन स्ट्रीट, कलकत्ता–७

With Best Compliments From :

IMECO PRIVATE LIMITED

COMPRESSED AIR ENGINEERS

The Leading Manufacturer and Supplier of Spares for all models of
Air/Gas/Refrigeration Compressors

26, R. N. Mukherjee Road,

CALCUTTA-700 001

Phone : 23-1888. 0242, 0353

Telex : 021-3407

Gram : IMECOMPAIR

विवाद रहित व्याख्या पर पहुँचा जा सकता है। किन्तु इससे यह मानना होगा कि उनका प्रयोग मूल लेखक के द्वारा सर्वत्र निश्चित एवं समान रूप से किया गया है। किन्तु यह निष्कर्ष यदि लेखक एक हो तो भी मान्य नहीं हो सकता और यदि लेखक कई हों, जैसा कि सूक्तों के साथ पाया जाता है, तब तो यह बिल्कुल असंभव ही होगा। इसलिये इस प्रकार का स्थल संकलन सर्वत्र सभी संदेहों को दूर कर सकेगा, यद्यपि कई स्थलों पर यह ऐसा कर भी सकता है, ऐसा मानना असंभव है। सबसे बड़ी बात यह है कि अभी तक इस प्रकार का कोई कोष बना ही नहीं। और जब तक यह तैयार नहीं हो जाता तब तक हमें भारतीय वेदव्याख्याकारों के अर्थों पर ही संतुष्ट होना पड़ेगा जिन्हें अपनी पूर्ववर्ती सभी व्याख्याओं का स्वयं ज्ञान था, अथवा जो उनकी समकालीन थी अथवा वेद के परम्परागत विद्वानों द्वारा सुरक्षित परम्परागत व्याख्या पद्धति की सहायता को उन्होंने प्राप्त किया था।[1]

वेद व्याख्या के लिये तुलनात्मक पद्धति कितनी अशक्त है इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए विल्सन ने यह मत व्यक्त किया कि इस बात को स्वीकार करते हुए भी एक शब्द का सम्पूर्ण सन्दर्भों को एकत्रित करके तुलनात्मक व्याख्या करने से उसके निश्चित अर्थ की ओर पहुँचा जा सकता है, किन्तु कुछ एकल शब्दों के व्याख्यान में इस दृष्टि से भी कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं हो सकी है और न इससे कोई मदद ही मिल पाती है। संस्कृत के विद्वान् इस प्रकार की मदद से अथवा उसके बिना भी यथास्थान आये शब्दों का तथा दूसरों के साथ तुलना करके भी उसका अर्थ या भाव आसानी से समझ जाते हैं किन्तु उसको वे उतनी ही आसानी से दूसरों के समझने लायक नहीं बना सकते और अगर उससे मिलता जुलता शब्द प्रचलित भी होता है तो वह मूल भाव को पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर पाता। उदाहरण के लिए कवि, विप्र, विद्वत्, मेधावी, चिकित्वस आदि बहुत से शब्द हैं जिनका अर्थ Wise (प्रज्ञावान्), Intelligent (बुद्धिमान) तथा (Knowing) (ज्ञानवान) किया जाता है किन्तु इन विशेषणों का प्रयोग उस रूप में नहीं किया जा सकता जिस रूप में मूल में प्रयुक्त हैं। ये शब्द विशेषण होते हुए भी प्रचुरता से बिना विशेष्य के प्रयुक्त हुये हैं। विशेष्य के साथ तथा विशेष्य के बिना दोनों प्रकार से इनका प्रयोग मिलता है। इस प्रकार जो विशेष्य के बिना प्रयुक्त हुए हैं वे नाम पद बन गये हैं। इससे भी बढ़कर कठिन कार्य समस्त पदों का समकक्ष शब्द लाना है। विशेषकर इन समस्त पदों का जिनके विषय में कभी-कभी सन्देह हो जाता है कि इनको क्या माना जाय—विशेषण, व्यक्तिवाचक, संज्ञापद, विशेषकर उन परिस्थितियों में जबकि भाष्यकार के मत में उनके कई प्रकार के अर्थ किये जाते हैं। उदाहरण के लिये 'शतक्रतु' शब्द इन्द्र का एक अभिधान है जिसके अर्थ होते हैं—'वह जिसके लिये कई यज्ञ सम्पादित या प्रदान किये जाते हैं, वह जो अनेक यज्ञकर्मों का प्रेरक है,' अथवा 'वह जिसके द्वारा अनेक पराक्रम के कार्य किये गये हैं'। इसी प्रकार 'जातवेदस्' अग्नि का एक अभिधान है जो कभी-कभी विशेष्य के रूप में भी प्रयुक्त होता है। भाष्यकारों के अनुसार 'जातवेदस्' का अर्थ है 'वह जिसको जन्म से ही ज्ञान हो', 'वह जो सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों को जानता है,' 'वह जो सम्पूर्ण पदार्थों के साथ एक रूप में जाना जाता है' अथवा 'वह जिसके द्वारा सभी प्रकार के धन उत्पन्न होते हैं'। ये ऐसे विचित्र शब्द हैं जिनका अनुवाद करना कठिन होता है, इसलिये नहीं कि इनका भाव समझ में नहीं आता बल्कि इसलिये कि जब तक ये एक व्यक्तिवाचक नाम के रूप में ज्यों के त्यों प्रयुक्त न हों उनका केवल आंशिक व्याख्यान ही हो सकता है, विशेषकर अंग्रेजी तथा फ्रेंच भाषा में जहाँ समस्तपद होता ही नहीं।[1]

विल्सन का कहना है कि अनुवाद के लिये यद्यपि यह एक बहुत बड़ी कठिनाई है फिर भी एक अनुवादक अपनी बुद्धि, भाषा के ऊपर अधिकार, तथा जिसका अनुवाद कर रहा है उसकी भी भाषा का पूर्ण ज्ञान, आदि के द्वारा इस कठिनाई के ऊपर विजय प्राप्त कर सकता है। किन्तु ऐसा हमेशा संभव नहीं है कि इस प्रकार के सभी शब्दों का निरपवाद तथा सरल एवं सुबोध समकक्ष शब्द दिया जा सके। ऐसी स्थिति में उनका अनुवाद इस प्रकार से किया जा सकता है जो अपेक्षाकृत अधिक यथार्थता और सच्चाई के साथ पाठ के मूल भाव को प्रस्तुत कर सके। सबसे अधिक कठिनाई एक और है जिसके ऊपर अनुमान के अलावा अन्य प्रकार से विजय पाना कठिन है। वह कठिनाई मन्त्रगत शब्द की कठिनता तथा अस्पष्टता के कारण नहीं है बल्कि मूल में उस भाव के वाचक शब्द के अभाव के कारण है। मन्त्र में शब्द या वाक्यांश लोप के उदाहरण बहुत मिलते हैं जिनकी पूर्ति व्याख्या या अनुमान के द्वारा की जाती है। मन्त्र में शब्द या वाक्यांश नहीं है किन्तु उस साकांक्ष मन्त्रगत भाव को पूर्ण कराने के लिये शब्द या वाक्यांश की कल्पना करनी पड़ती है। और जब तक इनकी कल्पना न कर ली जाये तबतक प्रस्तुत शब्द या वाक्यांश का अर्थ भी स्पष्ट नहीं हो पाता। वेदों में ऐसा देखा जाता है कि मन्त्र में विशेष्य पद का लोप है और विशेषण विशेष्य तथा विशेषण दोनों का कार्य करता है। उदाहरण के लिये ऋ० वे० के द्वितीय अष्टक के प्रथम मन्त्र में 'रघुमन्यवः' शब्द आया है जिसका अर्थ है अल्प क्रोध वाले। किन्तु वे कौन हैं जिनके लिये यह अभिधान का प्रयोग किया गया है, इसका उल्लेख मन्त्र में नहीं हुआ है। भाष्यकार सायण का कथन है कि यह शब्द 'ऋत्विजों' के लिये प्रयुक्त हुआ है जो नम्र स्वभाव के हैं, क्रोधी नहीं। विल्सन का कहना है कि इस प्रकार के विशेष्य की कल्पना के लिये यदि कोई परम्परा नहीं है, यह मात्र कल्पना ही है तो भी वह एक साधारण काम नहीं है। यह बात ठीक है कि इस प्रकार के शब्दांशों या वाक्यांशों के अर्थ-प्रकाशन के लिये अनुमान के लिए हमेशा बहुत बड़ी बुद्धिमत्ता की ही आवश्यकता नहीं है, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों की इस प्रकार की व्याख्यापद्धति जिनके सोचने की सामान्य प्रक्रिया भारतीय विचारधारा से बिल्कुल भिन्न प्रकार की है, भारतीय भाष्यकारों की व्याख्या पद्धति के समकक्ष होने का दावा नहीं कर सकती। यह अधिक प्रसन्न हो सकती है, अधिक विवेकपूर्ण हो सकती है, किन्तु यह वह नहीं हो सकती जिसको अपने विषय में अप्रतिहत प्रतिभा वाले भारतीय चिन्तकों ने शताब्दियों से स्वीकार किया है।[2] ऐसे सन्दर्भों

---

१. विल्सन, ऋग्वेद अनुवाद, भाग २, भूमिका, पृ० १९-२०।

१. वही।

२. वही, पृ० २२-२३।

धर्मसंरक्षक यतिचक्रचूड़ामणि
श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज के
७५वीं वर्षगाँठ पर श्रीचरणों में सादर नमन

✤

श्री भाग्यलक्ष्मी साड़ी इम्पोरियम

५६, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता – ७०० ००७

फोन : ३३३१०१

सनातन धर्म सम्राट्
परम पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज
के ७५वें जन्म दिवस पर कोटिशः नमन

आइये !
इस ताजगी का मजा लीजिए !
जो मुँह में जाते ही बोलती है !

सामने तपाया
ताजा
घी

योजना के आयोजन कर्ता—

नारायणदास नरसिंहदास एण्ड सन्स
२/१ सी, चैतन्य सेठ स्ट्रीट, कलकत्ता-७
(कलाकार स्ट्रीट बिजली घर के सामने)
फोन : दुकान ३४-९२८५

के व्याख्यान में पाश्चात्य व्याख्या कितनी कमजोर तथा अपूर्ण रही है इस तथ्य का प्रो० विल्सन ने कई उदाहरण देकर उल्लेख किया है। ऋ० वे० २.३५.९ में 'अपांनपात्' की महिमा का वर्णन करने वाली के लिये 'हिरण्यवर्णाः तथा 'यह्वी' पद का प्रयोग किया गया है। विल्सन का कहना है कि यहाँ एक पाश्चात्य वेद व्याख्याकार यह नहीं बता सकता कि यहाँ इन विशेषणों का क्या अभिप्राय है और किसके लिये प्रयुक्त हुये हैं। यहाँ केवल मूल लेखक ही विना संशय के विश्वास के साथ बता सकता है कि इनका प्रयोग 'नदी' के लिये किया गया है और यही इसका परम्परागत अर्थ है। सायण स्पष्ट रूप से बताता है—'यह्वीः यह्वयः महत्यः हिरण्यवर्णाः नदी नामैतत्। हिरण्यवन्निर्मलरूपा नद्यः।' मन्त्रों में कई जगह क्रिया के कर्म का और कर्ता का प्रायः लोप दिखायी पड़ता है। उदाहरण के लिये 'शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नः' (ऋ०वे० १.१२२.३) में इन्द्र और पर्वत की सामूहिक रूप से स्तुति की गयी है कि वे 'हमारी…(?) तीक्ष्ण करें' विल्सन का कथन है कि यहाँ कर्म रूप पद की आकांक्षा है और इस आकांक्षा की पूर्ति एक पाश्चात्य विद्वान् भाला या तलवार की कल्पना करके कर सकता है क्योंकि उन्हें तीक्ष्ण किया जाता है। किन्तु इसके लिये हम सायण के अत्यन्त आभारी हैं जिसने अत्यन्त उपयुक्त कर्म 'बुद्धि' की कल्पना कर रिक्त पद की पूर्ति की है **'तौ युवं युवां नः अस्मात् अस्मबुद्धि वा शिशीतं तीक्ष्णीकुरुतं शोधयतमित्यर्थः** (सायण)। इसी प्रकार कई स्थलों पर क्रिया पद का लोप दिखाई पड़ता है जिसकी पूर्ति सायण ने की है। विल्सन का कहना है कि वेद व्याख्या में एक कठिनाई वहाँ भी सामने आती है जहाँ किसी पद के द्वारा उस सम्पूर्ण वस्तु का बोध होने लगता है जिसके लिये वह वस्तु बनी है। उदाहरण के लिए एक मन्त्र है—**'तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमीवभिरीद्रिभिर्नरः** (ऋ०वे० २।३६।१)। इस मन्त्र में आहुति रूप में 'गौ' का तथा अवि (भेड़) द्वारा सोम को छान कर पवित्र करने का उल्लेख है। विल्सन का कथन है कि यहाँ एक पाश्चात्य विद्वान् गौ तथा अवि का अनुवाद करने में संशय में पड़ सकता है, किन्तु सायण इसका स्पष्ट उत्तर देता है कि यहाँ गौ का अर्थ गाय नहीं बल्कि गाय से उत्पन्न दूध, दही या घृत है—**'गाः गोविकाराणि दधि पयः प्रभृतीनि'** तथा 'अवि' का अर्थ भेड़ नहीं बल्कि भेड़ के बाल से बना छनना है जिससे सोम छाना जाता है—**'अविभिः अवेवल्लिमवैर्दशापवित्रैः'**। इसी प्रकार वेद मन्त्रों में आलंकारिक तथा प्रतीकात्मक शब्दों का भी प्रयोग होता है जिनका अनुवाद करना कठिन है किन्तु सायण ऐसे स्थलों पर हमारी मदद करता है। इस प्रकार विल्सन के अनुसार सायण भाष्य का वेद व्याख्या में बहुत बड़ा ऋण स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। विल्सन का कथन है कि मन्त्रों का पूर्ण अर्थ की जानकारी के लिये लुप्त शब्दों या वाक्यांशों की कल्पना अपरिहार्य है। गुरु द्वारा शिष्य को ये मन्त्र प्रदान किये गये और बाद में मौखिक परम्परा में चल पड़े। उस समय की परम्परा की जानकारी के बिना उन वाक्यांशों को पूर्ण करना अत्यन्त कठिन है। मूल लेखक के लिये अपेक्षित शब्दों या वाक्यांशों की पूर्ति आसान थी और उसे अपने श्रोताओं को भी जानकारी देना आसान था। उसने ऐसा किया भी होगा। किन्तु यास्क या सायण के समय तक पहुँचते पहुँचते पीढ़ी दर पीढ़ी द्वारा उसका व्याख्यान या अभिप्राय सुरक्षित रह सका होगा इसमें शंका की जा सकती है। किन्तु इन भाष्यकारों की जो व्याख्याएँ हैं वे निराधार नहीं हैं। उन्हें पूर्ववर्ती प्रचलित परम्पराओं द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त है। ये कई युगों तक इसी रूप में प्रचलित रही होंगी। विल्सन का कथन है कि अगर ऐसा न भी हो तो भी उनकी असंदिग्ध विद्वता, अपने देशवासियों की भावनाओं तथा विचारों के प्रति सहानुभूति जिनमें कि उन सूक्तों के मूल रचयिता तथा व्याख्याता भी सम्मिलित हैं; उनकी प्रामाणिकता में अपना एक वजन रखती है जिसका एक पाश्चात्य विद्वान् चाहे वह संस्कृत या वेद में कितना ही ज्ञान रखता हो, दावा नहीं कर सकता। विल्सन ने स्पष्ट रूप से इस बात को स्वीकार किया है कि वह सायण का बहुत बड़ा आभारी है। उसके विना वह ऋग्वेद के अनुवाद का प्रयास ही नहीं कर सकता था।[1]

सन् १८६० में जब विल्सन की मृत्यु हुई उस समय तक उसके ऋग्वेद अनुवाद के चतुर्थ भाग का केवल १४४ पृष्ठ तक ही छप पाया था। डा० बैलेन्टाइन (Ballantine) जो ईस्ट इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में विल्सन का उत्तराधिकारी था, ने काम को जारी रखा किन्तु उसका स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण कार्य में विशेष प्रगति नहीं हुई। १८६४ में उसकी मृत्यु के बाद प्रो० गोल्डस्टुकर ने उसका कार्य सँभाला। गोल्डस्टुकर विल्सन की ही परम्परा का था। उसका मत था कि भारतीय भाष्यकारों द्वारा उद्घाटित विस्तृत वेद विषयक जानकारी के बिना तथा कठिन वेदस्थलों की उनकी व्याख्या पद्धति के बिना या यों कहें कि उनकी विद्वता को माने बिना हम अभी भी प्राचीन भारतीय विचारधारा के बाहरी दरवाजे पर ही खड़े रहेंगे। उसने इस बात की खिल्ली उड़ाई कि एक पाश्चात्य विद्वान् वेद को सायण की अपेक्षा अधिक सही रूप में सच्चाई के साथ और बारीकी से समझ सकता है, अथवा वैदिक ऋषियों के विचारधारा के अधिक नजदीक जा सकता है जिनको उन्होंने अपने मन्त्रों में व्यक्त किया है।[2]

प्रो० गोल्डस्टुकर ने अन्य कार्य में व्यस्त होने के कारण विल्सन के अनुवाद को प्रकाशित करने का दायित्व प्रो०ई०बी० कावेल (E. B. Cowell) पर डाला जो भारत से लौटकर आया था। कावेल ने इस जिम्मेदारी को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया। उसके स्वीकार करने के दो मुख्य कारण थे। एक तो वैदिक साहित्य के अध्ययन में उसकी विशेष रुचि थी और दूसरी बात कि आक्सफोर्ड का पुराना शिष्य होने के नाते उसके मन में विल्सन के प्रति व्यक्तिगत श्रद्धाभाव था। उसे इस बात की प्रसन्नता थी कि प्रो० विल्सन के नाम के साथ उस ऋग्वेद अनुवादपर उसका भी नाम आयेगा। वह यह जानता था कि विल्सन का यह अन्तिम कार्य उसके चिन्तन पर कितना आरूढ़ था और उसको पूर्ण करने के लिये उसके हृदय में कितनी बेचैनी थी। कावेल ने आक्सफोर्ड में विल्सन को देखा था कि किस उत्साह से वाल्यूम के बाद वाल्यूम वह लिखता जाता और प्रकाशित करता जाता था। कावेल ने यह अपना कर्त्तव्य समझा कि विल्सन की मृत्यु के बाद भी वह उसके अनुवाद को प्रकाशित करे। कावेल के हृदय में

---

[1] १. वही, पृ० २४–२६।

[2] २. ग्रिफिथ द्वारा उद्धृत 'ऋग्वेद-अनुवाद', भाग १, भूमिका, पृ० १३।

With Best Compliments From :

Bowreah Cotton Mills Co. Ltd.

Registered Office
21, Strand Road, CALCUTTA - 700 001 (INDIA)

Cable : BOWREAH (CALCUTTA)
Telex : 021-7749 (FORT)

Phone : 22-9601
22-4696

✻ MILLS ✻

BAURIA-DIST. HOWRAH
WEST BENGAL

India's First Cotton Mills Now Offers :

A-WIDE AND WONDERFUL RANGE OF PLANS & PRINTED SHIRTINGS, POPLINS, CAMBRICS, SAREES, AND DOBBY IN SYNTHETIC BLENDS

Manufacturers & Exporters of :

COTTON DRESS MATERIALS, CASEMENT CLOTH ROTARY PRINTS ETC. IN WASH'N WEAR FINISH

Largest Suppliers of :

SIZED BEAMS TO THE POWERLOOM INDUSTRY
AND
MANUFACTURERS OF YARN IN HANKS & CONES BOTH FROM COTTON AND SYNTHETIC BLENDS.

विल्सन की भाँति भारतीय भाष्यकारों के प्रति आस्था थी। विल्सन के भाष्य के प्रति उसके झुकाव का एक कारण यह भी था कि वह भारतीय परम्परा पर आधारित था। इस कारण उसकी दृष्टि में विल्सन का अनुवाद एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उसका कहना था कि इसमें संदेह नहीं कि ज्यों-ज्यों वैदिक अध्ययन में प्रगति होती जायगी और अधिक ग्रन्थों का प्रकाशन तथा अध्ययन होगा प्राचीन विश्व की इन कृतियों के ऊपर अधिक प्रकाश पड़ेगा तथा धीरे-धीरे हम उनके मूल आन्तरिक अर्थ को समझने में मध्यकालीन हिन्दू भाष्यकारों की अपेक्षा अधिक समर्थ होते जाएँगे जैसा कि आज होमर को हम वैजेन्टाइन के भाष्यकारों की अपेक्षा अधिक बारीकी से समझते हैं। किन्तु विल्सन का वर्तमान अनुवाद सर्वत्र अपना एक ऐतिहासिक मूल्य रखेगा क्योंकि वह भारतीय भाष्य के ऊपर आधारित है और इस प्रकार वह उन सबका प्रतिनिधित्व करता है जिसे हिन्दुओं ने एक सुदीर्घ वैदिक परम्परा में सुरक्षित रखा है। सायण का वेद के क्षेत्र में वही स्थान है जो ईयुस्टैथियस का होमर के काव्य में है। प्रो० विल्सन का अनुवाद अंग्रेजी जानने वालों को यह जानने योग्य बनाता है कि हिन्दू वेद का क्या अर्थ समझते थे। भारतीय भाष्यकारों की आलोचना कर देना आसान है किन्तु उनसे आगे बढ़ना आसान काम नहीं। और जब तक हमारे पास तुलना और अध्ययन के लिये अधिक सामग्री नहीं मिल पाती वेदों के ऊपर शिथिल अनुमान या कल्पनाएँ जो प्रायः पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की जाती है, वे केवल बुद्धि का व्यायाम मात्र हैं जो भाषा विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में सही व्याख्यान की प्रगति में एक बहुत बड़ी बाधा ही उत्पन्न करती हैं[1]। प्रो० कावेल भारतीय परम्परा का इतना अधिक समर्थक था कि उसे यदि विल्सन भी अपने अनुवाद में भारतीय भाष्यकारों से दूर नजर आया तो अनुवाद को तो ज्यों का त्यों रहने दिया किन्तु टिप्पण में इस बात का स्पष्ट रूप से संकेत कर दिया। इस दृष्टि से कि ऋग्वेद को हिन्दू जैसा समझते हैं उसे वैसा ही रहने दिया जाय। प्रो० कावेल भारतीय परम्परा को वेदाध्ययन में जहाँ सहायक मानता है वहाँ वह उनसे आगे भी बढ़ना चाहता है और इसीलिए वह पाश्चात्य विद्वानों की उपलब्धियों की भी उपेक्षा नहीं करता। उसने लिखा कि इस अनुवाद का मूल उद्देश्य सायण द्वारा दिये गये ऋग्वेद का व्याख्यान प्रस्तुत करना है। इसमें वर्तमान विद्वानों के मतों को उद्धृत नहीं किया गया है। ठीक है यह मत अपने आप में एक ऐतिहासिक मूल्य रखता है, किन्तु इन सूक्तों के वास्तविक कार्य की जानकारी के लिये बहुत अधिक और गहरे अध्ययन की आवश्यकता है। सायण का भाष्य अपने महत्व को हमेशा कायम रखेगा, यहाँ तक कि उनकी गलतियाँ भी रुचिकर हैं। किन्तु उसकी व्याख्या एक क्षण के लिए भी विद्वता और उच्चाध्ययन की प्रगति में बाधक नहीं बननी चाहिये। हम उसकी किसी भी मदद के लिए आभारी तथा धन्यवादी हैं किन्तु हमें आधुनिक विद्वानों का विशेषकर जर्मनी के विद्वानों का हमारे ऊपर जो ऋण है उसे नहीं भुलाना चाहिये। 'सेण्ट पीटर्सवर्ग डिक्सनरी' जिसका छठा और सातवाँ भाग विल्सन के ऋग्वेद अनुवाद के चतुर्थ खण्ड के प्रकाशित होने के बाद का छपा है, वह वास्तव में एक सफल सर्वजयी विद्वता का मानदण्ड है और उसने ऋग्वेद के व्याख्यान के क्षेत्र में एक नये युग का निर्माण किया है।[1]

प्रो० कावेल ने विल्सन के ऋग्वेद-अनुवाद के चतुर्थ भाग को प्रकाशित करने के बाद जब पंचम भाग को छपाना शुरू किया तब उसे पता चला कि मूल पाण्डुलिपि में अष्टम मण्डल के चौवालिसवें सूक्त के मध्य में अनुवाद समाप्त हो गया है, दशम मण्डल का अधूरा अनुवाद है और नवम मण्डल का तो केवल एक नोट ही था। कावेल ने अष्टम मण्डल का स्वतन्त्र रूप से अनुवाद किया और वह प्रकाशित भी हुआ। किन्तु बाद में जब वह कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में संस्कृत का प्रोफेसर हो गया। उसके लिये मुश्किल हो गया कि वह उस कार्य को चालू रखे। विशेषकर इसलिए भी कि नवम मण्डल का विल्सन का अनुवाद बहुत ही अपूर्ण रूप में था और प्रेस में देने से पूर्व उसमें बहुत बड़ा संशोधन करने की आवश्यकता थी। इस बीच एक बहुत बड़ा समय व्यतीत हो गया। मेसर्स ट्रूबनर एण्ड को० को उसे पूर्ण करने की उत्कट इच्छा हुई थी। अन्त में डब्ल्यू० एफ० वेब्स्टर जो कैम्ब्रिज का ही स्नातक तथा प्रो० कावेल का मित्र एवं शिष्य भी था, ने इस कार्य को अपने जिम्मे लिया और उसको पूर्ण किया। उसने पंचम भाग का सम्पादन जारी रखा जो १८८८ में प्रकाशित हुआ। वेब्स्टर ने बहुत सावधानी से प्रो० विल्सन के नवम मण्डल के अनुवाद को संशोधित किया। उसने विल्सन के अनुवाद को कुछ स्थलों को छोड़कर जहाँ विल्सन सायण भाष्य का पूर्णतः अनुसरण नहीं कर सका, बिना परिवर्तित किये ही जैसा था वैसा स्वीकार किया। अब तक विल्सन का ऋग्वेद का अनुवाद कार्य समाप्त किये ३० वर्ष व्यतीत हो चुके थे। इन ३० वर्षों के वेदाध्ययन के परिणामों ने विल्सन के अनुवाद के महत्व को घटा दिया है ऐसा लोग सोचने लग गये थे और ऐसा सोचना स्वाभाविक भी था। वेब्स्टर ने इस आलोचना का सामना करने के लिए जर्मन विद्वानों के वेदाध्ययन विषयक निष्कर्षों को नोट (कोष्ठकों) में दिया। उसने विशेष रूप से लुडविग तथा ग्रासमान के मतों को उद्धृत किया। किन्तु जर्मन के विद्वानों के वेदविषयक शोध परिणामों को स्वीकार करते हुए भी उसने यह मत व्यक्त किया कि उसके लिये कृतघ्नता की बात न होगी। यदि वह यह कहे कि आज इस बात का खतरा है कि कहीं आधुनिक विद्वान् प्राचीन भारतीय भाष्यकारों के परिणामों को अपना न कहने लगे और आज ऐसा देखने में भी आया है। एक जगह पर एक व्याख्या के लिये लुडविग को प्रामाणिक माना गया है जबकि वह व्याख्या सायण के भाष्य में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

वेब्स्टर ने इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि विल्सन के अनुवाद को संशोधित करते समय उसने आधुनिक विद्वानों से बहुत कम सहायता ली है। उसके मत में विल्सन के अनुवाद का महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य यही है कि चाहे वह अच्छा हो या बुरा उसने पूर्ण रूप से सायण का अनुसरण किया है और उसने स्वयं भी संशोधन कार्य में उनको परिवर्तित करने की बात तो दूर रही उसको और सायण के अनुसार बनाया है।[2]

वेदव्याख्या में सायण भाष्य की महत्ता को स्वीकार करने वाले

---

१. प्रो० ई० बी० कावेल, विल्सन का ऋग्वेद-अनुवाद, भाग ५,पृ०५-६।

१. ई० बी० कावेल, 'विल्सन का ऋग्वेद अनुवाद', भाग ६, पृ० ६-७।

२. वेब्स्टर, 'विल्सन का ऋग्वेद अनुवाद', भाग ७, भूमिका, पृ० ५-६।

सीय राममय सब जग जानी।
करहुँ प्रणाम जोरी जुग पानी॥

•

धर्मसंरक्षक श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज के
श्रीचरणों में कोटिशः नमन

—रतनलाल सुरेका

मानस मन्दिर

वाराणसी

फोन–63820

पाश्चात्य वेदव्याख्याकारों में ग्रिफिथ, पिशेल तथा गेल्डनर का भी नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके समय तक वेदव्याख्या के क्षेत्र में काफी प्रगति हो चुकी थी। वेबर, ओल्डेनवर्ग आदि के वेदविषयक अध्ययनों एवं शोधनिष्कर्षों ने वेदाध्ययन के क्षेत्र में काफी प्रामाणिकता एवं ख्याति प्राप्त कर ली थी। इसलिए ग्रिफिथ, पिशेल तथा गेल्डनर ने इनके निष्कर्षों का भी अपने ऋग्वेद अनुवाद में उपयोग किया। किन्तु सायण तथा भारतीय भाष्यकारों के प्रति उसकी अटूट श्रद्धा थी। ग्रिफिथ विलसन का ही शिष्य था इसलिये सायण भाष्य के प्रति उसका झुकाव स्वाभाविक था। वह सायण को अपने ऋग्वेद ज्ञान का प्रथम गुरु तथा पथप्रदर्शक मानता था। उसका मत था कि वेदव्याख्यान के लिये योरोपीय विद्वान् अपरिहार्य नहीं हैं। उन्हें यह नहीं समझना चाहिये कि उनके बिना वेद समझा ही नहीं जा सकता। वे यह भी दावा नहीं कर सकते कि वेद विषयक उनका ज्ञान पूर्ण है अथवा एतद्विषयक उनका निष्कर्ष अन्तिम है[1]। ग्रिफिथ ने बनारस में ही रहकर चारों वेदों का अनुवाद किया और उनमें सायण की विशेष सहायता ली। उसका ऋग्वेद अनुवाद १८८९-९२ में चार भागों में प्रकाशित हुआ। गेल्डनर का ऋग्वेद अनुवाद जर्मन भाषा में १९२३ में गाटीन्गेन से प्रकाशित हुआ। पिशेल के साथ वह इस विचार धारा का था कि ऋग्वेद पूर्णरूप से एक भारतीय रचना है इसलिए उसका व्याख्यान पूर्णरूप से भारतीय परम्परा के अनुसार ही किया जाना चाहिए। उन्होंने गोल्डस्टुकर की ही तरह उस विचारधारा का मजाक उड़ाया कि एक योरोपीयन विद्वान् वेद को सायण से अच्छा और सही रूप से जान सकता है अथवा वेद के मूल भाव तक पहुँच सकता है जिसको वैदिक ऋषियों ने मन्त्रों में अभिव्यक्त किया है।

आज भी वेद के क्षेत्र में पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किये जा रहे हैं किन्तु आज वह कट्टरता नहीं जो रॉथ के समय में थी। वेदविषयक किसी भी प्रकार के अध्ययन के लिए आज भी सायण ही सहायक है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान, तुलनात्मक धर्म एवं दर्शन, तुलनात्मक पुराकथा आदि कोई भी ऐसा वेदाध्ययन का क्षेत्र नहीं जहाँ सायण की उपेक्षा की जा सके। आज एक बात अवश्य है कि पहले केवल सायण का ही भाष्य भारतीय परम्परागत भाष्यों का प्रतिनिधित्व करता था क्योंकि अन्य भाष्य उपलब्ध नहीं थे। किन्तु आज स्कन्द स्वामी, उद्गीथ, वेंकटमाधव आदि सायण से पूर्ववर्ती भाष्यकारों के भाष्य भी उपलब्ध हैं और प्रकाशित हैं जिनकी वेदव्याख्या में काफी सहायता ली जा रही है। लेकिन इससे किसी भी प्रकार सायण भाष्य की महत्ता एवं उपयोगिता में किञ्चदपि कमी नहीं आती। उसका स्थान आज भी वही है जो वेदाध्ययन शुरू होने के समय में था।

---

[1] ग्रिफिथ, 'ऋग्वेद-अनुवाद', प्रथम भाग, भूमिका, पृ० १४।

परमश्रद्धेय श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वीं वर्षगाँठ पर

श्रीचरणों में सादर शतशत नमन

मेसर्स श्यामसुन्दर डालमिया

७, ल्योन्स रेन्ज

कलकत्ता—७००००१

सनातन संस्कृति के संदेश वाहक

परमपूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के ७५वें जन्मदिवस पर दीर्घायु कामनासहित

श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम

॥ श्री हरिः ॥

—एच. डी. दवे

(वस्त्र विक्रेता)

पोस्ट बाक्स नं० ६४

१०, बिस्टुपुर बाजार, जमशेदपुर

फोन—23336

ग्राम— 'FREE INDIA'

अनन्ता वै वेदाः

• श्री मुरलीधर पाण्डेय •

भारत के ऋषि, मुनि एवं मनीषियों के हृदय में वेद के प्रति अपार एवं अनन्त श्रद्धा है। वेद के प्रति सर्वोत्तम श्रद्धा व्यक्त करने के लिए उन लोगों के पास उत्तम से उत्तम जो भी शब्द हो सकते थे, उनका प्रयोग किया गया। उन्होंने कहा है—वेद नित्य है, अपौरुषेय है और स्वतः प्रमाण है। वेद परमात्मा का निःश्वास है। उन्होंने कहा है कि (वेद शब्देभ्यः एवादौ पृथक् संख्याश्च निर्ममे (मनुस्मृति) सर्ववेदात् प्रसिद्ध्यति इत्यादि। इस वेद की शब्द राशि एवं उच्चारण परम्परा की रक्षा के लिए जो कुछ भी संभव हो सकता था, उन सबों को किया गया। संक्षेप में कहा जाय तो आश्रम वर्ण व्यवस्था, षोडश संस्कार कुछ अपवादों को छोड़कर सम्पूर्ण संस्कृत-वाङ्मय इसी वेद की रक्षा में लगाये गये। इन आश्रमों और इन वर्णों को वेद रक्षा के लिए कार्य नियत किये गये। ब्रह्मचर्य आश्रम और ब्राह्मण तो विशेष रूप से इसके लिए अधिकृत किये गये। वेद का दूसरा नाम ही ब्रह्म है। इस ब्रह्म रूप वेद के रक्षार्थ आचर्यमाण व्रत के कारण ब्रह्मचर्य-आश्रम नाम पड़ा। इस वेद की रक्षा का भार और वर्णों पर भी था। पर वेद की रक्षा के लिए ब्राह्मण का विशेष दायित्व समझा जाता था। अपनी शाखा अथवा एक वेद तो ब्राह्मणमात्र को पढ़ना ही पड़ता था। इसके अतिरिक्त दूसरे तीसरे वेदों को पढ़ने से उसकी महत्ता बढ़ती थी। इसीलिए किसी ब्राह्मण की उपाधि एक वेद में नहीं मिलती है, किन्तु द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, त्रिपाठी और चतुष्पाठी ही मिलती है। वेदाध्ययन करने से ही पाठक तथा उपाध्याय आदि उपाधियाँ भी दी गयीं। ब्राह्मणों के इस दायित्व निभाने के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए श्री सम्पूर्णानन्दजी ने एक जगह लिखा है—वेदों की रक्षा करने के लिए ब्राह्मणों ने जैसा यत्न किया उसको हम भूल नहीं सकते। उनके ऋण से सभ्य जगत् मुक्त नहीं हो सकता।

इन ऋषि ब्राह्मणों ने वेद की रक्षा के लिए, किसी भी मन्त्र में एक वर्ण या एक अक्षर भी घट-बढ़ न जाय इसलिए कई विकृतियों का आविर्भाव किया—पद, क्रम, जटा, घन, माला, शिखा रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ आदि। जिससे किसी भी मन्त्र में एक भी वर्ण का न्यूनाधिक्य नहीं हो सकता। ऋषियों ने 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' को विधि माना। प्रत्येक वेदाधिकारी के लिए वेद का स्वाध्याय अनिवार्य माना गया।

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और छः दर्शन ये सभी वेद के अंग प्रत्यंग एवं सहायक हैं। इनके द्वारा ही वेदों की रक्षा और रहस्यों का बोध होता है। इन सभी का उद्देश्य वेद की रक्षा और व्याख्या करना है।

इस प्रकार ये सम्पूर्ण प्राचीन संस्कृत वाङ्मय किसी न किसी प्रकार वेद के शब्दार्थ की रक्षा में लगाये गये हैं। पतंजलि ने महाभाष्य में स्पष्ट ही कहा है कि वेद की रक्षा के लिए व्याकरण अवश्य पढ़ना चाहिए। इस अनादि काल प्रवाह में लाखों-लाखों वर्षों के अन्तराल में आज जो भी वेदांश प्राप्त हो रहा है वह इन्हीं उपर्युक्त प्रयासों का फल है।

आज जो भी कुछ वेद प्राप्त हो रहा है वह शास्त्रों में वर्णित वेदराशि का शतांश भाग भी नहीं है। पहले वेद समग्रतया एक ही था। पर कालान्तर में श्री वेद व्यासजी ने यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों को कार्य के अनुसार अथवा गद्य पद्य शैली के अनुसार ऋग्, यजुः, साम तथा अथर्व के भेद से चार वेदों के रूप में विभक्त किया। इसीलिए श्रीकृष्ण द्वैपायन का नाम वेदव्यास भी पड़ा—

> "वेदान्विव्यास यस्मात् स वेद व्यास इतीरितः।
> तपसाब्रह्मचर्येणव्यस्य वेदान् महामतिः।
> —(महाभारत १–२)।

वेद यज्ञ प्रधान होते हैं। यज्ञ का बहुत व्यापक अर्थ होता है। यज्ञ में मन्त्रों की प्रधानता है। मन्त्र शब्द मन्त्रि गुप्त परिभाषणे धातु से निष्पन्न होता है। इसका अर्थ होता है—गोपनीय अर्थों का प्रकाशक। जो मन्त्र छन्दः तथा चरणों से युक्त होते हैं उन्हें ऋक् या ऋचा कहते हैं। इन ऋचाओं के ज्ञान को ऋग्वेद कहते हैं। मन्त्रों के संग्रह का नाम संहिता है। जो उक्त ऋग्वेद का संग्रह करता है उसे ऋग्वेद संहिता कहा जाता है।

इसी प्रकार यजुः, यज्ञ और याग का मूल धातु यज् देवपूजा संगतिकरणदानेषु है। इसी धातु से ये तीनों शब्द निष्पन्न होते हैं। इसलिए यजुः का अर्थ पूजा होता है। यजुः का अर्थ गद्य भी कहा जाता है। यज्ञ सम्पादन कराने वाले मन्त्र अथवा गद्यमय मन्त्रों को यजुर्वेद कहते हैं और इनका संग्रह जहाँ किया गया है उसे यजुर्वेद संहिता कहते हैं। यजुर्वेद में अनेक यज्ञ क्रियाओं के मन्त्र और विधियाँ संगृहीत हैं। इस यजुर्वेद के दो भाग हैं कृष्ण और शुक्ल। कृष्ण-यजुर्वेद संहिता में गद्य और पद्य दोनों ही है। कृष्ण यजुर्वेद को तैत्तिरीय संहिता भी कहा जाता है और शुक्ल यजुर्वेद को वाजसनेय संहिता कहा जाता है। इस नामकरण के सम्बन्ध में विष्णु पुराण में एक कथा है जिसमें कहा है कि ऋषि वैशम्पायन से ऋषि याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद का अध्ययन किया था। ऋषि याज्ञवल्क्य बड़े मेधावी, प्रतिभाशाली एवं तपस्वी थे। उन्हें अपनी विद्या और तपस्या पर कुछ अहंकार हो गया था। जिससे वैशम्पायन जी ने कुपित होकर याज्ञवल्क्य से अपनी पढ़ाई हुई विद्या को लौटाने को कहा। याज्ञवल्क्य ने विद्या का वमन किया। वैशम्पायन के दूसरे शिष्यों ने तित्तिर बनकर उस वान्त विद्या को ग्रहण कर लिया। जिससे इसे तैत्तिरीय संहिता कहते हैं। पाणिनि के सूत्र के अनुसार तित्तिर ऋषि

परमपूज्य

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के

७५वें जन्म दिवस पर

सादर नमन

◆

बंशीधर कलानी एण्ड सन्स

अबोहर—पंजाब

Best Compliments From :

Gram : TRADERS

Phone Factory : 2875
Office : 2628
Resi. : 2160

Din Dayal Purushottam Lal

(Bankers, Cotton, Grain Merchants, Land-Lords, Factory Owners & Commission Agents)

Industrial Area, **SIRSA** (*Haryana*)

सनातन धर्म के महान् रक्षक

पूज्यपाद स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज

के

७५वें जन्म दिवस पर

श्रीचरणों में शतशत नमन

—सुभाष थिरानी

किशनलाल रामसरूप

नई मण्डी, सिरसा (हरियाणा)

फोन—निवास : 2779
कार्यालय : 2822

तार – 'BINOLAWALA'

पूज्यपाद स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के ७५वें वर्धापन दिवस पर

कोटि-कोटि प्रणाम

दौलत राम चानन राम

६६, नई मण्डी

सिरसा (हरियाणा)

फोन : 2563

से सम्वद्ध होने से इसे तैतरीय कहते हैं। आत्रेय शाखा की अनुक्रमणिका में भी ऐसी बात लिखी है।

सामवेद संहिता में साम का अर्थ होता है गायन करना अथवा प्रियवचन। इस प्रकार के मन्त्रों के संग्रह को सामवेद संहिता कहते हैं। विष्णु पुराण के अनुसार 'जैमिनि' ऋषि ने वेद व्यासजी से सामवेद को पढ़ा और दो भागों में विभक्त किया। कथा ऐसी है कि जैमिनिजी ने उन दो भागों में एक भाग अपने पुत्र सुमन्तु को पढ़ाया और द्वितीय अपने पौत्र सुकर्मा को पढ़ाया। सुकर्मा के शिष्य हिरण्यनाभ ने अपनी पठित संहिता को १५ भाग करके एक-एक शिष्य को एक-एक भाग पढ़ाया। इन सबों को उदीच्य साम कहते हैं और पौष्यंज ऋषि के कुछ शिष्यों ने हिरण्यनाभ से सामवेद के कुछ भाग पढ़े। जिनको प्राच्यसामग कहा जाता है। सामवेद संहिता को दो भागों में विभक्त किया है—

१. पूर्वार्चिक २. उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक को छन्दः छन्दसी तथा छन्दसिका भी कहते हैं। पूर्वार्चिक के चार भाग हैं—आग्नेय, ऐन्द्र, पवमान और आरण्यक पर्व। उत्तरार्चिक के सात भाग हैं—दशरात्र, संवत्सर, एकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित और क्षुद्र। पूर्वार्चिक में ज्ञेय और आरण्यक गान है और उत्तरार्चिक में ऊह और ऊह्य गान है। यज्ञ में देवताओं को प्रसन्न करने के लिए साम का गान होता था।

अथर्वा ऋषि के द्वारा देखे हुए मन्त्रों को अथर्ववेद कहा जाता है और उनके संग्रह को अथर्ववेद संहिता कहा जाता है। अथर्ववेद का दूसरा नाम अथर्वाङ्गिरस भी है। क्योंकि अथर्वा ऋषि अङ्गिरा ऋषि के वंशज थे। इसका तीसरा नाम भृग्वाङ्गिरस वेद भी है। क्योंकि अङ्गिरस के शिष्य भृगु ऋषि ने इस वेद का प्रचार किया था। गोपथ ब्राह्मण ने अथर्ववेद का नाम अथर्वाङ्गिरस और ब्रह्मवेद भी कहा है। ब्रह्मवेद नाम पड़ने का कारण यह है कि इस वेद में ब्रह्म के विषय में बहुत बड़ा विचार किया गया है। गोपथ ब्राह्मण में लिखा है कि ब्रह्म के पुत्र भृगु हुए और भृगु के पुत्र अथर्वन् हुए। इनको अङ्गिरा भी कहा जाता है। इन अथर्वन् के २० पुत्र हुए जिन्होंने अथर्ववेद के एक-एक काण्ड को अपनाया।

यज्ञ के समस्त कर्मों का जो संचालन अथवा निरीक्षण करता है उसे ब्रह्मा कहते हैं। वह यज्ञ का प्रधान पुरोहित भी कहलाता है। ब्रह्मा के लिए चारों वेदों का ज्ञान और सांसारिक विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है। ब्रह्मा बहुत बड़ा विद्वान् होता है, जो यज्ञ का सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। वह सदा ध्यान रखता है कि यज्ञ में कोई त्रुटि न होने पाये। इसी प्रकार होता अध्वर्यु और उद्गातादि के बीमार होने पर उनके रोगों का निवारण और किसी बाहरी उपद्रव के होने पर उन रागों और उपद्रवों की शान्ति आदि कराना जानता है।

इन चारों वेदों का कार्य यज्ञ में भिन्न-भिन्न हैं और उन कार्य करने वालों का नाम भी भिन्न-भिन्न है। जैसे यज्ञ में जो ऋक् मन्त्र पढ़कर देवों को आह्वान करता है वह होता कहा जाता है और उसके कार्य को हौत्र कहते हैं, तथा ऋग्वेद के मन्त्रों से वह आह्वान करता है अतः ऋत्विक् कहा जाता है। यज्ञ में होम आदि कार्यों का जो सञ्चालन करता है उसे अध्वर्यु कहते हैं। उसके कार्य को आध्वर्यव कहा जाता है। यतः यज्ञ का दूसरा नाम अध्वर है। उस कार्य के सञ्चालन में यजुर्वेद के मन्त्रों का प्रयोग होता है। यज्ञ में देव प्रीत्यर्थ सामवेद के मन्त्रों का गान होता है। गान करने वाले को उद्गाता कहते हैं और उसके कार्य को औद्गात्र कहा जाता है। यज्ञ में होने वाले न्यूनाधिक्य का निरीक्षण करने वाले और उपद्रवों को दूर करने वालों को ब्रह्मा कहते हैं। यह अथर्ववेद का विद्वान् होता है।

इस प्रकार यज्ञ कर्म के भेदानुसार ही वेदों का ४ विभाग व्यासदेव ने किया है। वेदों को त्रयी भी कहते हैं। इसका कारण यह है कि वेद मन्त्र गद्य, पद्य एवं गीत में हैं। इन तीन प्रकारों के कारण वेद को त्रयी कहते हैं।

इन वेदों की अनेक शाखाऐं हैं। इन प्रत्येक शाखाओं की एक-एक संहिता होती है। इन शाखाओं की संख्या के विषय में बहुत मतभेद है। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य के पस्पशाह्निक में ऋग्वेद की २१ शाखाओं का होना माना है। वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने केवल १५ शाखाओं के होने का उल्लेख किया है। ब्रह्मसूत्र के प्रथम सूत्र के अणुभाष्य में स्कन्द पुराण और आनन्द संहिता के वाक्यों को उद्धृत करके २४ शाखाओं का उल्लेख किया गया है। भगवदत्तजी के वैदिक वाङ्मय के इतिहास के अनुसार २७ शाखाऐं हैं। रामगोविन्दजी ने वैदिक साहित्य के पृष्ठ १२१ में तैत्तरीय प्रातिशाख्य इसके माहिषेय भाष्य, पातञ्जल महाभाष्य, काशिकावृत्ति, अष्टाध्यायी कल्पसूत्र, पुराणों से उद्धृत करके ३४ शाखाओं का उल्लेख किया है—(१) शाकल (२) मुदगल (३) गालव (४) शालीय (५) वात्स्य (६) शैशिरि (७) वाष्कल (८) बौध्य (९) अग्निमाठर (१०) पराशर (११) जातूकर्ण्यं (१२) आश्वलायन (१३) साङ्खायन (१४) कौषितकी (१५) महाकौषितकी (१६) शाम्ब्य (१७) माण्डूकेय (१८) बृहद्वृच् (१९) पैङ्ग्य (२०) उद्दालक (२१) गौतम (२२) शतबलाक्ष (२३) हौस्तिक (२४) भारद्वाज (२५) ऐतरेय (२६) वसिष्ठ (२७) सुलभ (२८) शौनक (२९) आश्मरथ्य (३०) काश्यप (३१) कारमन्द (३२) काशांश्व (३३) क्रौड (३४) काङ्कत।

किन्तु इतनी शाखाओं में केवल एक शाकल संहिता ही उपलब्ध है। शौनक के अनुक्रमणिका के अनुसार इसमें मन्त्र १०५८०, शब्द १५३८२६ और अक्षर ४३२००० हैं।

यजुर्वेद की शाखाओं की संख्या में भी इसी प्रकार मतभेद हैं। महाभाष्य के अनुसार १००, प्रपञ्च हृदय के अनुसार ३६, दिव्यावदान के अनुसार १०५ यजुर्वेद की शाखाऐं हैं। सूत संहिता, ब्रह्माण्ड पुराण, स्कन्द पुराण के अनुसार यजुर्वेद की १०७ तथा मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार १०९, चरणव्यूह के अनुसार ८६ शाखाऐं हैं। किन्तु आजकल ५ शाखा ही प्राप्त हैं जिनमें कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी और कठ शुक्ल यजुर्वेद की दो, वाजसनेय और कण्व शाखाऐं प्राप्त हैं।

सामवेद की शाखाओं की संख्या के विषय में भी पर्याप्त मतभेद है। पातञ्जल महाभाष्य के अनुसार सामवेद की १००० शाखाऐं

हैं। दिव्यावदान के अनुसार १०८७ तथा प्रपञ्च हृदय के अनुसार केवल १२ शाखा बची है। सूतसंहिता, स्कन्द पुराण, मुक्तिकोपनिषद तथा स्कन्दपुराण आदि में भी सामवेद की १००० शाखाएँ कही गयी हैं। पर आज केवल ३ शाखाएँ उपलब्ध हैं—कैथुमी, राणायनीय और जैमिनीय। इन तीनों में भी अत्यधिक समानता है। अथर्व वेद की शाखा की संख्या में भी पर्याप्त मतभेद है। पातञ्जल महाभाष्य के अनुसार अथर्व वेद की नव शाखाएँ हैं—पैप्पल, दान्त, प्रदान्त, स्नात, श्रौत्र, ब्रह्मदावन, शौनक, देवदर्शति और चरणविद्या। अन्य स्थलों में इन नामों में भी मतभेद हैं। पर आजकल केवल दो–शौनक और पैप्पलाद प्राप्त हैं।

शाखा भेद से प्रत्येक शाखा के ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और प्रातिशाख्य भी अलग-अलग होते हैं। इसी प्रकार इन वेदों के उपवेद भी हैं और उनके अंगभूत वाङ्मय भी विशाल है। वेद का एक-एक मंत्र इतना व्यापक अर्थ रखता है कि एक-एक मन्त्र की व्याख्या में एक-एक स्वतन्त्र ग्रन्थ रचे गये हैं। गायत्री एक मंत्र की व्याख्या सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण है। "ईशावास्यमिदं सर्वम् कुर्वन्नेयेहकर्माणि जीजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्ययेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे," इन दो मन्त्रों की व्याख्या श्रीमद्भगवद्गीता है। इसी प्रकार और भी ग्रन्थ हैं। इसलिए इतने बड़े विशाल व्यापक वाङ्मय वेद का दूसरा नाम 'ब्रह्म' पूर्णतः सार्थक है। इस वेदवाङ्मय की विशालता को स्पष्ट करने के लिए तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।१०।११।३–४) में एक कथा आती है जो अतीव मनोहर एवं उपयोगी भी है। कथा इस प्रकार है, महर्षि भारद्वाज ने कई सहस्र वर्षों तक कठोर तपस्या की। इन्द्रदेव प्रकट हुए। इन्द्रदेव ने पूछा–महर्षे वरं ब्रूहि। महर्षि ने कहा देवराज मुझे एक जन्म और दें। देवराज ने पूछा एक जन्म लेकर क्या करेंगे। महर्षि ने कहा वेद का स्वाध्याय करेंगे। इसी प्रकार महर्षि ने तीन बार घोर तपस्या की और तीन जन्म पाते रहे। तीनों जन्मों में वेदाध्ययन करते रहे। इसके बाद पुनः महर्षि ने चौथे बार जन्म के लिए याचना की। तब इन्द्र ने महर्षि के समक्ष एक बहुत बड़े वेदराशि के तीन पर्वत प्रकट किये। उन पर्वतों से एक एक मुट्ठी धूल लेकर महर्षि को दिखाया और कहा महर्षे अभी तक आपने इतना ही वेद पढ़ा है। यह सामने का पूरा पर्वत वेद है। आप कबतक इस पूरे वेद को पढ़ सकते हैं। महर्षि ने नत मस्तक होकर उस वेद भगवान्। पर्वत को नमस्कार किया और कहा 'अनन्ता वै वेदाः'–सर्ववेदात् प्रसिद्ध्यति।

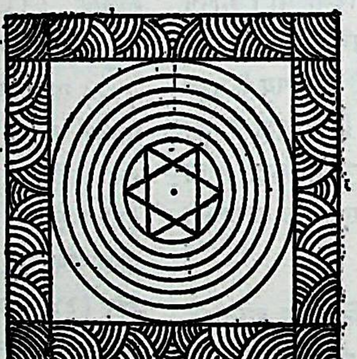

अग्न्याधान : एक मूलभूत यज्ञ प्रक्रिया

• श्री हरिगोविंद रानडे •

वैदिक यज्ञ साधारण तौर से दो प्रकार के माने जाते हैं। श्रौत यज्ञ और गृह्य यज्ञ। इन दोनों में प्रमुख भेद यह है कि श्रौत यज्ञ की संपन्नता तीन (अथवा पाँच) अग्नियों की सहायता से की जाती है जो कि गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि (सभ्य और आवसथ्य) के नाम से पुकारे जाते हैं जबकि गृह्य यज्ञ के लिए केवल एक ही अग्नि (औपासन अथवा स्मार्त) पर्याप्त है।

किसी भी प्रकार का वैदिक यज्ञ हो उसका अनुष्ठान तभी किया जा सकता है जब उसके लिए विधिवत् स्थापित अग्नि उपलब्ध हो। अग्नि की विधिवत् स्थापना करना और उसको सँभाल के रखना ये दो कार्य प्राचीन काल में यज्ञविधि की दृष्टि से अत्यंत महत्व के माने जाते थे। अग्नि की विधिवत् स्थापना करने के लिए 'अग्न्याधान' नाम के कर्म का विधान संहिता, ब्राह्मण और कल्प सूत्रों में किया गया है। एक बार अग्नि का आधान संपन्न हुआ कि उसके द्वारा अग्निहोत्र दर्शपूर्णमास इष्टि इत्यादि नित्य विधियों के द्वारा आहुतियाँ देना यजमान के लिए अनिवार्य हो जाता है जो कि उसको तीस साल तक लगातार चलाना पड़ता है। प्रत्येक नये यज्ञविधि के लिए प्रतिष्ठापना किये गये और अजस्र रूप से रक्षित अग्नि से अग्नि का उद्धरण करना जरूरी हो जाता है। यदि केवल गार्हपत्य अग्नि का रक्षण किया गया हो तो उसमें से आहवनीय और दक्षिणाग्नि इनका उद्धरण प्रतिकर्म के प्रारंभ में करना आवश्यक माना गया है। 'गतश्री' व्यक्ति के लिए तीनों अग्नियों का सतत पालन करना जरूरी है। अग्न्याधान विधि विवाहित यजमान ही कर सकता जब तक वह कृष्णकेश है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा रथकार वर्ग के यजमान ही इस विधि के लिए अधिकृत हैं। ऐसा माना जाता है कि ब्राह्मण यजमान को अग्नि की स्थापना वसंत ऋतु में करनी चाहिये; क्षत्रिय को ग्रीष्म में, वैश्य को शरद में और रथकार को वर्षा में। यदि यह न हो सके तो शिशिर ऋतु में इनमें से कोई भी इसकी स्थापना कर सकता है। कृत्तिका आदि विशेष नक्षत्रों का भी उल्लेख इस संदर्भ में किया गया है और उनका भी उपस्थित होना विभिन्न आचार्यों के अनुसार अग्नि-स्थापना की दृष्टि से शुभसूचक है।

अग्न्याधान विधि को संपन्न करने के लिए उसके काफी दिन पहले यजमान को आवश्यक है कि वह शमी वृक्ष के गर्भ में बढ़ते हुए अश्वत्थ वृक्ष से दो अरणि-फलकों को उपलब्ध करे और अन्य जुहू इत्यादि यजन-साहित्य को भी जुटा ले। साथ ही साथ उसे एक ऐसे भवन का निर्माण करना भी जरूरी है जिसमें वह उपर्युक्त तीनों अग्नियों के लिए आयतनों की योजना कर सके।

उसी दिन 'पुण्याहवाचन' (ब्राह्मणों के द्वारा आशीर्ग्रहण), आभ्युदयिक श्राद्ध (इसका विधान केवल वैखानस सूत्र में है), संकल्प वाचन (यजमान के द्वारा 'मैं अग्न्याधान करूँगा' इस प्रकार का मनोदय घोषित करना) और मधुपर्क के साथ ऋत्विग्वरण ये कर्म किये जाते हैं। साथ-साथ देव यजन विधि (जिसके द्वारा यज्ञभूमि का निश्चित करना संभव होता है) भी संपन्न किया जाता है। उपर्युक्त विधियों में से आखिरी दो का विधान केवल बौधायन श्रौत सूत्र में ही पाया जाता है। इसके अनन्तर अध्वर्यु नाम का ऋत्विक् अग्नि-प्रतिष्ठापना के लिए आवश्यक सामग्री अग्नि भवन अथवा विहार में लाकर ठीक तरह से रख देता है। जैसा कि ऊपर कहा है इस सामग्री में दो अरणि-फलक (जिनके परस्पर घिसने से अग्नि उत्पन्न किया जा सकता है) और यजन साहित्य का समावेश है। इस साहित्य को दो प्रकारों में गिना गया है १. पार्थिव (पृथ्वी से संप्राप्त) और २. वनस्पति से संप्राप्त।

इसके उपरान्त यजमान को केशवपन और नाखून कर्तन इन कार्यों से निपटकर स्नान करना पड़ता है। यजमान पत्नी को भी नख कटवाकर स्नान करना आवश्यक होता है। स्नानोपरान्त रेशम के नये वस्त्र पहनकर वे दोनों माला धारण करते हैं और अध्वर्यु के साथ किसी चतुष्पथ अथवा चौराहे में आ जाते हैं। वहाँ पर पानी से भरा एक पात्र रखा जाता है। उसमें यजमान और पत्नी अपना प्रतिबिंब देखते समय सिंहानुवाक नाम के मन्त्रों का पठन करते हैं। तदुपरान्त अध्वर्यु उस पात्र को फेंक देता है और सभी यज्ञस्थल को वापिस लौट आते हैं।

इसके बाद का प्रमुख कर्म है ब्रह्मौदनिक अग्नि को लाना। सवेरे जबकि सूर्य के किरण वृक्षों के माथे पर अभी-अभी गिरे हैं यजमान, यजमान-पत्नी, अध्वर्यु और ब्रह्म (नाम के एक अन्य ऋत्विज्) अपने ऊपर फैली चादर के छत के नीचे से चलते हुए अम्बरीष अथवा उत्पन्न अग्नि जहाँ से प्राप्त हो सकता है ऐसे भड़भुंजे की दुकान तक जाते हैं। वहाँ से जलते हुए अंगारों को किसी पात्र में बटोरकर यजमान उन्हें अध्वर्यु को देता है और सभी फिर से यज्ञ स्थल को लौटते हैं। इसी अग्नि के सहारे ब्रह्मौदन याने ब्राह्मणों को खिलाये जानेवाले भात को पकाया जाता है। बहुतांश सूत्रों में अम्बरीष अग्नि के स्थान पर यजमान के घर में पकाने के लिए प्रयुक्त 'औपासन' अग्नि को लेने का विधान है।

भारतीय संस्कृति के उन्नायक

धर्मसम्राट्

पूज्य स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज

के

७५वें जन्म दिवस पर

सादर नमन

सेठ नन्दलाल जनरल चैरिटेबल ट्रस्ट

सिरसा (हरियाणा)

अनन्तश्री विभूषित

सनातन धर्मसम्राट्—भारत हृदय

परमपूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के ७५वीं वर्षगाँठ पर

श्रीचरणों में शत-शत प्रणाम

लच्छीराम जसरासरिया

एलनाबाद, सिरसा

(हरियाणा)

ब्रह्मौदन के वास्ते लिया जानेवाला धान्य बैल के चमड़े पर नापकर लिया जाता है और इस धान्य (चावल) का पाक उपर्युक्त अम्बरीष अथवा औपासन अग्नि के ऊपर किया जाता है। भात के पकने के बाद उसे एक थाली में निकाल लिया जाता है और उसके मध्य में एक छिद्र बना लिया जाता है। जिसमें काफी मात्रा में घी डालते हैं। इस प्रकार से तैयार भात से प्रथम अग्नि को आहुति दी जाती है और तदुपरान्त इससे ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। अंत में अध्वर्यु भात के पात्र में बचे हुए घी में डुबोकर समिधायें अग्नि में अर्पण करता है और यह ब्रह्मौदन कर्म समाप्त होता है।

ब्रह्मौदन कर्म में उपयुक्त अग्नि बाद में एक साल तक, एक ऋतुतक, बारह दिन तक,छह दिन तक, दो दिन तक अथवा एक दिन के लिए रक्षित किया जाता है। अगर अग्नि का रक्षण एक दिन से जादा दिन तक के लिए किया गया हो तो आधान कर्म के पहिले दिन ब्रह्मौदन कर्म पुन: किया जाना चाहिए। उस दिन गोपितृयज्ञ नाम का कर्म भी उसे संपन्न करना पड़ता है। उसमें पत्नी और बच्चों के साथ जुआ खेलना भी एक धार्मिक विधि माना गया है और इस खेल में उसे विजय पाना भी जरूरी है। इस खेल में गौओं का प्रयोग चाल के रूप में किया जाता है यह इसका एक और वैशिष्ट्य है। गौवों के अभाव में अज, मेष इनका भी प्रयोग हो सकता है। खेल के बाद इस गौ को बलि चढ़ाकर उसकी वपा को अग्नि में सर्मपित किया जाता है। परंतु कुछेक आचार्यों के मत में गौ को बलि चढ़ाना जरूरी नहीं है। उसके स्थान पर भात का प्रयोग हो सकता है।

आधान के पहिली रात अध्वर्यु स्वयं अरणि-फलकों को यजमान के आधीन कर देता है जिसे लेने के बाद यजमान शांति से जागरण करते हुए रात को बिताता है। कुछ सूत्रों के अनुसार इस रात में ऋत्विग्गण गाते हैं और तन्तुवाद्य बजाते हैं। गार्हपत्य अग्न्यायतन के उत्तर की तरफ एक बकरे को भी बाँध के रखा जाता है। सबेरे उसको छोड़ देते हैं। आधी रात के बाद अध्वर्यु के द्वारा ये अरणी-फलक फिर वापिस लिए जाते हैं और अग्नि के ऊपर गरम किये जाते हैं। तदनंतर गार्हपत्य अग्नि का आयतन उसमें से अग्नि बाहर निकालकर साफ किया जाता है। अन्य आयतन भी स्वच्छ किये जाते हैं। इसके बाद वानस्पत्य और पार्थिव संभार का विभाजन कर हर एक आयतन में सामग्री रखी जाती है।

इसके उपरान्त मंथन प्रक्रिया का अवलंबन करके अरणि-फलकों द्वारा अग्नि पैदा किया जाता है। इस प्रक्रिया की शुरुआत से लेकर अग्नि का आयतन में स्थापन होने तक 'उद्‌गातृ' नामक ऋत्विज् विभिन्न प्रकार का 'साम' गायन करता है। उद्‌गातृ के अभाव में यह कार्य 'ब्रह्मन्' नामक ऋत्विज् को सौंपा जाता है जो कि इस काम के वास्ते विभिन्न ऋचाओं और व्याहृतियों को उच्चारण करता है। उत्पादित अग्नि को अब लकड़ी के शकलों आदि ज्वलनशील पदार्थों द्वारा प्रदीप्त किया जाता है और इस प्रदीप्त अग्नि को गार्हपत्य आयतन में स्थापित किया जाता है। इसी गार्हपत्य अग्नि में से किसी अंश को दक्षिणाग्नि के रूप में स्थापित करके अनंतर आहवनीय अग्नि की स्थापना की जाती है। गार्हपत्य से आहवनीय आयतन तक अग्नि को ले जाते समय एक घोड़े को आगे चलाया जाता है। जहाँ घोड़ा आहवनीय-संभार पर अपना पैर रखता है वहीं पर आहवनीय अग्नि की स्थापना की जाती है। अनंतर एक रथचक्र भी गार्हपत्य से आहवनीय आयतन तक चलाया जाता है।

यह होने के बाद सभी अग्नियों में विभिन्न प्रकार के धान्यों का हवन किया जाता है और समिधायें भी अर्पित की जाती हैं। अंत में पूर्णाहुति का क्रम है जिसमें जुहू पात्र को पूर्णतया भरना आवश्यक समझा जाता है। इसके बाद मन्त्र रहित अग्निहोत्र की आहुतियाँ इन अग्नियों में दी जाती है। अग्नि स्थापना करने के बाद यजमान और उसकी पत्नी किसी यज्ञ का आयोजन करते हैं और उसकी दक्षिणा के साथ ही आधानप्रीत्यर्थ दक्षिणा भी ऋत्विजों के देते हैं। बारह दिन तक व्रतस्थ रहना भी उनके लिए आवश्यक है। उसके उपरान्त तनूहविस् नाम के तीन यज्ञ और अन्य कई कर्म उन्हें करने पड़ते हैं जिसके पश्चात् अन्वारम्भणीया इष्टि सम्प्राप्त करते हुए पूर्णमास इष्टि संपन्न हो सकती है।

पूर्णाहुति के बाद किये जानेवाले कर्मों में पहला स्थान उस इष्टि को है जिसमें अग्नि और पवमान अग्नि प्रधान देवतायें हैं। दूसरी इष्टि पावक अग्नि और शुचि अग्नि के सम्मान में आयोजित की जाती है और तीसरी में अग्निषोम, इन्द्राग्नि और विष्णु इनमें से किसी एक को प्रधान देवता माना जाता है।

साधारण तौर से 'अग्न्याधान' होने के बाद यजमान को दर्शपूर्णमास इष्टि, चातुर्मास्य, निरूढ़ पशुबंध और सोमयज्ञ इस क्रम से अनुष्ठान करना जरूरी समझा गया है। परंतु यह कोई अनिवार्य नहीं है, विशेषत: सोमयज्ञ करने को उद्युक्त यजमान को उसके तुरन्त पहिले भी अग्न्याधान कराना शिष्ट संमत है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि अग्नि के आधान का विधान कितना महत्वपूर्ण और आधारभूत है। कुछेक विद्वानों के मत में 'आधान' का विवरण पहले होना चाहिए कि प्रकृतिभूत दर्शपूर्णमास इष्टि उसके प्रथम होनी चाहिए इस विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार के ग्रह हैं। विशेष रूप से ब्राह्मण ग्रंथों में (उदा-शतपथ ब्रा०) यह देखा जाता है कि इष्टि का विधान पहिले है और आधान का विधान बाद में है। हालां कि अग्न्याधान किये बिना इष्टि होना असंभव प्रतीत होता है। ऐसी अवस्था में पवमानेष्ट वगैरह आधानाङ्गभूत हैं यह दिखाया जाता है और आधान का प्राथम्य एवं प्राधान्य स्पष्ट किया जाता है। लेकिन श्रौत सूत्रों ने इस विषय में स्पष्ट निर्णय दिया है और कहा है कि दर्शपूर्णमास प्रक्रिया ही पहले समझ लेना उचित है क्योंकि सारे श्रौत यज्ञ प्रक्रिया की वह एक अर्थ में 'तन्त्र' रूप है। (दर्शपूर्णमासौ तु पूर्वं व्याख्यास्यामस्तन्त्रस्य तत्राम्नातत्वात्। आश्वलायन श्रौ सू. १. १)।

◆

जनसाधारण के वेद-इतिहास और पुराण

• दण्डी स्वामी शुकदेवजी •

किसी देश के प्रत्येक नागरिक से उस देश के संविधान को जानने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। उलटे संविधान को जानने वाले तो अंगुलियों पर ही गिने जा सकते हैं, शेष बचे हुए लोग तो संविधान की सूरत भी देखे हुए नहीं होते। पर हाँ वे उसका अर्थ समझते हैं और उनसे इसी की अपेक्षा भी की जा सकती है।

ठीक यही स्थिति किसी भी धर्म के माननेवालों की होती है। हिन्दू धर्म को ही लें। जो स्थिति ईसाइयों में बाईबिल की है या मुसलमानों में कुरान की है वही हिन्दुओं में वेद की है। जैसे बिना बाईबिल के ईसाइयत की या बिना कुरान के मुसलमानी की कल्पना भी नहीं हो सकती वैसे ही बिना वेद के हिन्दुत्व को सोचा भी नहीं जा सकता। पर ऐसे कितने हिन्दू हैं जिन्होंने वेद की सूरत भी देखी हो? लेकिन फिर भी वे अपने हिन्दू होने का मतलब समझते हैं और जीवन में उसे उतारते भी हैं। उन्होंने भले वेद की सूरत भी न देखी हो पर उस सूरत के पीछे क्या छिपा हुआ है जो उन्हें हिन्दू बनाता है, उसे वे खूब पहचानते हैं। कैसे?

इसका उत्तर तो उन्हें देना चाहिए जिन्होंने रामायण महाभारत जैसे ऐतिहासिक तथा श्रीमद्भागवतादिक जैसे पुराण ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न लगा कर एक तरह से हिन्दुत्व के पैरों पर ही कुल्हाड़ी चलाई है। न जाने कबसे ये ग्रन्थ अपनी सुन्दर सरस काव्यमयी कथाओं और आख्यायिकाओं के माध्यम से हिन्दू जीवन को ढालते चले आ रहे हैं। इसलिए एक सामान्य हिन्दू के लिए तो ये ही प्रत्यक्ष वेद हैं जो उसे हिन्दू बनाते हैं। एक सामान्य हिन्दू नहीं जानता कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद किस चिड़िया का नाम है, पर वह राम को जानता है, कृष्ण को जानता है, युधिष्ठिर को जानता है और जानता है उन सभी कथाओं आख्यायिकाओं को जो उसे एक हिन्दू के नाते रामायण महाभारत और भागवत से मिली हैं, मिली ही नहीं, उसके जीवन में घुल मिल गई हैं। यही कारण था कि स्वयं भगवान वेदव्यास को भी इन्हें पाँचवें वेद के रूप में स्वीकार करना पड़ा—'इतिहासः पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते।' आखिर एक हिन्दू के निर्माण में जिन तत्वों की आवश्यकता होती है वे इतिहास पुराण के अलावा एक सामान्य जन को मिल भी कहाँ से सकते हैं।

इतिहास पुराण वेद ही हैं और उनमें वेद का ही अर्थ प्रतिपादित हुआ है—भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः—स्वाभाविक भी है, वेद का अर्थ वेद में न होगा तो और कहाँ होगा, कम से कम स्वामी दयानन्द के समय तक तो यही माना जाता रहा। स्वामी दयानन्द के समय से ही इसे विवादास्पद विषय बना दिया गया और एक तरफ जहाँ कुछ लोग इतिहास पुराण और अपने तथाकथित वेद के बीच खाई खोदने लगे वहीं दूसरी तरफ कुछ लोगों ने यह कह कहकर कि जो कुछ इन इतिहास पुराणों में है वह सब उन तथाकथित वेदों में भी है, उन खाइयों पर पुल बाँधने शुरू कर दिये। छोटे मियाँ तो छोटे मियाँ बड़े मियाँ सुभान अल्लाह। क्या इतिहास पुराणों में आई हुई कोई बात सिर्फ इसीलिए मानी जाये या न मानी जाये क्योंकि वह ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में भी आई है या नहीं आई है? कृष्ण का नाम अमुक वेद में आया है या इन्द्र अहल्या की कथा या विष्णु वृन्दा की कथा की चर्चा अमुक मन्त्र में हुई है, क्या इसी से इन कथा पात्रों का अस्तित्व सिद्ध किया जा सकेगा? यदि हाँ तो भी अधिसंख्य हिन्दुओं के लिए वे असिद्ध ही सिद्ध होंगे, क्योंकि न उनकी पहुँच उन मन्त्रों तक हो और न ही वे उनके अस्तित्व से परिचित हो सकें। जो इसे मानने के लिए तैयार नहीं है उसे बताना चाहिए कुछ कि मुट्ठी भर लोगों के अलावा बाकी बचे हुए लोगों के हिन्दू जीवन का कौन-सा आधार उसके पास है?

कोई इस भ्रम में न रहे कि मैं इतिहास पुराण के लिए मुख्य रूप से वेद शब्द का प्रयोग नहीं कर रहा। जिनके कारण मन्त्र ब्राह्मणों में वेद शब्द का प्रयोग जन-साधारण के लिए सम्भव हो सका है, भला स्वयं उन्हीं में गौण रूप से वेद शब्द का प्रयोग क्यों कर किया जा सकता है? तैजस रूप का ज्ञान कराने वाली आँखें भी क्या स्वयं तैजस नहीं होतीं?

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय॥

* * *

वैदिक तथा वैष्णवागमिक आराधना—पारस्परिक सम्बन्ध

• डा० राघवप्रसाद चौधरी •

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की चर्चा के प्रसंग में जिस प्रकार वैदिक धार्मिक अनुष्ठान परम्परा का विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान है, उसी प्रकार विविध आगमिक समाराधन परम्परा का भी अत्यन्त महनीय गौरवपूर्ण महत्व है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि भारतीय सभी धार्मिक परम्परा में वैदिक धार्मिक प्रक्रिया तथा अनुष्ठानक्रम से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित होती रही है। वैष्णव आगमों की समृद्ध परम्परा में उपलब्ध वैदिक तत्त्वों के विवेचन तथा इन आगमों में उपलब्ध अन्तः साक्ष्य के आधार पर वैष्णवाराधनादि प्रक्रिया का वैदिक अनुष्ठानों से पूर्ण प्रभावित होना हस्तामलकवत स्पष्ट प्रतीत होता है। वैखानस आगम ने अनेकत्र अपने को शुद्ध वैदिकतत्त्व होना प्रतिपादित किया है। वैखानसागम ग्रन्थ आनन्द संहिता स्पष्ट कहती है—"वैखानसं पाञ्चरात्रं वैदिकं तान्त्रिकं क्रमात् (अ० १३ श्लो० १)।" जहाँ तक पाञ्चरात्रागम के वेदमूलकत्व का प्रश्न है, इस विषय में भी संदेह का स्थान नहीं है। अनेक पाञ्चरात्रागम संहिताओं ने अपने को सुस्पष्ट रूप से वेदमूलक होना कहा है।[1] मार्कंण्डेय[2] तथा विष्वक्सेन[3] संहिताओं ने "श्रुतिमूलमिदं शास्त्रं प्रमाणं कल्प सूत्रवत्" कहते हुये पाञ्चरात्रागम को श्रुतिमूलक होना प्रतिपादित किया है। यह सत्य है कि समूर्ताराधनपरक इस आगम में वैदिक समाराधन की अपेक्षा कुछ अन्य विशेष तत्त्व भी समाविष्ट हुये हैं। प्रस्तुत निबन्ध में वैदिक अर्थात् श्रौताराधन प्रक्रिया का वैखानस तथा पाञ्चरात्रागमिक प्रक्रिया पर प्रभाव सम्बद्ध कुछ सामान्य विषयों के विवेचन का प्रयास किया गया है।

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट है वैदिक तथा आगमिक दोनों परम्पराएँ भारतीय सनातन धर्मानुष्ठान सम्बद्ध परम्पराएँ हैं और सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक उभय दृष्टि से दूसरी प्रक्रिया पहली परम्परा से पूर्ण प्रभावित है। आगमनिक प्रक्रिया के वैदिक विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित होने के बाद भी दोनों में कुछ विशिष्ट महत्वपूर्ण अन्तर भी हैं। श्रौत प्रक्रिया में जहाँ मुख्यरूप से विविध यागानुष्ठानों के लिये प्रधानतः अग्नि होम के माध्यम से अमूर्त-आराधन विहित है, वहाँ वैष्णवागमों की आराधन-प्रक्रिया में अग्नि-आराधन के साथ-साथ प्रधान रूप से समूर्त वासुदेवाराधन विहित है। इस प्रक्रिया में अग्नि के द्वारा भी समूर्त वासुदेव के आराधन का ही विधान किया गया है। एक प्रकार से वैष्णवागमानुष्ठान प्रक्रिया वैदिकानुष्ठान प्रक्रिया का परवर्ती विकसित स्वरूप कहा जा सकता है। पाञ्चरात्रागम ग्रन्थ नारदीय संहिता कहती है—

अत्र मन्त्रास्तु ये केचित् पाञ्चरात्र प्रकाशिताः।
ते सर्वे वैदिकाः ज्ञेयाः रहस्यं वैदिकं त्विदम्।
पाञ्चरात्रमिति ख्यातं वेदाध्व प्रकटी कृतम्॥(२९. ३९-४०)

अर्थात् इस आगम में प्रयुक्त मन्त्र वैदिक हैं, यह प्रक्रिया वैदिक है एवं यह वेदमार्ग से प्रकट हुआ है।

वैष्णवागम प्रधानतः क्रिया प्रमुख धार्मिक अनुष्ठानपरक परम्परा है। इस प्रक्रिया में मूर्तिपूजन अर्थात् समूर्तार्चन को प्रमुख स्थान प्राप्त है। इसीलिये पाञ्चरात्र ग्रन्थों में सर्वत्र कर्षणादि प्रतिष्ठान्त क्रियाओं का विधिवत् विधान दृष्टिगोचर होता है। इन वैष्णवागम ग्रन्थों ने अनेकत्र समर्ताराधन की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है।[1] इस सम्प्रदाय में समूर्तार्चन अर्थात् मूर्ति आराधन का प्राधान्य होते हुए भी वैदिक अर्थात् श्रौत प्रक्रिया का प्रधान आराधनाक्रम अग्निहोत्र विषय सर्वथा उपेक्षित नहीं है, अपितु आराधन की पूर्णता के हेतु वह आवश्यक तत्त्व है। वैष्णव सम्प्रदाय में चतुःस्थानार्चन ही पूर्ण आराधन माना गया है। अनिरुद्ध संहिता का कहना है —

एकं तु बिम्बकं प्रोक्तं द्विस्थानं बिम्ब पावकम्।
त्रिस्थानं कुंभसंयुक्तं चतुस्स्थानं तु मण्डलम्॥(६. ६३-६४)

पुनः इसी संहिता में कहा गया है—

"कुंभमण्डलबिम्बाग्नौ पूजनं चोत्तमं भवेत्।
उत्तमाराधने नैव सर्वदोषक्षयं गतम्॥" (६. ६०)

इस प्रकार बिम्ब अर्थात् प्रतिमा, अग्नि, कुंभ तथा मण्डल ये चार वैष्णवाराधन के आधारभूत स्थल निर्दिष्ट हैं। इन चारों में सम्पादित आराधन ही उत्तम आराधन होता है। अत एव वैष्णवागम में विहित अग्नि कार्य सम्पादन के लिये प्रायः वे सभी अग्निकुंड तथा अग्नि विहित हैं जो श्रौत याज्ञिक प्रक्रिया में। इस तरह श्रौत कर्म अग्निकार्य की वैष्णवागम संप्रदाय में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी किञ्चित् विस्तृत चर्चा आगे होगी। अग्नि कार्य सम्बन्धित विधान वैष्णवाराधन प्रक्रिया में श्रौत प्रक्रिया का अनुकरण है. ऐसा कहना अनुपयुक्त नहीं होगा।

वैखानस आगम ने प्रतिष्ठादि के अवसर में पाँच विविध अग्निकुण्डों में पाँच अग्नि का विधान किया है। पुनः उन अग्निकुण्डों में होमकर्म सम्पादन निर्दिष्ट है। ये पाँच अग्नि हैं—१. आहवनीय, २. अन्वाहार्य, ३. गार्हपत्य, ४. आवसथ्य तथा ५. सभ्य। ये पाँच अग्नि सामान्यतः श्रौत कर्म में भी विहित हैं। विमानार्चन कल्प ने विस्तारपूर्वक इसकी चर्चा की है। इसके अनुसार ब्रह्मा प्रजापति ने स्वर्लोक, अन्तरिक्ष लोक, मर्त्य-

---

[1] श्रुतिमूलाग्नि तान्येव पाञ्चरात्राणि पङ्कज विष्णुतन्त्र, संहिता, १. ३६।

[2] मार्कंण्डेय संहिता, १. ३८। [3] विष्वक्सेन संहिता, ८. ६–७।

---

[1] विष्णु तन्त्र, २९. ४९-५८।

सनातनधर्म संरक्षक धर्मसम्राट्

श्रीपूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज की ७५वीं वर्षगाँठ पर

चरणों में सादर नमन

* सभी प्रकार के इमारती लकड़ियों एवं साल स्लिपर के व्यापारी *

एम. एस. पटेल शॉ मिल
न्यू टिम्बर मार्केट
फाफाडीह, रायपुर (म. प्र.)
फोन : ३०८०

आशा टिम्बर कं०
न्यू टिम्बर मार्केट
फाफाडीह, रायपुर (म. प्र.)
फोन : ६२१४

यतिचक्रचूडामणि अनंतश्री विभूषित

परमपूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज के
७५वीं वर्षगाँठ पर सादर श्रीचरण स्पर्श

गिरनार रेस्टोराँ रायपुर (म. प्र.)
[फोन : ६२६७]

सम्बद्ध प्रतिष्ठान :
पूनम होटल, रायपुर
होटल राधिका, रायपुर
पूनम स्वीट्स, रायपुर
पूनम इम्पोरियम, रायपुर

* हमारा उद्देश्य : आवश्यकता की पूर्ति *

लोक, महर्लोक तथा जन लोकों के लिये उपर्युक्त पाँच अग्नियों का कल्पन कर क्रमशः प्रतिष्ठित किया। इन पाँच अग्निकुण्डों का स्वरूप तत्तल्लोक के आकार का ही वताया गया है। इस आगम के अनुसार स्वर्लोक चतुरस्र है, अतः आहवनीयाग्निकुण्ड का स्वरूप चतुरस्र होना कहा है। अन्तरिक्ष लोक का स्वरूप अर्ध चन्द्राकार होने के कारण अन्वाहार्य अग्निकुण्ड का आकार अर्ध चन्द्र की तरह होना कहा है। भूलोक के गोलाकार होने के कारण इसकी अग्नि गार्हपत्य का कुण्ड गोल होना विहित है। महर्लोक का स्वरूप त्र्यस्र है अतः उसके अग्निकुण्ड का स्वरूप त्र्यस्र होता है। जनलोक के चतुरस्र होने के कारण उसका अग्नि कुण्ड चतुरस्र होता है। तपो लोक पुण्डरीक के आकार का है अतः उसकी अग्नि पौण्डरीकाग्नि का कुण्ड पुण्डरीक की तरह होना कहा गया है।[1] पांचरात्रागम ग्रन्थ नारदीय संहिता ने चतुस्र, वृत्त, अर्द्ध चन्द्राकार तथा पद्माकार अग्निकुण्डों का निर्देश किया है।[2] यहाँ निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि अग्नि तथा अग्निकुण्ड विषयक प्रक्रिया वैष्णवागम में श्रौत प्रक्रिया से प्रभावित है। केवल इस आगम ने अपने अनुरूप इसमें कुछ परिवर्तन किया है।

वैष्णवागमिक प्रक्रिया के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्ष पर श्रौत प्रभाव का एक उत्तम उदाहरण वैष्णवागम में प्रयुक्त वैदिकमन्त्रों का स्थान भी महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। वैखानस तथा पाञ्चरात्र आगम उभयत्र विविध क्रिया सम्पादन के क्रम में वैदिक मंत्रों का विनियोग देखा जा सकता है। विमानार्चन कल्प के प्रारंभ में ऋषियों के द्वारा पूछे जाने पर मरीचि ने कहा है—

"श्रत्यनुकूलेन मार्गेण चतुर्वेदोद्भवैः मन्त्रैः तमर्चयन्त्रः श्रुतिभिरभिहितं शाश्वतमतीन्द्रियं परात्परं देवैरनभिलक्ष्यं तद्विष्णोः परमं पदं गच्छेयुः इति।"
(विमानार्चन कल्प, पृ० २)।

स्पष्ट है कि विष्णु के परम पद की प्राप्ति को श्रुत्यनुकूल मार्ग तथा तत्प्राप्ति हेतु चारों वेदों से उद्भूत मंत्र के प्रयोग आदि की आवश्यकता का निर्देश इस आगम को वेद से पूर्ण प्रभावित सिद्ध करता है। यहाँ वैदिक मंत्रों का प्रयोग प्रायः सभी प्रकार के क्रियासम्पादन तथा नित्य एवं नैमित्तिक आराधन आदि के क्रम में देखते हैं। जैसे—भूपरीक्षण के लिये मृत् संग्रह के अवसर पर 'इदं विष्णु', (ऋग्वेद १. २. ७.) मंत्र का विनियोग निर्दिष्ट है।[3] अग्निमन्थन के क्रम में 'अग्न आ याहि' इस मंत्र का प्रयोग विमानार्चन कल्प में द्रष्टव्य है। प्रतिमाओं में रत्नन्यास के समय विविध वैदिक मन्त्रों के विनियोग का विधान तत्तद्वैष्णव ग्रन्थों में द्रष्टव्य है। नारदीय संहिता में ऋग्वेदीय मंत्र' 'अतो देवा अवन्तु नः" (१. २२. १६.) का विनियोग आलय में प्रतिमा प्रतिष्ठा के लिये प्रवेश के अवसर पर निर्दिष्ट किया है। इसी प्रसंग में "ध्रुवाद्यौः" इत्यादि (ऋ. वे. १०. १७३. ४.) मंत्र का प्रयोग पिण्डिका में प्रतिमा नियोजन के लिये विहित है।[4] इस तरह वैखानस तथा पाञ्चरात्रोभय वैष्णवागम ग्रन्थों में मूर्ति-आराधन के अङ्गभूत सभी क्रियाओं में वैदिक मंत्रों का प्रचुर प्रयोग देखते हैं। ये वैदिक मंत्र प्रायः सभी वेदों, आरण्यकों तथा अन्य वैदक ग्रन्थों में गृहीत हैं। स्थालीपुलाकन्याय से उपरि निर्दिष्ट उदाहरण वैष्णवागम पर वैदिक प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं।

श्रौतकर्मानुष्ठान अर्थात् वैदिक याग सम्पादन के लिये अपेक्षित अधिकार प्राप्ति के लिये अनुष्ठाता को दीक्षित होना आवश्यक कहा गया है। अग्निष्टोम याग के क्रम में यजमान दीक्षा का विधान तत्तत् श्रौत सूत्रों, संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में विहित हैं। पाञ्चरात्रागम के अनुसार भगवदाराधन हेतु आराधक को दीक्षित होना आवश्यक है।[1] वैष्णवागमों में वैखानस सम्प्रदाय में दीक्षा का वैसा विधान नहीं देखते, पर पाञ्चरात्रागम के प्रायः सभी ग्रन्थों में दीक्षा विषय का विवेचन किया गया है। दीक्षा के प्रयोजन वैष्णव ग्रन्थों में भी वही वताये हैं, जो श्रौत संप्रदाय में अभिहित हैं। वैदिक दीक्षा की विशेषताएँ संक्षेपतः अधोलिखित हैं—१. धार्मिक आनन्दातिरेक की प्राप्ति, २. देवत्वापादन, ३. उच्चवर्णों की श्रेणी प्राप्ति, ४. गूढ़ संस्कार, ५. परिशोधन[2] तथा ६. शक्तिसंपादन। श्रौत सूत्रादियों के मत में याग से पूर्व यजमान के द्वारा सम्पाद्यमान कर्म समुच्चय को दीक्षा कहते हैं। भारतीय विद्या के अनेक विवेचकों ने दीक्षा शब्द की उक्त परिभाषा का समर्थन किया है। इन विचारकों में भारतीय विद्वानों के अलावा ओल्डन वर्ग, कीथ प्रभृति विदेशी विद्वान् के नाम भी उल्लेखनीय हैं।[3] पाञ्चरात्रागम ग्रन्थों ने भी सामान्यतः दीक्षा की उपर्युक्त विशेषताएँ ही वताई हैं। यहाँ भी दीक्षा को गुह्यातिगुह्य हितकारक होना कहा है। इस सम्प्रदाय के अनुसार विष्णुमण्डल में दीक्षा प्राप्ति के पश्चात् महापातकी तथा उपपातकी भी शीघ्र पातकों से मुक्त हो जाते हैं। कर्मदुष्ट, वीजदुष्ट, आहार दुष्ट तथा संकर कारक भी यदि एकवार अध्वर में दीक्षा प्राप्त कर लेता है तो वह निश्चित ही मुक्त हो जाता है। पाञ्चरात्रिकों के अनुसार दीक्षा के बाद मनुष्य को वह गति प्राप्त होती है जो यज्ञ दानादि के द्वारा विप्रों को भी प्राप्त नहीं होती। वैष्णवों की प्रक्रिया में भी दीक्षा यजमान के द्वारा सम्पादित अनेक कृत्यों का समुच्चय है। दीक्षा प्रसंग में निर्दिष्ट विषयों के विवेचन के पश्चात् पाञ्चरात्रिक दीक्षा का प्रयोजन तथा विशेषताएँ सामान्यतः श्रौत दीक्षा के समान ही देखते हैं।[4] दीक्षा प्रक्रिया अत्यन्त विस्तृत अनुष्ठान है, अतः इसके साङ्गोपाङ्ग विवेचन के लिये पृथक् स्वतंत्र प्रयत्न अपेक्षित है। पर स्थूल रूप से श्रौत प्रक्रिया तथा पाञ्चरात्र प्रक्रिया में निर्दिष्ट दीक्षा क्रम को साथ-साथ देखने से प्रतीत होता है कि पाञ्चरात्रिक आगम क्रम श्रौत प्रक्रिया से अवश्य प्रभावित है।

श्रौत प्रक्रिया में अनेक ग्रन्थों में प्रायश्चित्तों का विधान किया गया है। अग्निष्टोम तथा अन्य याग क्रम में याग के तत्तदङ्गभूत क्रियाओं के सम्पादन के अवसर में ज्ञात या अज्ञात रूप से हुए दोषों के निवारण हेतु पृथक्-पृथक् प्रायश्चित्त विहित हैं। माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण, काण्व शतपथ

---

१. विमानार्चनकल्प, पटल. ३०, पृ० २१५।
२. नारदीय संहिता, ७. २९-३०।
३. नारदीय संहिता, १५. १८४। ४. नारदीय संहिता, १५. १८६।

१. ईश्वर संहिता, २१. १।
२. दीक्षया आत्मानं पुनिते—जैमनीय उपनिषद् ब्राह्मण।
३. सिग्निफिकेन्स आफ दीक्षा, अन्नाल्स आफ द भं. ओ. री. ई. पूना; ५१, भाग १-४; पृ० १६३-७२; १९७० ई०।
४. नारदीय संहिता, ईश्वर संहिता तथा अन्य पाञ्चरात्र ग्रन्थों का दीक्षा प्रकरण।

ब्राह्मण, काठक संहिता, गोपथ ब्राह्मण, ताण्डव ब्राह्मण तथा जैमिनीय ब्राह्मण आदि अनेक वैदिक ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक तत्तत्प्रायश्चित्तों का विधान है। इन प्रायश्चित्तों का अवसर याग के पृथक्-पृथक् अंगभूत क्रिया-कलापों के दोषों के लिये अलग-अलग होते हैं और उनका स्वरूप भी दोष के अनुरूप भिन्न-भिन्न होता है। श्रौत याग या कर्म एक लंबी प्रक्रिया है, अतः अत्यन्त सूक्ष्मरूप से विहित कर्म समूहों में कुछ व्युत्क्रम अथवा अन्य प्रकार का दोष होना आसान है। इन दोषों के कारण निश्चित रूप से कर्मानुष्ठान जन्य पुण्य या अपूर्वादि की हानि होती है, फलतः अपेक्षित स्वर्गादि लाभ होना संभव नहीं होता। अतः उन हानियों से बचकर पूर्ण फल प्राप्ति के लिये विविध प्रायश्चित्तों का विधान युक्तिसंगत है। अन्ततः कह सकते हैं कि कर्मानुष्ठान के द्वारा जायमान पूर्ण फल की प्राप्ति के निमित्त विविध प्रायश्चित्तों का अनुष्ठान आवश्यक होता है। पाञ्चरात्र तथा वैखानस दोनों आगम ग्रन्थों के अन्त में निश्चितरूप से विस्तारपूर्वक विविध प्रायश्चित्तों का निर्देश देखते हैं। वैष्णवागम ग्रन्थों के प्रायश्चित अध्यायों को देखने से इन का भी प्रयोजन तथा स्वरूपादि श्रौत प्रक्रिया में विहित प्रायश्चित्त के प्रयोजन तथा स्वरूपादि से मिलता है। पारमेश्वर संहिता में १९वें अध्याय में ५९४ श्लोकों में, नारदीय संहिता ने पचीसवें अध्याय में प्रायः चार सौ श्लोकों में कर्षणादि प्रतिष्ठान्त सभी क्रियाओं में जाने अनजाने हुये दोषों की निवृत्ति के हेतु विविध प्रकृति के विविध प्रायश्चित्तों का निर्देश किया है। इस तरह प्रायश्चित्त विधि में भी वैष्णवागम पर वैदिक परम्परा का असाधारण प्रभाव कहा जा सकता है।

उपर्युक्त कतिपय प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित कहा जा सकता है कि वैष्णव आगम की आराधना प्रक्रिया तथा अनुष्ठानक्रम वैदिक अर्थात् श्रौत प्रक्रिया से पूर्ण प्रभावित है। इसके विशद विवेचन के लिये एक स्वतन्त्र ग्रन्थ रचना की आवश्यकता है।

●

बनारसी वस्त्र उद्योग संघ
बनारसी साड़ी के व्यवसायियों, गिरस्तों, दलालों एवं बुनकरों का
हार्दिक अभिनन्दन करता है
और
संकल्प लेता है कि—
बनारसी साड़ी उद्योग के चौमुखी विकास
व्यापारिक समस्याओं का समाधान
बुनकर एवं कर्मचारियों के हितों की रक्षा में सदैव संघर्षरत रहेगा।
बनारसी वस्त्र उद्योग संघ, वाराणसी

गायत्रीमंत्रतत्त्व विमर्श

● डॉ० परमहंस मिश्र ●

गायत्री मंत्र की महिमा का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर समग्र परवर्त्ती साहित्य में वड़ी ही श्रद्धा और आस्था से किया गया है। स्कन्द पुराण स्पष्ट शब्दों में उद्घोषित करता है—'न गायत्री समो मंत्रः'[1] पद्म-पुराण इसे वेदजननी कहता है—

> गायत्री वेदजननी गायत्री लोक पावनी ।
> गायत्र्या न परं जप्यम्, एतद्विज्ञायमुच्यते ।।[2]

संस्कृत–वाङ्मय–महोदधि–परमामृत उपनिषद् तो इसे सर्वभूतात्मक रूप से स्वीकार करते हैं—

गायत्री वा इदं सर्वंभूतं यदिदं किञ्च वाग्वै गायत्री, वाग्वा इदं सर्वंभूतम्, गायति च त्रायते च ।'[3]

गायत्री मंत्र के द्रष्टा 'विश्वामित्र' हैं। 'ऋषयः मन्त्रद्रष्टारः' के अनुसार मन्त्रों के दर्शन करने वाले ऋषि कहलाते हैं। मन्त्र का दर्शन ब्रह्म के अभ्यानर्षण से होता है। अभ्यानर्षण के उपरान्त ही ऋषित्व की सिद्धि होती है।

'तदेनान् तपस्यमानान् स्वयं ब्रह्म अभ्यानर्षत्। तदेतैषाम् ऋषित्वम् सिद्धम्' अर्थात् तपस्या में रत रहते हुए ब्रह्म द्वारा अभ्यानर्षित ऋषियों ने मन्त्रों का दर्शन किया था। इसी लक्ष्य को अन्तर्निहित रखकर यह मान्यता सनातन काल से आ रही है कि मन्त्रों का कोई निर्माता नहीं। ये अपौरुषेय दिव्य मातृकाओं के ब्रह्म द्वारा विनिवेशित वर्ण-पद-वाक्य प्रयुक्त संहितात्मक अखण्ड 'वाक्' के वैखरी निःसृत परप्रभा के प्रतीक हैं।

गायत्री मंत्र में चौंबीस अक्षर हैं। प्रत्येक वर्ष में २४ पक्ष होते हैं। चतुर्विंश स्तोम के प्रतीक गायत्री के २४ अक्षर वेद विज्ञान के अनुसार सर्व मान्य हैं। एक स्तोम का एक सौर मण्डल और चतुर्विंश स्तोम का एक ब्रह्माण्ड मण्डल—इस प्रकार गायत्री मंत्र में निखिल ब्रह्माण्ड की 'वीजशक्ति' अनन्त दिव्यताओं के साथ देदीप्यमान है।

तीन अष्टकों से चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री की समुद्भूति इसे त्रिपदा रूप से प्रतिष्ठित करती है। यद्यपि यह तुरीय पदा रूप से भी प्रतिष्ठित है, किन्तु महाव्याहृतियों के साथ त्रिपदा का–जपविधान सर्वतः प्रचलित है। अन्त में आठवाँ भाग तुरीयपद भी जपना चाहिये।[4]

गायत्री जप के सम्वन्ध में विचारक विभिन्न मत प्रकट करते हैं। संहिता के रूप से गायत्री अभिन्नपादा होती है। जप के समय तीनों पदों को अलग-अलग ध्यानगत रखते हुए अर्थात् भिन्नपादा गायत्री जपनी चाहिये। देवीभागवत पुराण के सन्ध्याकृत्य प्रतिपादन प्रकरण के निम्न-लिखित वचन विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं—

> भिन्न पादा तु गायत्री ब्रह्महत्या प्रणाशिनी ।
> अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति ।।
> अच्छिन्नपदा–गायत्रीजपं कुर्वन्ति ये जनाः ।
> अधोमुखाश्च तिष्ठन्ति कल्पकोटिशतानि च ।।
> सम्पुटैका षडोङ्कारा गायत्री विविधा मता ।
> धर्मशास्त्रपुराणेषु इतिहासेषु सुव्रत ।।
> पंच प्रणवसंयुक्तां जपेदित्यनुशासनम् ।
> जपसंख्याष्टमागान्ते पादो जप्यस्तुरीयन्त्रः ।।

इन श्लोकों से सिद्ध है कि प्रथमतः प्रणव,[1] व्याहृतित्रय, प्रणव,[2] प्रथमपद, प्रणव,[3] द्वितीयपद, प्रणव,[4] तृतीयपद अन्त में पुनः प्रणव[5]—इस प्रकार पञ्चप्रणव संयुक्ता भिन्नपादा गायत्री जप का ही विघान मन्त्र नहीं है, वरन् अनुशासन है। शास्त्र प्रक्रिया का प्रारम्भ अनुशासन शब्द से होता है। अथ योगानुशासनम्, अथ शब्दानुशासनम् सूत्रों में अनुशासन शब्द से वहुत दूरगामी अर्थ-परम्परा का प्रवर्त्तन किया जाता है। देवी भागवतकार भी यही शब्द प्रयोग करते हैं—'जपेदित्यनुशासनम्'। उपर्युक्त क्रम में पाँच प्रणव हो जाते हैं। जहाँ तक प्रचलन का प्रश्न है—लोग एक प्रणव, व्याहृतित्रय और गायत्री अभिन्नपदा के रूप से ही जप कर रहे हैं। यदि शास्त्र सत्य हैं तो अभिन्नपदा गायत्री निश्चय ही ब्रह्महत्या प्रदान करने वाली सिद्ध हो जाती है। यही नहीं, शतकल्पकोटि नरक में अधोमुख आवास भी अनिवार्यतः प्राप्त होता है। मैं समझता हूँ—यह अर्थवाद नहीं है। आज ब्राह्मण वर्ग की जो दुर्दशा है—इस वर्ग के प्रति जितनी घृणा है—यह सब क्या है ? ब्राह्मण वर्ग की दिव्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण, वाक्सिद्धि का अद्वितीय उदाहरण ऋषिपुत्र का वह वाग्वज्र था जिससे वाध्य होकर तक्षक को परीक्षित–दंश हेतु आना ही पड़ा, पर आज जिस युगवद्ध निन्दा का पात्र ब्राह्मण हो गया है—उसमें कहीं यह भी एक कारण न हो ? एतद्देश प्रसूत अग्रजन्माओं ने पृथिवी मंडल के मानव मात्र को चरित्र की शिक्षा दी थी। आज भारत का वहुसंख्यक अग्रजन्मा स्वात्म विस्मरण के उन्माद से ग्रस्त है और पाश्चात्त्य कु-संस्कारों के व्यामोह से मुग्ध है। कुछ गिने चुने तपस्या-प्रवण आदर्श ब्राह्मणों को यदि छोड़ दिया जाय तो शेप अपनी महनीयता, दिव्यता और उच्च आध्यात्मिक उत्तराधिकार से सर्वथा वंचित हैं। क्या इसमें अभिन्नपादा गायत्री का जप कारण हो सकता है ? मैं आप के समक्ष यह जीता जागता प्रश्न उपस्थापित कर रहा हूँ। मैं समझता हूँ—इसमें परम्परा आड़े नहीं आनी चाहिये। परम्परायें कभी-

---

१. स्कन्दपुराण काशीखण्ड ९।५२ ।

२. पद्मपुराण–स्वर्ग खंड ५३।५८ ।

३. छान्दोग्योपनिषद् ३।१२।१ ।

४. देवी भागवत ११।१७।४ ।

On the auspicious Occasion of
75th Birthday of Parampujya Karpatriji Maharaj

With Best Compliments :

M/s. D. & J. Construction
Govt. Contractors, Suppliers &
Transporters
Phaphadih, RAIPUR (M. P.)

Phone : 24830 (Off.)
23368 (Resi.)

Heartiest Compliments :

JAI AMBIKA TIMBER MART
TIMBER MERCHANTS & SAW
MILL OWNERS
NEW TIMBER MARKET, FAFADIH
RAIPUR (M. P.) 492 009

Telephone : 26612

With Best Compliments :

K. K. PATEL & Co.
Forest Contractors & General
Order Suppliers

●

M/s. Ramani Timber Mart
Timber Order Suppliers
New Timber Market
Fafadih, RAIPUR (M. P.)

Phone : 26613

परमपूज्य श्री स्वामी करपात्री जी
महाराज के ७५वीं वर्षगाँठ पर
शतशत प्रणाम सहित

किसान खाद भण्डार
अभनपुर, रायपुर, (म० प्र०)

कभी विकृत भी हो जाती हैं। आलस्य और प्रमाद भी इसमें कारण वनते हैं। यदि इस सम्वन्ध में उदारचेता धर्मधुरीण साधक कोई शास्त्रीय आधार प्रस्तुत करें; जो सर्वमान्य हो, तो उसका प्रचार किया जा सकता है। **यदि सन्मार्ग का सम्पादक मण्डल इस दिशा में किसी आयोजन का सत्प्रयास करे तो यह एक वरेण्य विधान होगा।** इस आयोजन में तुरीयपाद, वीजात्मक पंचोपचार पूजन का रहस्य मुद्राओं का प्रदर्शन और व्याहृति वीजों से तर्पण इन सबका केवल क्रियात्मक कर्मकाण्ड ही नहीं इसका रहस्य गर्भ महत्त्व भी सार्थक रूप से गायत्री जापकों और साधकों तक तथा वोधात्मक रूप से भी समझाया जा सके।

बीजात्मक पञ्चोपचार पूजन के सम्वन्ध में सन्मार्ग के विगत विशेषाङ्क में, महामृत्युञ्जय मन्त्र के सन्दर्भ में, कुछ स्पष्टीकरण किया था। मुद्रायें भी जप के आदि में और अन्त में क्यों की जाती हैं—यह विशेषतः विचारणीय विषय है। मुद्रा की परिभाषा करते हुए—महार्थ-मञ्जरीकार महेश्वरान्द माहेश्वराचार्यवर्य ने स्वोपज्ञ भाष्य में लिखा है—

'मुद्रा स्वात्मनः परमेश्वरत्वोपपादनाय स्वशरीरं प्रति कल्प्यमानः करचरणादिसन्निवेशविशेषो वेषधारण विशेषश्च।'[1]

हम सभी के हाथों की अंगुलियाँ प्रकृति के पंच महाभूतों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अंगुष्ठ के अग्र भाग में अग्नि, तर्जनी में वायु, मध्यमा में आकाश, अनामिका में पृथ्वी और कनिष्ठिका में जल तत्त्व का अधिष्ठान है। हाथ जोड़कर प्रणाम करने में सभी अंगुलियों के सम्मिलन में प्रकृति की साम्यावस्था का द्योतन होता है। मुद्राओं में वैषम्य अवस्थाओं का सन्तुलन जीवन को गतिशील बनाने के लिए अभिनव स्पन्दनों का सृजन करता है। जैसे सुरभि मुद्रा में गाय के थन और दुग्धवाहिनी स्तनिकाओं का आकार, आकाश और वायु को तथा पृथ्वी और जल तत्त्वों के संयोजन करने से बनता है। इन तत्त्वों के संयोजन के उपरान्त ही सविता की भर्ग शक्ति मेधा और महनीय मनीषा का मंगलमय उन्मेष मानव शरीर में सम्भव होता है।

भूर्भुवः और स्वः की सीमा में आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक परिकल्पनाओं के भीतर प्राण, सूर्य और ब्रह्म का आधान सम्भव है। इसीलिए प्रकृति के विभिन्न स्पन्दनों को ऋषियों ने गायत्री-पूर्व की चौवीस मुद्राओं में आकलित किया था। इन्हीं मुद्राओं से देहेन्द्रियपार्थक्य प्रथा का उन्मूलन, पृथिवी से प्रकृति पर्यन्त २४ तत्त्वों का आत्मलयोद्भावन, आन्तर-वाह्य-यामल भाव का स्वात्मसंविद् में अन्तर्भाव तथा लिङ्ग और निर्वाण मुद्राओं के साथ भूचरी और खेचरी का योजन साधक की अन्तर्भूमिका का परिष्कार करते हैं।

गायत्री साधना में यद्यपि उक्त विषय साध्य की सिद्धि में साधन मात्र वनते हैं किन्तु साधकों को यह स्पष्ट विदित है कि साधन के एक एक क्षण साध्य को सिद्ध करने में महान् उपकारी होते हैं।

इसी प्रकार सर्वप्रथम विनियोग में प्रयुक्त ऋषि, छन्द और देवता का भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋषि के सम्वन्ध में एक विचिकित्सा लोगों की सुनी जाती है कि वशिष्ठ वामदेव जैसे ब्रह्मर्षियों ने जिसका दर्शन नहीं किया उसका दर्शन मानव की सत्प्रवृत्तियों और दुष्प्रवृत्तियों के प्रतीक सत् पक्ष और असत् पक्ष के उपमान विश्वामित्र कैसे वेद और ब्रह्ममय मंत्र का दर्शन कर सके। इस प्रश्न को मैंने क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय (भूतपूर्व निदेशक सं० सं० वि. वि.) के समक्ष रखा था। उन्होंने इसका स्पष्ट खण्डन किया था। उनके अनुसार गायत्री के मंत्रद्रष्टा विश्वामित्र नहीं थे। उन्होंने एक शोध प्रवन्ध का नाम भी लिया था, जो मुझे स्मरण नहीं रहा। मैंने विनियोग की चर्चा की तो उन्होंने इसे परम्परागत विकृति नाम दिया था।

जो भी हो विश्वामित्र महनीय मेधा के धनी और मधुमती मनीषा के परिष्कर्त्ता और आविष्कर्त्ता परमर्षि थे। नये-नये ग्रहों के सृजन के लिए अपनी इच्छा शक्ति के वल पर उन्होंने परमाणु जगत का आलोड़न कर डाला—उनका विनियोजन किया और ब्रह्मा के विधि विधान का अभिनव प्रावधान उपस्थित कर डाला। गोधूम की गरिमामयी पदार्थ निर्मिति विश्वामित्र की चेतना का चमत्कार था। ऐसे महर्षि ने यदि विश्वविश्रुता ब्रह्ममयी गायत्री का साक्षात्कार किया तो कोई आश्चर्य नहीं। इसी ऋण को पुरुष परम्परा से हम ढो रहे हैं और आगे भी विनियोग के माध्यम से अपने देश में अवतरित इस महान विभूति का अभिनन्दन श्रद्धापूर्ण भावन और स्मरण हम करते रहेंगे।

विश्व में एक अनन्त चैतन्य का अपरम्पार निरन्तर ऊर्मिल हो रहा है। इसकी चेतनामयी ऊर्मियों के साथ, स्पन्दनों और शाश्वत उन्मेषों के साथ हम तभी लहरा सकते हैं, जब हम उस चेतना के समुद्र में संवरण की शक्ति से समन्वित हो सकें। गायत्री का जप हमको भूर्भुवः और स्वः की सीमा में ही, इस जड़ता के उपक्रम में ही सविता के वरेण्य भर्ग की भव्य अनुभूतियों से भर देता है, और देखते ही देखते हमारी मनीषा मनन के अमृत अन्तराल का स्पर्श करने लगती है। हमारी बुद्धि विकसित हो जाती है और सदसद्विवेक का परिवेश हमें मिल जाता है। जीवन को सफलतापूर्वक जीने में हम समर्थ हो जाते हैं। हमारी इच्छा शक्ति हमको पुकार कर कहने लगती है—

'हम सौ वर्षों तक जियें, अपनी आँखों से अपना सर्वतोमुखी उत्कर्ष देखें। हमारी वाक्शक्ति शाश्वत उद्‌बुद्ध रहे और श्रोत्र सनातन सन्देशों को सुनने में समर्थ रहें। हम दीनता रहित भाव से जीवन के आनन्द का आस्वाद करते रहें।

---

[1] महार्थ मंजरी का. ४२, पृ० १०६ पंक्ति १६-१७।

वैदिक कर्म सिद्धान्त

• श्री आत्मचैतन्य ब्रह्मचारी •

वैदिक धर्म में स्वभाववाद का प्रभाव उस सुविख्यात कर्म सिद्धान्त में है, जिसके अनुसार मानव भाग्य का निर्माण एक अर्ध यांत्रिक रूप में इस जगत में उसके द्वारा किये गये कर्मों से भागवत हस्तक्षेप से स्वतन्त्रता पूर्वक होता है। कुछ विद्वानों ने कर्म सिद्धान्त पर ये आक्षेप किये हैं—(१) यह सिद्धान्त पथभ्रष्ट के मोक्ष के लिए कोई द्वार खुला नहीं छोड़ता, (२) यह सिद्धान्त ऐसे पथभ्रष्टों के प्रति लोगों को उदासीन बना देता है, (३) वे लोग सोचते हैं कि दुःखी जन तो अपने पूर्वकृत कर्मों के कारण ही दुःख भोग रहे हैं, अतः इसमें कोई क्या कर सकता है? ये दुःख तो इन्हें भोगने ही पड़ेंगे, (४) इस प्रकार सुखीजन दुःखीजनों की सहायता करने कभी आगे नहीं आयेंगे। इस प्रकार सारा नीतिशास्त्र (Ethics) व्यर्थ हो जायगा।

उनके ये आक्षेप इसी कारण हैं कि उन्होंने कर्म सिद्धान्त की व्याख्या बहुत ही संकुचित तथा सीमित अर्थों में की है। यदि कर्म शब्द के अर्थ को विस्तृत किया जाय और कर्म के अन्तर्गत मनुष्य के बाह्य व्यापारों के साथ-साथ आन्तरिक भावनाओं, अभिवृत्तियों और संकल्पों को भी शामिल कर लिया जाय, तो कर्म शासन के अधीन मानव जीवन का चित्र वैसा रुक्ष, कठोर तथा नीरस नहीं दीखेगा। क्योंकि किसी दुष्कर्म को करने के बाद होनेवाले पश्चात्ताप तथा उसके बाद से सदा सत्कर्म करने का संकल्प आदि उन शक्तियों को जन्म दे सकते हैं जो उपर्युक्त दुष्कर्म के उदीयमान कुफलों को बाधित या नष्ट कर देंगी। दूसरी ओर सुखीजन भी इस बात की कल्पना करेंगे कि वे भी अपने कर्मों के परिपाक स्वरूप इसी प्रकार कभी दुःख में पड़ सकते हैं और उस अवस्था में उन्हें भी दूसरों की दया तथा सहानुभूति की आवश्यकता होगी, तो वे भी दूसरों के प्रति दया तथा सहानुभूति का भाव दिखायेंगे।

कर्म सिद्धान्त का पूरक पुनर्जन्म सिद्धान्त है। यह अनिवार्य नहीं है कि किसी व्यक्ति के कर्मों के समस्त परिणाम एक ही जीवन की सीमाओं में भोग लिए जायें। इस प्रकार एक जीवात्मा को अनेकानेक जन्मों की श्रृंखला में तब तक बँधना होता है, जब तक कि उसके कर्मों का आय-व्यय बराबर न हो जाय। कर्मों के आय-व्यय के बराबर हो जाने पर जीवात्मा पुनर्जन्म के बंधन से मुक्त हो जाती है और परमात्मा में लीन हो जाती है।

कर्म सिद्धान्त से भिन्न और उसकी अपेक्षा अधिक व्यवहार-मूलक निष्काम कर्म सिद्धान्त है। संक्षेपतः उक्त सिद्धान्त यह है कि यह देखते हुए कि कर्म ही जीवन की आत्मा है, निष्क्रियता अथवा अनिर्णीतता अनुचित है और प्रत्येक व्यक्ति को दृढ़ संकल्प पूर्वक कर्म करना चाहिये परन्तु उसके किसी कर्म में कर्म-फल विषयक चिन्ता नहीं होनी चाहिये। मनोवैज्ञानिक यहाँ एक प्रश्न उठा सकता है—क्या कर्म करने में किसी व्यक्ति की मानसिक दशा नितान्त रूप से निस्पृहता की हो सकती है और क्या उसके मन में कहीं पर कोई ठोस लक्ष्य नहीं होगा? उत्तर में कहा जा सकता है कि मात्र कर्तव्य पालन से प्राप्य आनन्द के रूप में ठोस लक्ष्य होगा और प्रस्तुत सन्दर्भ निस्पृहता का अर्थ केवल कर्तव्य कर्म में संकुचित स्वार्थ की दृष्टि का अभाव है। यह प्रश्न भी किया जा सकता है कि किसी व्यक्ति को स्वार्थहीन क्यों होना चाहिये एवं स्वार्थ शून्यता के आदर्श का तार्किक आधार क्या है? उक्त प्रश्न का यह उत्तर हो सकता है कि स्वार्थ शून्यता अपने में ही शिवम् है तथा अपनी तर्क संमतता के निमित्त वह अपने से परे किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं करती।

भिन्न और परस्परतः विरोधी दीखने वाले विचारों को मिलाने को तथा किसी वस्तुतः और सर्वतोमुखी दर्शन निर्माण की दिशा में वैदिक-मनोवृत्ति ने जो परिश्रम किया है वह अनेक उन सूत्रों, बीजाक्षरों एवं संक्षिप्त वाक्यों में व्यक्त है जो कि लगभग सभी आर्यों के जिह्वाग्र पर वास करते हैं और तनिक क्षोभ के संयोग से ही वाणी के रूप में निकल उठते हैं। एक ऐसा सूत्र है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इसका तात्पर्य है कि जीवनोद्देश्य चतुर्मुख होता है जिसमें परोपकार, अर्थोत्पादन, इन्द्रियजन्य सुख तथा मोक्ष होते हैं। एक अन्य सूत्र है ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग, भक्तिमार्ग। एक तीसरा सूत्र जो कि एक सुसंगठित एवं सुनियोजित जीवन के चार आश्रम स्थलों को निर्दिष्ट करता है जो कि निम्नोक्त है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास।

वैदिक धर्म के पक्ष में यह बात तो नितान्त सत्य है कि यह धर्म अत्यन्त उदार है। यह मानवता की विशालता तथा सत्य की अनेक पक्षीयता में विश्वास करता है। वैदिक धर्म कभी भी कतिपय जड़ सिद्धान्तों की सीमाओं में कुंठित नहीं होता। यह वह धर्म है जो सदा से रहा है और सदा रहेगा। इसका सनातनत्व ही वह तत्व है जिस शक्ति के कारण यह धर्म इतर धर्मों को आत्मसात् करके आत्म रक्षा भी करता है।

ॐकारोपासना

• डा० चाँदप्रकाश मेहरा •

ॐकार परब्रह्म और शब्द ब्रह्म का वाचक है। इसकी उपासना से सर्व सिद्धि प्राप्त होती है। क्या सनातनी, क्या आर्यसमाजी सभी धर्म वाले ॐकार को अपने मंत्रों के साथ लगाते हैं। सिक्ख 'एक ॐकार सद्गुरु प्रसाद' से ही मंगलाचरण करते हैं। जैनियों का गुरु मंत्र 'ओं नमो अरिहंताणम्' प्रसिद्ध ही है। इसी प्रकार बौद्धों का प्रधान मंत्र 'ओं मणिपद्मे हुम्' है। इसी ॐ का अपभ्रंश फारसी में 'अलिम्' और अंग्रेजी में 'आमीन' है। रोते बच्चे अं अं उं उं करके 'ॐ' का ही उच्चारण करते हैं। गूंगे भी ऊँ ऊँ ऊँ करके 'ॐ' का ही उच्चारण करते हैं।

ॐकार प्रणव का दूसरा नाम मात्र है, इसके तीन रंग हैं—सफेद, पीला और लाल। अ उ म इन तीन अक्षरों के संयोग से ॐ अथवा प्रणव होता है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर तीनों देवता; सृष्टि, स्थिति और लय अथवा जाग्रत अवस्था, स्वप्नावस्था और सुषुप्ति या सूक्ष्मावस्था, तीनों अवस्थायें; इच्छा, क्रिया और ज्ञान, ये तीन शक्तियाँ एवं सत्त्व, रजः और तमः ये तीन गुण प्रतिष्ठित हैं। इसी कारण इसको त्रयी या त्रिगुणात्मक भी कहते हैं। प्रणव का यही अ-कार नाद रूप, उ कार बिंदु रूप, म कार कला रूप और ॐ कार ज्योतिः रूप है। साधकगण पहले नाद सुनकर नाद लुब्ध फिर बिंदु लुब्ध और तदनन्तर कला लुब्ध होकर अंत में ज्योति दर्शन करते हैं।

प्राण में से ध्वनित होकर निकलने के कारण इसे 'प्रणव' भी कहते हैं। 'ॐ' अथवा 'प्रणव' वास्तव में 'ओम्' का प्रतीक मात्र है। 'ॐ' का उच्चारण हो ही नहीं सकता। उसकी ध्वनि को अनाहत नाद के रूप में सुना जा सकता है। तेज श्वास लेने पर यह शब्द 'सो ऽहम्' के रूप में या 'ॐ' के रूप में हर मानव को ज्ञात पड़ता है।

हकारन्च सकारन्च लोपयित्वा ततः परं।
सन्धि कुर्य्यात्ततः पश्चात् प्रणवोऽसौ महामनुः॥ (योगस्वरोदय)

'सोऽहं' में से व्यंजन स और ह निकाल दें और फिर संधि करें तो 'सो ऽहम्' का शुद्ध रूप केवल 'ॐ' रह जाता है और यही हृदयस्थ शब्द ब्रह्म रूपी प्रणव ध्वनि ॐकार है। साधकगण अनाहत चक्र का ऊर्ध्वमुख ध्यान करके गुरुपदेशानुसार क्रिया करें (साधना करें) तो सहज ही उनको प्रणव ध्वनि स्पष्ट सुनाई देने लगती है।

हृदयस्थ शब्द ब्रह्म (ध्वनि) रूप ॐकार के अतिरिक्त प्रणव का एक और रूप, वर्ण ब्रह्म रूप (अक्षर रूप) ऊँकार होता है वह भ्रू-मध्य में आज्ञा चक्र के ऊपर (जहाँ सुषुम्णा का अन्त होकर शंखणी नाड़ी का आरम्भ होता है) निरालम्बपुरी में नित्य विराजमान है, तेजोमय तारक ब्रह्म ऊँकार ब्रह्म नाड़ी के आश्रित इसी स्थान पर स्थित है। यही वेदों का प्रतिपाद्य ब्रह्मरूप एवं शिवशक्ति योग से प्रणव रूप है। ओंकार रूपी पलंग पर नादरूपिणी देवी है, उनके ऊपर बिंदु रूप परमशिव विद्यमान है, ऐसा होने से ही ओं-कार होता है अतः शिवशक्ति या प्रकृति पुरुष के संयोग से ही ओंकार बनता है। तंत्र में राजराजेश्वरी रूपी महाविद्या को ॐकार का स्थूल रूप माना गया है।

साधक गण योगानुष्ठान से विधिवत षट्चक्र भेदकर ब्रह्मनाड़ी की सहायता से इस निरालम्बपुरी में पहुँचने पर महाज्योति रूप ब्रह्म-ओंकार अथवा अपने-अपने इष्ट देवता का दर्शन कर सकते हैं एवं प्रकृत निर्वाण पद को पा लेते हैं। सब देवी-देवताओं का बीज स्वरूप वेद प्रतिपाद्य ब्रह्मरूप प्रणव तत्त्व को समझ कर साधन करने से इस तारक ब्रह्म के स्थान पर ज्योतिर्म्मय देवी-देवताओं का साक्षात्कार किया जा सकता है। फिर किसी अन्य साधना की जरूरत नहीं पड़ती।

जिस प्रकार जल में गति होती है और जब वह अपने उद्गमस्थान में मिल जाता है तब उसे शांति मिल जाती है। उसी प्रकार साधक जब जगत् को ईश्वर रूप में देखता है तभी चिर शांति की उपलब्धि उसे होती है। व्यवहार में जगत् को देखते रहने पर भी अपने स्वरूप में स्थिति होने पर ही आनन्द अनुभव होता है।

"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म"—ॐ एकाक्षर ब्रह्म है। मृत्यु के समय इसी एकाक्षरब्रह्म 'ॐ' का ध्यान करने अथवा स्मरण करने से परमगति प्राप्त हो सकती है। जगत् रहने तक जीव आत्मरूप हो जाता है और जगत छूट जाने पर वही ब्रह्म हो जाता है। उस समय स्थूल, सूक्ष्म सब भेद मिट जाते हैं। अतः हमें क्रमशः अक्षर ब्रह्म तक जाना होगा। प्रणव रूप अक्षर ब्रह्म में लीन होने के लिए ही उपासना की जाती है और आत्मा से संबंध होने से वही प्रणव बीज जगत् से जगदातीत ब्रह्म में लय कर देगा। यही प्रणव या 'ॐ' की उपासना का रहस्य है और यही उसका स्वरूप है। ॐ की उपासना जप, स्मरण एवं ध्यान तीन रूप में होती है किंतु उसका जप नहीं हो सकता केवल स्मरण और ध्यान ही किया जाता है। इसमें स्मरण 'स्व-भाव' की प्राप्ति के लिए किया जाता है, उसमें श्वासों के साथ प्रणव की उपासना की जाती है। दिन रात में मनुष्य २१६०० श्वास लेता है। मनुष्य जगत् के कार्यों में प्रमाद कर जाये लेकिन श्वास के साथ की स्वाभाविक उपासना में कमी भूल नहीं हो सकती। ॐ दुं दुर्गायै नमः अथवा ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नमः, ॐ नमो नारायणाय, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय को, ॐ नमो शुद्ध शक्ति, ॐ नमो सिद्धं, ॐ ह्रीं नमः इनमें से किसी एक मंत्र को स्मरण मंत्र बनाया जा सकता है। मंत्र के जप और स्मरण में तन्मयता होनी आवश्यक है। हर एक

स्मरण में मंत्र का जप भी हो जाता है। यही प्रणव उपासना का रहस्य है। इसी प्रकार 'राम' द्व्यक्षरी स्मरण मंत्र है। प्रणव के साथ संबंध स्थापित करने के लिए ही उसे ध्यानात्मक कहा है।

'ॐ' के स्वरूप का भी विचार कर लिया जाय। योगीजन बिंदु युक्त ॐकार का ध्यान करते हैं। वह पूर्ण मात्रिक ॐकार है। अर्थात् वह त्रिमात्रिक (प्रकृत) का ध्यान करना है लेकिन जो मंत्र के रूप में जपा या बोला जाता है वह एकमात्रिक है। त्रिमात्रिक ॐ का स्वरूप ही अलग है और उसी का योगीजन नित्य ध्यान करते हैं (जपते नहीं हैं) क्योंकि उसमें अखंड तैलधारावत् जप अनायास ही होता रहता है और वहीं स्वरूप में स्थिति हो जाती है इसीलिए ॐ के जप को ठीक तरह समझ लेने की आवश्यकता है।

मन को लय करने के लिए 'अनाहत शब्द' या नाद से बढ़कर कोई साधन नहीं हो सकता। क्योंकि अनाहत शब्द की ध्वनि से उसमें जो ज्योति है, उसमें ही मन को लय करने पर मोक्ष मिल सकता है। वही ज्योति आत्म तत्त्व का बोध कराती है, क्योंकि आत्म स्वयं ज्योतिर्मय है। सारांश यह है कि त्रिमात्रिक ॐ का ध्यान किया जाता है, जप नहीं। अन्त में जो ॐ की ध्वनि उत्पन्न होती है वही अनादि अनंत है। जहाँ निर्गुण निराकार है वहीं व्यष्टि समष्टि में भी वह है। वह क्रम सदा से चला आ रहा है। वह सूक्ष्म से अखण्ड चला आ रहा है। अतः सूक्ष्म प्रकृति के क्षेत्र में मन स्थिर होने पर वह उस सूक्ष्म शब्द को ग्रहण करेगा। वही ॐकार काम, मोक्ष का देनेवाला हो सकता है। अतएव जब तक बिंदु युक्त ॐकार का उच्चारण चलता रहता है तब तक कल्याणकारी है; किन्तु जहाँ वह टूटता है, वहीं नाशकारी हो जाता है। मंत्र के शब्दों के उच्चारण से जो कंपन या लहर उत्पन्न होती है उसका प्रभाव भी अवश्य पड़ता है। प्रत्येक मंत्र जाप का प्रभाव बहुत कुछ अंशों में स्वराघात पर अवलंबित होता है। एक ओर मधुरता से बोलना और दूसरी ओर क्रोध या आवेश में कठोर शब्द कहना, दोनों में जो भी अंतर है उस पर ध्यान देकर जप करने से ही लाभ मिलता है। अतः मंत्रों का सही सही उच्चारण संत, महात्माओं या किसी सद्गुरु से समझ कर ही जाप करने से लाभ होगा।

योग सूत्र (१।२८) में कहा है 'तज्जपस्तदर्थभावनम्'।

प्रणव जप में उसके अर्थ का चिंतन करने से ईश्वर में मन लगता है। प्रणव का अर्थ है ओंकार, यह ओंकार साढ़े तीन मात्रा का है अतएव इसको सार्ध त्रिवलयाकृति कुंडलिनी शक्ति कहते हैं। इसी से सृष्टि, स्थिति और लय है। सब बातों को त्याग कर इसके जप में ही परमात्मा प्रकाशित हो जाता है। एक बड़े घड़ियाल में एक बार डंका लगाने से जो शब्द होता है, ओंकार की ध्वनि भी वैसी ही होती है, चित्त को एकाग्र करने पर इस ॐकार की ध्वनि सुनाई देती है।

"ध्वनौ तस्मिन् मनोदत्वा यदा तिष्ठति
निर्भयः तदा संजायते तस्यलयश्च"।

पुरुष क्रम से उस ध्वनि में स्थिर चित्त को लगाकर निर्भय स्थित होता है तब क्रम से उसमें लय हो जाता है। इस ध्वनि का सुनना कुछ अत्यन्त कठिन नहीं है। निर्जन स्थान में शांतचित्त होकर कुछ काल बैठने पर ध्वनि सुनने में आ सकती है।

पहले कुछ परिश्रम पड़ता है परन्तु विशेष रूप से अभ्यास हो जाने पर सहज में ही ध्वनि सुनाई देने लगती है। क्रिया योग में यही प्रणव का जप है। इस प्रणव के जप में प्रणव के अर्थ रूप ईश्वर के स्वरूप का विचार करना चाहिये। ब्रह्मचतुष्पदी में कहा है—

ओमुच्यते यो ध्वनिरत्र सा वाक्,
प्राणः स्वरो यत् प्रतिपद्यतेऽस्मात्।
अर्थं प्रतीव्यै पठितं मनस्तत्,
प्रजापतिः सप्रणवस्त्रि धातुः॥

इस ओम् अक्षर में जितना सा ध्वनि भाग है, जो कान से पकड़ा जाता है और जिसके द्वारा एक वर्ण दूसरे वर्णों से अपनी भिन्नता रखता है वही भाग वाक् है, जो वर्ण अपनी भिन्नता रखता है वही भाग वाक् है जो इसमें स्वर का भाग है जिसके द्वारा चढ़ाव-उतार या उच्चारण में तीव्र—कोमलता अर्थात् ऊँची आवाज या धीमी आवाज आदि में जो अन्तर किया जाता है वही इसमें प्राण का भाग है, और ओम् शब्द को सुनकर उसके द्वारा जो किसी अर्थ पर बुद्धि दौड़ जाती है, वही इसमें मन का भाग है। यद्यपि ये तीनों भाग प्रत्येक शब्द में हो सकते हैं और इसी से बिना संकोच हम प्रत्येक शब्द को प्रजापति का नाम भी कह सकते हैं, तथापि उन शब्दों में विशेष कर ओम् शब्द को इस कारण प्रजापति के नाम से कहा कि बहुत से धर्म इस ओम् शब्द में दिखाई देते हैं।

जीव के शरीर में एक प्रकार की गर्मी पाई जाती है, उसे वैश्वानर अग्नि कहते हैं। यह अग्नि दो प्रकार से उत्पन्न होती है—एक प्राकृतिक नियम से और दूसरी कृत्रिम व्यापार से। तात्पर्य यह है कि पृथ्वी का प्राण इस शरीर पर अपना अधिकार करता है। इन प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों के अतिरिक्त तीसरा प्राण अन्तरिक्ष का है। वह एक प्रादेश १०½ अंगुल का होकर ठीक हृदय से बँधा हुआ रहता है, उस प्राण को व्यान वायु कहते हैं। इसी व्यान के आधार पर सूर्य का प्राण पृथ्वी के प्राण से संयोग करता है, सूर्य का प्राण पृथ्वी के प्राण को दबाना चाहता है किंतु पृथ्वी का प्राण हृदय से बँधा रहने के कारण एकदम नष्ट नहीं होता, केवल दबकर व्यान के नीचे की ओर आकर फिर दबाव की जगह न पाकर एकदम उठने के लिए जोर करता है। उसी के बल से सूर्य का प्राण धक्का खाकर अनन्त शब्द उत्पन्न करता हुआ उस बिंदु के चारों ओर दूर-दूर तक इस प्रकार के शब्द फैलते हुए चलते हैं जैसे किसी अग्नि के कणों से प्रकाश की धारा चारों ओर फैलती हो या जिस प्रकार सूर्य के चारों ओर प्रकाश फैला हुआ है, इसमें भेद इतना ही है कि अग्नि का प्रकाश ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों अग्नि कण से फिर दूसरी और प्रकाश की धाराएँ सिलसिलेवार पीछे से आती रहती हैं, इसलिए बिम्ब से प्रकाश की अंतिम सीमा तक प्रकाश भरे हुए से प्रतीत होते हैं किंतु यह शब्द आघात से उत्पन्न होता है। वह आघात यदि एक ही बार हुआ तो वह पहला शब्द बिंदु उत्पन्न होते ही अनन्त शब्दों को उत्पन्न कर आप मर जाता है, अतः जो शब्द की धारा आगे बढ़ती जा रही है उसके पीछे

फिर वह शब्द नहीं रहता। इसकी गति ठीक उसी प्रकार होती है जिस प्रकार समुद्र के जल में एक ढेला डालने पर उस जगह में चारों ओर लहर का चक्कर नया-नया बनता हुआ चारों ओर फैलता हुआ जाता है। गणेशतापिनी उपनिषद् में कहा है—

"ततश्च ॐ इति ध्वनिरभूत् स वै गजाकारः"

बाद ॐ ऐसी ध्वनि हुई, वह गजाकार अर्थात् गोल है इसलिए गणपति का स्वरूप भी गोल यानी ॐ है। हाथी गोल-मटोल ही होता है।

सर्वप्रथम जो शब्द उत्पन्न होता है उस आघात बिंदु से चारों ओर फैलते हुए शब्दों को नाद कहते हैं। यही नाद अपने कानों पर आता है, तब हम शब्द सुनते हैं। इस बिंदु और नाद को समूह रूप में 'बीज' कहते हैं। उसी बीज का नाम 'ओम्' है। वेद ऋक्, यजु और साम के भेद से तीन प्रकार का है, वह वास्तव में वाक् अर्थात् शब्द है। यह शब्द ईश्वर के शरीर में हृदय वैश्वानर से उत्पन्न होता है। अनाहत नाद यानी बिना ठोकर खाया हुआ नाद, जो ईश्वर के शरीर में अर्थात् संपूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, उसका बिंदु ईश्वर का हृदय है और बिंदु का नाद संपूर्ण ब्रह्माण्ड है। उसी नाद से सब देवता और सभी भूत जो वास्तव में वाक् के ही भेद हैं, उत्पन्न होते हैं, इसीलिए वह बिंदु या उसका नाद संपूर्ण जगत् का बीज रूप होता है। उसी ईश्वर से अनाहत नाद उत्पन्न होता है, इसलिए उसको भी ओम् कहते हैं।

इसको 'ओम्' कहने के और भी दो कारण हैं—एक तो यह कि यदि 'ओम्' शब्द को बिना रुके बोलते ही रहें तो उसकी ध्वनि अनाहतनाद की ध्वनि से बिल्कुल मिलती-जुलती होती है। दूसरा यह कि यदि अनाहत नाद को ओम् की ध्वनि में मिलान करें तो भिन्नता प्रतीत नहीं होती। अतः अनाहत नाद को सुनकर ऐसी कल्पना हो उठती है मानो यह जीव और ईश्वर भी 'ओम्' शब्द का निरन्तर उच्चारण कर रहे हैं। बस इस सादृश्य को देखकर ही उस अनाहत नाद रूपी जगद् बीज को 'ओम्' यह नाम दिया है। अतः छान्दोग्य उपनिषद् (१।५।१) में कहा है—

"आदित्य उद्गीथ एव प्रणव ओमिति ह्येषस्वरन्नेति"

सूर्य उद्गीथ है और यही प्रणव भी है क्योंकि यह ॐ की ध्वनि जैसा उच्चारण करता हुआ गमन करता है। इस वेद के बीज रूप प्रणव के प्रवर्तक अनाहत नाद का स्थान जीव के शरीर में दहराकाश (छोटा आकाश) है और ईश्वर के शरीर में पुराणाकाश अर्थात् ब्रह्माण्ड है। वेदमय सत्य प्रजापति ओंकार नाम से कहा जाता है—

सत्य प्रजापतौ ब्रह्मक्षरो योस्ति त्रयीमयः।
प्रणवेन त्रिमात्रेणाक्षरेण व्यपदिश्यते॥ —ब्रह्मसमन्वय

अब शक्ति साधकों के भी 'ॐ' संबंधित विचार ज्ञातव्य है।

बिंदु युक्त त्रिकोण माया सहित ईश्वर अथवा शक्ति युक्त शिव का ही नामान्तर है, यही सम्मिलित रूप से चतुर्विध वाक् तत्त्व की समष्टि है अर्थात् शब्द ब्रह्म स्वरूप है। इस पर यथार्थ अधिकार होने से शब्दातीत, वेद के अगोचर, अप्रमेय, निष्कल और निरञ्जन, तत्त्वातीत सत्ता का साक्षात्कार होता है। जिसको ॐकार या प्रणव कहा जाता है, वह अर्द्ध मात्रा युक्त त्रिकोण का ही नामान्तर है। यही योगशास्त्र की कुंडलिनी या शब्द मातृका है। इस त्रिकोणात्मक योनि की तीन रेखाएँ जब एक सरल समरेखा में परिणत होंगी तब वह रेखा अर्धमात्रा में पर्यवसित हो जायगी और अर्धमात्रा बिंदु में विलीन होकर अव्यक्त हो जायेगी, तब मध्यस्थ बिंदु आवरण मुक्त होकर बिंदु भाव से अतीत, सर्व-विकल्प रहित अद्वैत सत्ता में विलीन हो जायेगा।

दिव्य मानसिक आत्म रमण आनन्द से (परब्रह्म की व्यञ्जना केवल 'आनन्द' शब्द में निहित है) बिंदु का उद्भव हुआ, जो श्री विद्यारूपिणी है। वही प्रणव रूप बना। यथा—

प्रणवः सुन्दरीरूपः कलासप्तक संयुतः। (शक्ति संगम तंत्र, काली खण्ड)

अर्थात् "षट्कला रूप षट् शिव (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, परमशिव अथवा कामेश) बने और बिंदु सुन्दरी रूप हुआ।" इस बिंदु से समस्त मातृकाएँ बनीं। यथा—

बिंदु ध्वनिसकाशात्त् प्रत्येकं वर्ण जातयः।
मातृकार्णास्ततो जाता अक्षरेति यथा भवन्॥ (शक्ति संगम तंत्र)

इन मातृका वर्णों से समस्त जगत् की उत्पत्ति हुई—

'स्थूल सूक्ष्म विभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिर्मातृकात्' (गौरी कञ्चुकी तंत्र)

इस तरह निखिल अनन्त ब्रह्माण्ड युक्त सृष्टि की रचना हुई। इसी प्रकार से अ क थ आदि आत्म त्रिकोण भी प्रणवात्मक ही है—

बिंदुत्रयात्मकं स्वात्मशृङ्गारं विद्धि सुन्दरम्।
मिश्रं शुक्लं च रक्तं च पुराणं प्रणवात्मकम्॥ (रहस्याम्नाय)

सृष्टि का आदि कारण होने से यह बीज ही 'कामकला बीज' कहलाता है, क्योंकि मंत्रशास्त्र विवरण देता है कि सहस्रार की कर्णिका के अन्तर्गत द्वादशदल कमल के मध्य मणि पीठ में 'ह—स' अक्षर ही श्वास-प्रश्वास के मूल में हैं। यथा—

'व्यामृशामि युगमादिहंसयोः' ॥४॥ (श्री गुरुपादुका पञ्चक)

जिनसे—

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
हकारस्य सकारस्य लोपे कामकला भवेत्॥ (शक्ति संगम तंत्र)

इस प्रकार बहिर्गत तथा अन्तर्गत श्वास द्वारा निर्मित पूर्व तथा उत्तर अजपा ('हंसः') ही प्रणव का मूल है और यही कामकला बीज है।

'हंसः, सोऽहं' में 'पक्षद्वय त्यागात्' अर्थात् हकार-सकार के लोप से प्रणव बना। बिंदु एवं विसर्ग ही कामकलात्मक त्रिकोण बन गये।

मुखं बिंदु वदाकारं तदधः कुचयुग्मकम्।
सोऽहमित्यत्र देवेशि प्रणवः परिनिष्ठितः॥

अर्थात् पूर्ण वर्ण माला ही उत्पन्न हो गयी। जिसका आदि अक्षर 'अ' है और अन्तिम 'ह' है। इसलिए जीव अपने को 'अहम्' नाम देता है। और सुनिये—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
एते पञ्च महाप्रेताः प्रणवं च समाश्रिताः॥

फोन { कार्यालय : ६५९५९
निवास : ६५९४९

तार : सोसाइटी

आधुनिक एवं कलात्मक

स्वर्ण आभूषणों के

निर्माता एवं विक्रेता

सोसाइटी ज्वेलर्स

(सोसाइटी भवन) बिरहाना रोड, कानपुर

कृपया

अपने जवाहरात तथा आभूषणों का सही मूल्यांकन कराकर
"स्टेट ड्यूटी", "वेल्थ टैक्स" के लिए नक्शा प्रेषित करने हेतु परामर्श करें।

शिवस्वरूप अग्निहोत्री
रजि० नं० १९

ओमप्रकाश अग्निहोत्री
रजि० नं० ३६

(भारत सरकार द्वारा नियुक्त मूल्यांकन कर्त्ता)

FOR THE MEN WHO BELIEVE IN POWER OF HANDS

ROYAL HAND TOOLS

THE NEW NAME IN QUALITY, DURABILITY, DEPENDABILITY, PERFECTION, PRECISION, ACCURACY IN FORGED HAND TOOLS

MANUFACTURED BY:
ELJAY INDUSTRIES
(PROP. LACHHMANDAS JAIKISHANDAS & SONS)
HEAD OFFICE : 6692, KHARI BAOLI, DELHI-110006 ☐ A-35, G.T. KARNAL ROAD, INDUSTRIAL AREA, DELHI-110033
PHONES : HEAD OFFICE: 23-1641, 23-3056 ☐ WORKS : 71-2474 CABLE : EPOXYPLAST

VIKAL P

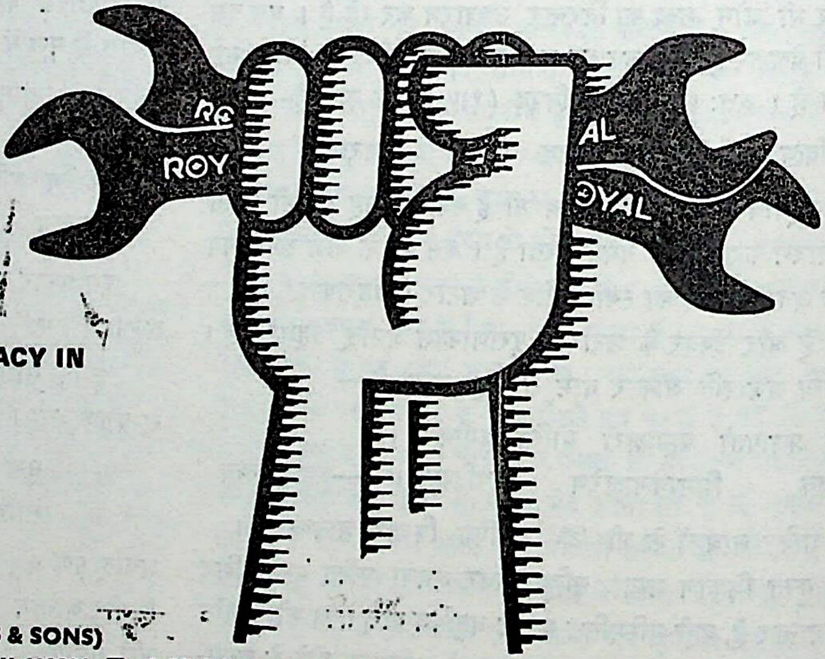

ब्रह्मादयश्चतुष्पादाः कशिपुस्तु सदाशिवः ।
आच्छादनं तु कामेशस्तत्रस्था सुन्दरी कला ॥

(शक्ति संगम तंत्र)

'ह' से श्वास बाहर को जाता है तथा 'स' से अन्दर को आता है। इसी समय प्रश्वास-श्वास से उल्टा अर्थात् 'सोऽहं' की उत्पत्ति ध्वन्यात्मक होती हैं। दोनों के अनाहत चक्र पर संघर्ष से वायुमय प्रणव की अनाहत ध्वनि होती है और ऊर्ध्वगति होने से आज्ञा चक्र पर स्थिति हो जाती है। उपर्युक्त कथन से आगम द्वारा यह सिद्ध होता है कि 'प्रणव श्रीविद्या का वीज है और कामकला रूप है।' इस सुन्दरी श्रीविद्या रूप विंदु से नाद रूप पृथक् विंदु वना जो 'कामेश्वर' अथवा 'परमशिव' कहलाया। यथा—

प्रपञ्चमूला या शक्तिः प्रपञ्चेशी प्रकीर्तिता ।
तन्मायारूपधारित्वं प्रपञ्चात्मा शिवो भवेत् ॥

(शक्ति संगम तंत्र)

इस प्रकार इस विंदु ध्वनि से वर्णमाला रूप पचास तत्त्वों की उत्पत्ति हुई जो सृष्टि निमित्त पृथक् पृथक् तत्त्व वने और महाप्रल्यान्त में श्री आद्या की मुण्ड माला में परिणत हुए। यथा—

विंदुध्वनिसकाशात्तु प्रत्येकं वर्णजातयः ।
मातृकार्णास्तदा जाता अक्षरेति तदाभवन् ॥

(महाकाल संहिता, दक्षिण खण्ड)

ये सभी वर्ण इस प्रकार प्रणव से उत्पन्न हुए हैं और सभी शक्ति युक्त हैं। यथा—

'वर्णनां शक्ति रूपं च तद् ब्रह्म परिकीर्तितम् ।'

विंदु रूप श्रीविद्या ने परमशिव को पहले ही वर दिया था कि, 'मैं तुम में प्रवेश कर तुम्हें शक्ति प्रदान करूँगी।' यथा—

अहं विशामि त्वद्देहे शक्त्या युक्तो भव प्रभो ।
यां विना जननी कापि नैव कार्यं विभाविनी ॥ (कुलचूड़ामणि तंत्र)

सामान्य, साधना रहित मनुष्य के लिए प्रणव का नौ करोड़ जप एक पुरश्चरण वताया गया है और कलियुग में इस प्रकार के चार पुरश्चरण आवश्यक हैं। (चौगुना जाप अथवा चार पुरश्चरण करने का वास्तविक अर्थ यही है कि प्रणव का जाप वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती व परा में क्रमशः उक्त संख्या में क्रमशः करने से अर्थात् प्रत्येक में नौ कोटि जाप करने से सिद्धि मिलती है।) पर कवचादि तथा न्यासादि से वज्रवत् हुए साधक द्वारा वीर साधन से याममात्र में ही सिद्धि लाभ हो सकता है। यथा—

वीरसाधन मार्गेण शिथिलोऽपि हि सिद्धयति ।
याममात्रेण संसिद्धिर्वीर साधन योगतः ॥

(आदिनाथ संहिता)

प्रणव त्रिपुरा रूप और त्रैपुर विषयक (तंत्र का विषय) है, इसलिए इसमें वीर-साधन शीघ्र सहायक होता है।

वास्तव में कुण्डल पक्ष युक्त प्रणव ही कुल-कुंडलिनी है। इसका साधन अन्य प्रकार से संभव नहीं। केवल मात्र वीरसाधन ही इसको अन्तर्मुखी वना कर समाधि आदि दे सकता है। प्रपञ्चसार तंत्र में कहा है—

सकारं च हकारं च लोपयित्वा प्रयोजयेत् ।
संधि वै पूर्णरूपाख्यं ततोऽसौ प्रणवो भवेत् ॥२१॥ (चतुर्थ पटल)

यही प्रणव अथवा तार-कुण्डलिनी शक्ति है। जैसा कि प्रपञ्चसार तंत्र में निरूपण किया गया है—

अप्यव्यक्तं प्रलपति यदा कुण्डलिनी तदा ।
मूलाधारे विसरति सुषुम्नावेष्टिनी मुहुः ॥५१॥
शक्तिः कामाग्निनादात्मा गूढ़मूर्त्तिः प्रवर्तते ॥५३॥
तदा तां तारमित्याहुरोमात्मेति वहुश्रुताः ।
तामेव शक्ति ब्रुवते परमात्मेति चापरे ॥५४॥
त्रिगुणा सा त्रिदोषा सा त्रिवर्णा सा त्रयी च सा ।
त्रिलोकी सा त्रिमूर्तिः सा त्रिरेखा सा विशिष्यते ॥५५॥
एतेषां तारणात्तारः शक्तिस्तद्धृतिशक्तितः ।
यदा चतुर्द्धा गुणिता सूक्ष्मादि स्थान वाचिका ॥५६॥

(प्रपञ्चसार पटल—२)

अर्थात् मूलाधार स्थित कुण्डलिनी ही प्रणव रूप है। किस प्रकार उस प्रणव का आन्तरिक उच्चारण मोक्षदायक है, ऐसा कहा जाता है—

वीजोच्चारो जाग्रद्बिन्दुः स्वप्नः सुषुप्तिरपि नादः ।
शक्त्यात्मकं तुरीयं शान्ते लय आत्मनस्तुरीयान्तम् ॥ (१९ पटल)

जयद्रथ यामल में भी कुण्डलिनी का यही विवरण मिलता है। स्वर, स्पर्श और अन्तःस्थ—ये त्रिविध वर्ण समूह उसके तीन वलय (अ क थादि त्रिगुणमय) वनाते हैं तथा शेष वर्ण अर्धवलय का निर्माण करते हैं। यथा—

अकुलं शिवमित्याहुः कुलं कुण्डलिनी मता ।
अणुमात्रशरीरा सा सार्धत्रिवलया स्मृता ॥
स्वरैः षोडशभिः पूर्वं स्पर्शैस्तत्स्याद् द्वितीयकम् ।
अन्तः स्थवर्णैर्घटितं वलयं स्यात्तृतीयकम् ॥
शेषवर्णैर्भवेदर्धं सार्द्धत्रिवलयं भवेत् ।

इसी प्रकार कङ्कालमालिनी तंत्र भी जीवात्मा के युञ्जुना में प्रणव का प्रयोग वताता है। यथा—

आकृष्य प्रणवेनैव जीवात्मनं नगेन्द्रजे ।
कुण्डलिन्या सह प्राणं गन्धमादाय साधकः ।
'सोऽहं' तु मनुना देवीं स्वाधिष्ठाने प्रवेशयेत् ॥ ॥इति॥

प्रणव त्रिपुरा का विषय है, इसलिए त्रैपुरशास्त्र अथवा तंत्रशास्त्र ही इसके रहस्य के उद्घाटन में विशेष प्रकाश डाल सकता है। तंत्र में सभी शब्द त्रैपुर अथवा तीन प्रकार के अर्थवाची हैं। ऊपरी अर्थ साधारण तथा घातक एवं हानिकारक सिद्ध हो सकता है। इस त्रैपुर विषय में

अपना अनुसंधान भ्रान्तिपूर्ण हो सकता है। उदाहरणार्थ बीज कूट आदि का उच्चारण मात्र भी केवल श्रीगुरु से ही ज्ञात हो सकता है, अन्यथा कदापि नहीं ज्ञात हो सकता । जैसे प्रणव के लिए लिखा है—

"अर्ध मात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ।"

(रात्रिसूक्त, श्रीदुर्गासप्तशती)

इस अनुच्चार्य का आन्तर उच्चारण गुरु गम्य है, क्योंकि प्रणव अथवा किसी भी बीज का वाह्य उच्चारण वैखरी द्वारा असंभव है। यदि कोई उच्चारण करेगा भी तो वह सर्वथा अशुद्ध एवं अपूर्ण होगा।

'गुरुपदेशात्तद्गम्यं नान्यथा शास्त्रकोटिभिः ।।'

इसका उच्चारण केवल मध्यमा द्वारा ही किया जा सकता है। विना चैतन्य मंत्र के अथवा वीर-साधना के मध्यमा का उदय केवल स्वप्नवत् है। यथा—

'सिद्ध मंत्रगुरोर्दीक्षा लक्षमात्रेण सिद्धिदा ।' (सिद्धिमत–रहस्य)

पर वीर-साधनों से पूर्ण निष्पाप हो जाने पर शक्तिपातादि से कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है। जिसका लक्षण वायु का निरन्तर भक्षण है—'वायुभक्षी यथा सर्पः कुण्डलिनी वायुभक्षिणी ।'

(रुद्रयामल)

इस प्रकार अखण्ड पूरक योग से (निरन्तर केवल पूरक प्राणायाम करने से) जब मध्यमा का उदय होता है, तो आगे का मार्ग सहज ही हो जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ :

१. प्रणव का रहस्य, लेखक श्रीयुत् कालीचरणजी पंत, कल्याण मासिक पत्र का 'उपासनांक'।
२. 'कल्प वृक्ष', उज्जैन के विविध अंक।
३. "चित्त निरोध तथा कुंडलिनी शक्ति चैतन्य करने के कुछ सरल उपाय", लेखक चाँद प्रकाश मेहरा, अनुभूत योगमाला, नरालोकपुर का 'साधनांक उत्तरार्ध', सितम्बर, १९७३ का अंक।
४. कामकला तत्त्व, लेखक 'आयुर्वेद वारिधि' डा० चाँद प्रकाश मेहरा, सन्मार्ग, वाराणसी का 'आगम विशेषांक', अगस्त १९८०।
५. 'ॐ कार–जप-विधि', लेखक पं. शिवदत्त शर्मा (अप्राप्य)।
६. सौन्दर्यलहरी, हिन्दी व्याख्या सहित, लेखक स्वामी विष्णुतीर्थजी महाराज।

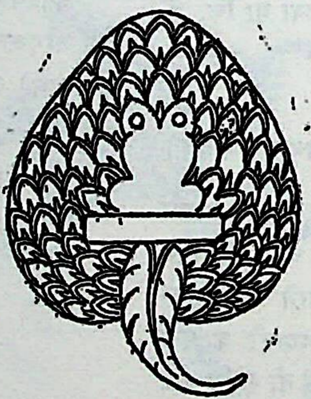

वेदस्वरूप

• डॉ० युगलकिशोर मिश्र •

भारतीय मान्यता के अनुसार वेद सृष्टिक्रम की प्रथम वाणी है।[1] फलतः भारतीय संस्कृति का मूलग्रन्थ वेद सिद्ध होता है। पाश्चात्य विचारकों ने ऐतिहासिक दृष्टि अपनाते हुए वेद को विश्व का आदि ग्रन्थ सिद्ध किया। अतः यदि विश्व-संस्कृति का उद्गम स्रोत वेद को माना जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं है।

वेद शब्द और उसका लक्षणात्मक स्वरूप—शाब्दिक विधा से विश्लेषण करने पर वेद शब्द की निर्ष्पत्ति √विद्-ज्ञाने धातु से घञ् प्रत्यय करने पर होती है। अतएव विचारकों ने कहा है कि—जिसके द्वारा धर्मादि पुरुषार्थ चतुष्टय सिद्धि के उपाय बतलाये जायें, वह वेद है।[2] आचार्य सायण ने वेद के ज्ञानात्मक ऐश्वर्य को ध्यान में रखकर लक्षित किया कि—अभिलषित पदार्थ की प्राप्ति और अनिष्ट परिहार के अलौकिक उपाय जो ग्रन्थ बोधित करता है, वह वेद है।[3] यहाँ यह ध्यातव्य है कि आचार्य सायण ने वेद के लक्षण में "अलौकिकमुपायं" यह विशेषण देकर वेदों की यज्ञमूलकता प्रकाशित की है। आचार्य लौगाक्षि भास्कर ने दार्शनिक दृष्टि रखते हुए—अपौरुषेय वाक्य को वेद कहा है।[4] इसी तरह आचार्य उदयन ने भी कहा है कि—जिसका दूसरा मूल कहीं उपलब्ध नहीं है और महाजनों अर्थात् आस्तिक लोगों ने वेद के रूप में मान्यता दी हो, उन आनुपूर्वी विशिष्ट वाक्यों को वेद कहते हैं।[5] आपस्तम्बादि सूत्रकारों ने वेद के स्वरूपावबोधक लक्षण करते हुए कहा है कि—मन्त्र और ब्राह्मणात्मक वेद है।[6] आचार्य चरण स्वामी श्री करपात्री जी महाराज ने दार्शनिक एवं याज्ञिक दोनों दृष्टियों का समन्वय करते हुए वेद का अद्भुत लक्षण इस प्रकार उपस्थापित किया है—"शब्दातिरिक्त' शब्दोपजीविप्रमाणातिरिक्तं च यत्प्रमाणं तज्जन्य प्रमिति विषयानतिरिक्तार्थको यो यस्तदन्यत्वे सति आमुष्मिकसुखजनकोच्चारणकत्वे सति जन्यज्ञानाजन्यो यो प्रमाणशब्दस्तत्त्वं वेदत्वम्।"[7]

उपर्युक्त लक्षणों की विवेचना करने पर यह तथ्य सामने आते हैं कि—ऐहिकामुष्मिक फलप्राप्ति के अलौकिक उपाय का निदर्शन करने वाला अपौरुषेय विशिष्टानुपूर्वीक मन्त्र ब्राह्मणात्मक शब्दराशि वेद है।

वेद के दो भाग : मन्त्र और ब्राह्मण—आचार्यों ने सामान्यतया मन्त्र और ब्राह्मण रूप से वेदों का विभाजन किया है।[1] इस में मन्त्रात्मक वैदिक शब्दराशि का मुख्य संकलन संहिता के नाम से प्राचीनकाल से व्यवहृत होता आया है। संहितात्मक वैदिक शब्दराशि पर ही पदपाठ, क्रमपाठ एवं अन्य विकृतिपाठ होते हैं। यज्ञों में संहितागत मन्त्रों का ही प्रधान रूप से प्रयोग होता है।[2]

आचार्य यास्क के अनुसार मन्त्र शब्द मननार्थक √मन् धातु से निष्पन्न है।[3] पाञ्चरात्र संहिता के अनुसार मनन करने से जो त्राण करते हैं, वे मन्त्र हैं।[4] अथवा मत=अभिमत्त पदार्थ के जो दाता हैं वे मन्त्र कहलाते हैं। महर्षि जैमिनि ने मन्त्र का लक्षण करते हुए कहा है—"तच्चोदकेषु मन्त्राख्या।" इसी को स्पष्ट करते हुए आचार्य माधव का कथन है कि—याज्ञिक विद्वानों का "यह वाक्य मन्त्र है"—ऐसा समाख्यान (=नाम निर्देश) मन्त्र का लक्षण है। तात्पर्य यह है कि याज्ञिक लोग जिसे मन्त्र कहें वही मन्त्र है। वे याज्ञिक लोग अनुष्ठान के स्मारक आदि वाक्यों के लिए मन्त्र शब्द का प्रयोग करते हैं।[5] आचार्य लौगाक्षि भास्कर ने "अनुष्ठान (प्रयोग) से सम्बद्ध (समवेत) द्रव्य देवतादि (अर्थ) का जो स्मरण कराते हैं, उन्हें मन्त्र कहा है।[6] इस प्रकार तत्तत् वैदिक कर्मों के अनुष्ठान काल में अनुष्ठेय क्रिया एवं उसके अङ्गभूत द्रव्य-देवतादि का प्रकाशन (स्मरण) मन्त्र का प्रयोजन है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि शास्त्रकारों के अनुसार "प्रयोगसमवेतार्थस्मारकत्व" मन्त्रों का दृष्ट प्रयोजन है, अतः यज्ञकाल में मन्त्रों का उच्चारण अदृष्ट प्रयोजक है यह कल्पना नहीं करनी चाहिये, क्योंकि दृष्ट फल की संभावना के विद्यमान

---

१. यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। श्वेताश्वतर उप०, ६।१८।

२. वेद्यन्ते ज्ञाप्यन्ते धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टयोपाया येन स वेदः। का० श्रौ० भू०, पृ०, ४।

३. इष्टप्राप्त्यनिष्ट परिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः। का० मा० भू०।

४. अपौरुषेयं वाक्यं वेदः। अर्थ संग्रह, पृ० ३६।

५. अनुपलभ्यमानमूलान्तरत्वे सति महाजनपरिगृहीतवाक्यत्वं वेदत्वम्।

६. मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्, ७. वेदार्थपारिजात, पृ० २०।

१. आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि (कौ० सू०, १।३)।

२. अपि च यज्ञकर्मणि संहितयैव विनियुज्यन्ते मन्त्राः (नि० १।१७ पर दुर्ग)।

३. मन्त्रा मननात्।

४. मननान्मनुशार्दूल त्राणं कुर्वन्ति वै यतः। ददते पदमात्मीयं तस्यान्मन्त्राः प्रकीर्त्तिताः॥ ई० स०, ३।७।९।

५. याज्ञिकानां समाख्यानं लक्षणं दोषवर्जितम्। तेऽनुष्ठानस्मारकादौ मन्त्र शब्दं प्रयुञ्जते॥ जै० न्या० मा०, २।१।७।

६. प्रयोगसमवेतार्थ स्मारका मन्त्राः। अ० स०, पृ० १५७।

परमपूज्य धर्मसम्राट्

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर सतत प्रणाम

लक्ष्मणप्रसाद बालकृष्ण

५३।१३-१४ नयागंज, कानपुर

फोन : { कार्यालय : ६४७०७, ६१३४१ (HLL)
निवास : ६४००२

परमपूज्य धर्मसम्राट्

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

सादर नमन

—कृष्णगोपाल गुप्त

रामनाथ कृष्णगोपाल

नयागंज, कानपुर

फोन { दुकान : ६१५८४
निवास : ६५६७८

सनातन धर्म के मूर्तिमान स्वरूप

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज

के चरणों में

सादर कोटिशः

नमन

जयप्रकाश प्रमोदकुमार

जनरलगंज, कानपुर

सनातन धर्म के मूर्तिमान स्वरूप

पूज्यश्री स्वामी करपात्रीजी महाराज

के श्रीचरणों में शत-शत प्रणाम

लड्ढा एजेन्सीज

दयानन्द मार्ग, विदिशा-४६४००१

इन्टरनेशनल ट्रेक्टर, टेक्समो मोटर्स व पंपसेट, जी. ई. सी. मोटर्स व पंपसेट, टेक्सवेल ऑयल व पंपसेट, एल. टी. स्टार्टर्स, बी. आई. सी. वाईंडिंग वायर्स के अधिकृत विक्रेता

फोन : ३०२] [तार : INTRACTORS

रहने पर अदृष्ट फल की कल्पना अनुचित होती है।[१] यहाँ यह प्रश्न उठता है कि मन्त्रों का जो अर्थ स्मरण रूप दृष्ट प्रयोजन वतलाया गया है वह प्रकारान्तर अर्थात् ब्राह्मण वाक्यों से भी प्राप्त हो जाता है, तो मन्त्रोच्चारण व्यर्थ है। इस आक्षेप का समाधान शास्त्रकारों ने नियम-विधि के आश्रयण से किया है। उनका पक्ष है कि "स्मृत्वा कर्माणि कुर्वीत" इस विधायक वाक्य से तत्तत्कर्मों के अनुष्ठान काल में विहित स्मरण के लिए उपायान्तर के अवलम्बन से तत्तत्प्रकरणपठित मन्त्रों का वैयर्थ्य आपतित होता है, अतः "मन्त्रैरेव स्मृत्वा कर्माणि कुर्वीत" (मन्त्रों से ही स्मरण करके कर्म करना चाहिये) यह नियम विधि द्वारा स्वीकृत किया जाता है। इसी प्रसङ्ग को आचार्य यास्क ने अपने निरुक्त ग्रन्थ में उठाकर उसके समाधान में एक व्यावहारिक युक्ति प्रस्तुत की है। उनका तर्क है कि मनुष्यों की विद्या (=ज्ञान) अनित्य है, अतः अविगुण कर्म के द्वारा फलसम्प्राप्ति हेतु वेदों में मन्त्र व्यवस्था है।[२] तात्पर्य यह है कि इस सृष्टि में प्रत्येक मनुष्य बुद्धि, ज्ञान, शब्दोच्चारण एवं स्वभावादि में एक दूसरे से नितान्त भिन्न एवं न्यूनाधिक हैं। ऐसी स्थिति में यह सर्वथा संभव है कि सभी मनुष्य विशुद्धतया एक जैसा कर्मानुष्ठान नहीं कर सकते। यदि कर्मानुष्ठान एक रूप में नहीं किया गया तो वह फलदायक नहीं होगा। इस दुरवस्था को मिटाने के लिए वैदिक मन्त्रों के द्वारा कर्मानुष्ठान का विधान किया गया। चूँकि वेदों में नियतानुपूर्वी हैं एवं स्वर-वर्णादि की निश्चित उच्चारण विधि है, अतः बुद्धि, ज्ञान, स्वभाव में भिन्न रहने पर भी प्रत्येक मनुष्य उसे एकरूपतया गुरुमुखोच्चारणानूच्चारण विधि से अधिगत कर उसी तरह कर्म में प्रयोग करेगा, जिसके फलस्वरूप सभी को निश्चित फल प्राप्ति होगी। इस प्रकार मन्त्रों के द्वारा ही कर्मानुष्ठान किया जाना सर्वथा तर्कसंगत एवं साम्यवादी व्यवस्था है।

याज्ञिक दृष्टि से मन्त्र चार प्रकार के होते हैं—

१. करण मन्त्र, २. क्रियमाणानुवादि मन्त्र, ३. अनुमन्त्रण मन्त्र और ४. जपमन्त्र।

इनमें जिस मन्त्र के उच्चारणानन्तर ही कर्म किया जाता है, वह करणमन्त्र है। यथा–याज्या, पुरोऽनुवाक्यादि। कर्मानुष्ठान के साथ-साथ जो मन्त्र पढ़ा जाता है, वह क्रियमाणानुवादि मन्त्र होता है। यथा-युवा सुवासा० आदि। यह मन्त्र जब यज्ञ में यूप संस्कार किया जाता है तभी पढ़ा जाता है। कर्म के ठीक बाद जो मन्त्र पढ़ा जाता है, वह अनुमन्त्रण मन्त्र कहलाता है। यथा—एको मम एका तस्य योऽस्मान् द्वेष्टि० आदि। यह मन्त्र यजमान द्वारा द्रव्यत्याग रूप याग किये जाने के ठीक बाद उसके द्वारा पढ़ा जाता है। इनके अतिरिक्त जो "मयीदमिति यजमानो जपति" (का० श्रौ०, ३।४।१२) इत्यादि वाक्यों द्वारा विहित सन्निपत्योपकारक[१] होते हैं, वे जपमन्त्र हैं। इनमें प्रथम त्रिविध मन्त्रों का अनुष्ठेयस्मारकत्व रूप दृष्ट प्रयोजन है। जपमन्त्रों का अदृष्ट मात्र प्रयोजन है, ऐसा याज्ञिकों एवं मीमांसकों का सिद्धान्त है।

मन्त्रों के लक्षण के सम्बन्ध में वस्तु-स्थिति का विचार किया जाय तो ज्ञात होता है कि कोई भी लक्षण सटीक नहीं है। ऐसा इसलिए है कि वैदिक मन्त्र नानाविध हैं।[२] यही कारण है कि आपस्तम्बादि आचार्यों ने ब्राह्मण भाग एवम् अर्थवाद का लक्षण करने के अनन्तर कह दिया "अतोऽन्ये मन्त्राः"[३] अर्थात् इनके अतिरिक्त सभी मन्त्र हैं।

विधिभाग—मन्त्रातिरिक्त वेद भाग ब्राह्मण पद से अभिहित किया जाता है। ब्राह्मण शब्द ब्रह्मन् शब्द से अण् प्रत्यय करने पर नपुंसक लिङ्ग में वेदराशि के अभिधायक अर्थ में सिद्ध होता है। आचार्य जैमिनि ने ब्राह्मण का लक्षण करते हुए कहा है कि—मन्त्र से बचे हुए भाग में ब्राह्मण शब्द का व्यवहार जानना चाहिये।[४] आचार्य भट्ट-भास्कर के अनुसार कर्म और कर्म में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों के व्याख्यान ग्रन्थ ब्राह्मण हैं।[५] म० म० विद्याधर शर्माजी के अनुसार—चारों वेदों के मन्त्रों के कर्मों में विनियोजक, कर्मविधायक, नानाविधानादि इतिहास–आख्यानबहुल ज्ञान-विज्ञानपूर्ण वेदभाग ब्राह्मण हैं।[६]

ब्राह्मण के दो भेद हैं—(१) विधि (२) अर्थवाद। आचार्य आपस्तम्ब ने दोनों का भेद प्रदर्शित करते हुए कहा है—कर्म की ओर प्रेरित करनेवाली विधियाँ ब्राह्मण हैं तथा ब्राह्मण का शेष भाग अर्थवाद है।[७] आचार्य लौगाक्षिभास्कर के अनुसार अज्ञात अर्थ को अवबोधित करानेवाले वेदभाग को विधि कहते हैं।[८] यथा—"अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः" अर्थात् स्वर्गरूपी फल प्राप्ति करने के लिए अग्निहोत्र करना चाहिए—यह विधिवाक्य, अन्य प्रमाण से अप्राप्त स्वर्ग फलयुत होम का विधान करता है अतः अज्ञातार्थ ज्ञापक है। आचार्य सायण ने विधि के दो भेद बतलाये हैं—(१) अप्रवृत्तप्रवर्त्तन विधि (२) अज्ञातार्थ ज्ञापन विधि।

---

[१] न तु तदुच्चारणमदृष्टार्थत्वम्, संभवति दृष्टफलकत्वेऽदृष्ट कल्पनाया अन्याय्यत्वात्। अं० सं० (मंत्र विचार प्रकरण)।

[२] पुरुषविद्याऽनित्यत्वात्कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे, नि० १।२।७।

---

[१] मीमांसादर्शन के अनुसार अङ्ग दो प्रकार के होते हैं—१. सिद्धरूप, २–क्रिया रूप। इनमें जाति, द्रव्य एवं संख्या आदि सिद्ध रूप हैं, क्योंकि इन सबका प्रयोजन प्रत्यक्ष (दिखाई देनेवाला) है। क्रियारूप अङ्ग के दो भेद हैं—(१) गुणकर्म, (२) प्रधान कर्म। इनमें गुण कर्म को सन्निपत्योपकारक कहते हैं। "सन्निपत्य द्रव्यादिषु सम्बध्य उपकुर्वन्ति तानि" अर्थात् जो साक्षात् न होकर किसी के माध्यम से मुख्य भाग के उपकारक होते हैं। यथा–'व्रीह्यवघात एव सेचनादि।' जो साक्षात् रूप में प्रधान क्रिया के उपकारक होते हैं, उन्हें प्रधानकर्म या 'आरादुपकारक' कहते हैं।

[२] बृहद्देवता–१।३४। [३] आप० श्रौ० सू०, २४।१।३४।

[४] 'शेषे ब्राह्मण शब्दः"। मी० २।१।३३।

[५] "ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणाञ्च व्याख्याग्रन्थः"—तै० सं० १।५।१ पर भाष्य।

[६] "वेदचतुष्टयमन्त्राणां कर्मसु विनियोजकः कर्मविधायको नानाविधानादीतिहासाख्यान बहुलो ज्ञान विज्ञानपूर्णो भागोः ब्राह्मणभागः। श० ब्रा० भू०, पृ० २।

[७] कर्मचोदना ब्राह्मणानि। ब्राह्मणशेषोऽर्थवादः (आप० परि० ३४।३५) 'चोदनेति क्रियायाः प्रवर्त्तक वचनमाहुः'—भाष्य।

[८] तंत्राज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधिः। अ० सं०, पृ० ३६।

परम पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

की ७८ वीं वर्षगाँठ पर

सद्भक्तिपूर्वक श्रद्धापुष्प समर्पित

करते हुए

श्री संकटमोचन हनुमानजी से

उनके दीर्घायु के लिए प्रार्थना करते हैं

—छेदीलाल मालाकार

श्री संकटमोचन मंदिर

वाराणसी

सनातन धर्मसम्राट् पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के

७५वें जन्म दिवस पर

शत-शत प्रणाम

——शिवेन्द्र पाठक

टूरिस्ट बस सर्विस

अलईपुर—वाराणसी

फोन——54785 p. p.

* आरामदायक यात्रा के लिये हमेशा सेवारत *

इनमें 'आग्नावैष्णवं पुरोडाशं निर्वर्णना दीक्षणीयम्' इत्यादि कर्मकाण्डगत विधियाँ अप्रवृत्त की ओर प्रवृत्त करनेवाली हैं। "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" इत्यादि ब्रह्मकाण्डगत विधियाँ प्रत्यक्षादि अन्य प्रमाणों से अज्ञात विषय का ज्ञान कराने वाली हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि आचार्य लौगाक्षि भास्कर कर्मकाण्ड एवं ब्रह्मकाण्डगत सभी विधियों को अज्ञातार्थ ज्ञापन मानते हैं किन्तु आचार्य सायण ने सूक्ष्म दृष्टि अपनाते हुए कर्मकाण्डगत विधियों को अप्रवृत्तप्रवर्त्तन विधि कहा और ब्रह्मकाण्डगत विधियों को अज्ञातार्थ ज्ञापन विधि माना ।[1]

मीमांसा दर्शन में याज्ञिक विचार की दृष्टि से विधि भाग के चार भेद माने गये हैं—(१) उत्पत्ति विधि (२) गुणविधि या विनियोग विधि (३) अधिकारविधि (४) प्रयोगविधि। इनमें जो वाक्य "यह कर्म इस प्रकार करना चाहिए" एवं विधि कर्म स्वरूप मात्र के अवबोधन में प्रवृत्त हैं वे उत्पत्तिविधि कहे जाते हैं, यथा–अग्निहोत्रं जुहोति। जो उत्पत्तिविधि से विहित कर्मसम्बन्धि द्रव्य और देवता के विधायक हैं वे गुणविधि (विनियोगविधि) कहे जाते हैं। यथा—दध्ना जुहोति। जो—उन-उन कर्मों में किसका अधिकार है, तथा किस फल के उद्देश्य से कर्म करना चाहिए इत्यादि बतलाते हैं वे अधिकारविधि कहे जाते हैं। यथा—यस्याहिताग्ने रग्निर्गृहान्, दहेत् सोऽग्नये क्षामवतेऽष्टाकपालं निर्वपेत्। जो–कर्मों के अनुष्ठानक्रमादि का बोधन कराते हैं वे प्रयोगविधि हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि प्रयोग विधि के वाक्य साक्षात् उपलब्ध नहीं होते अपितु प्रधान वाक्य (दर्शपूर्णमासाभ्यां) के साथ अङ्ग वाक्यों (सान्धोयजति०) की एकवाक्यता होकर जो कल्पित वाक्य (प्रमाणानुयाजादिभिरूप कृतवद्भ्यां दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामोयजेत) ही प्रयोग विधि का परिचयक होता है।

अर्थवाद—आचार्य आपस्तम्ब ने ब्राह्मण (कर्म की ओर प्रवृत्त करनेवाली विधियों) से अतिरिक्त शेष अवशिष्ट अर्थवाद कहा है।[2] अर्थसंग्रहकार ने अर्थवाद का लक्षण करते हुए कहा है—प्रशंसा अथवा निन्दापरक वाक्य को अर्थवाद कहते हैं।[3] यथा–वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता। स्तेनं मनः अनृतवादिनी वाक् आदि।

अर्थवाद वाक्यों को लेकर पाश्चात्य वेद विचारकों एवं कतिपय भारतीय विचारकों ने वेद के प्रामाण्य एवं उसकी महत्ता पर तीखे प्रहार किये हैं। इसके मूल में आलोचकों का भारतीय चिन्तन दृष्टि से असम्पर्कित रहना है। भारतीय चिन्तन दृष्टि (मीमांसा) में अर्थवाद विधेय अर्थ की प्रशंसा करता है तथा निषिद्ध अर्थ की निन्दा। किन्तु इस कार्य (प्रशंसा और निन्दा) में अर्थवाद मुख्यार्थ द्वारा अपने तात्पर्यार्थ की अभिव्यक्ति नहीं करता अपितु शब्द की लक्षणा शक्ति का आश्रय ग्रहण करता हैं। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि मीमांसक दृष्टि से समस्त वेद क्रियापरक हैं[4] तथा यागादि क्रिया द्वारा ही अभीष्ट प्राप्ति एवं अनिष्ट का परिहार किया जा सकता है। यतः "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" इस विधान से वेद के अन्तर्गत ही अर्थवाद भी हैं अतः उनको भी क्रियापरक मानना उचित है। जैसा कि पहले कहा गया है कि अर्थवाद का प्रयोजन विधेय की प्रशंसा एवं निषिद्ध की निन्दा में प्रगट होता है। विधान एवं निषेध क्रिया का ही होता है, अतः परम्परया अर्थवाद वाक्य क्रिया (=याग=धर्म) परक होते हैं अतएव उनका प्रामाण्य एवं उपादेयता सर्वथा सिद्ध है। इसी बात को आचार्य जैमिनि ने इन शब्दों में कहा है—विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनांस्युः ।[1] उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध के बाद से पाश्चात्य नव वेदार्थ विचारकों—बर्गाइन आदि ने भारतीय चिन्तन की इस दृष्टि को समझा तथा उसके आलोक में नये सिरे से वेदार्थ विचार में दृष्टि डाली।

प्राशस्त्य और निन्दा से सम्बन्धित अर्थवाद वाक्य क्रमशः विधि शेष एवं निषेध शेष रूप से अभिहित किये गये हैं।[2] विधि अर्थात् विधायक वाक्य, शेष=अर्थवाद वाक्य दोनों मिलकर एक समग्र वाक्य की रचना करते हैं जो कि विशिष्ट प्रभावोत्पादक बनता है। उदाहरणार्थ–वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः" यह विधि वाक्य है। इसका शेष=अर्थवाद वाक्य है—"वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता"। यहाँ वायु की प्रशंसा विधिशेषात्मक अर्थवाद से की गई है। उपर्युक्त दोनों वाक्यों की एकवाक्यता करके लक्षणा द्वारा यह विदित होता है कि वायु देवता शीघ्रगामी है अतः वह ऐश्वर्य भी शीघ्र प्रदान करता है। अब इस विशिष्ट प्रभावोत्पादक अर्थ को सुनकर अधिकारी व्यक्ति की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक बन जाती है। इसी प्रकार निषेध शेषात्मक अर्थवाद का भी साफल्य जानना चाहिये।

अर्थवाद द्वारा प्रतिपादित विषय–परीक्षण की दृष्टि से शास्त्र में इसके तीन भेद माने गये हैं—(१) गुणवाद (२) अनुवाद (३) भूतार्थवाद।

गुणवाद नामक अर्थवाद में प्रतिपाद्य अर्थ का प्रमाणान्तर से विरोध होता है। यथा–"आदित्यो यूपः"। यहाँ यूप का आदित्य के साथ अभेद प्रतिपादित है जो कि प्रत्यक्षतया बाधित है। अतः अर्थसिद्धि के लिए ऐसे स्थलों पर लक्षणा का आश्रय लेकर यूप का "उज्ज्वलत्वादिगुणयोगेनादित्यात्मकत्वं" अर्थ किया जाता है।

अनुवाद संज्ञक अर्थवाद में पूर्वपरिज्ञात या पूर्वानुभूत प्रमाण से अर्थ का बोध होता है, जबकि प्रतिपाद्य विषय में केवल उसका 'अनुवाद' मात्र रहता है। उदाहरणार्थ–अग्निर्हिमस्य भेषजम्" इस वाक्य में प्रत्यक्षतया सिद्ध है कि अग्नि शैत्य का औषध है। इस पूर्व परिज्ञात या पूर्वानुभूत विषय (यत्र यत्राग्निस्तत्र तत्र हिम निरोधः) का प्रकाशन इस दृष्टान्त में है अतः यह अनुवाद है।

तृतीय भूतार्थवाद में भूतार्थ का अर्थ पूर्व घटित किसी यथार्थ वस्तु के ज्ञापन से है। यहाँ गुणवाद अर्थवाद की भाँति न तो किसी प्रमाणान्तर से विरोध होता है और न ही अनुवाद अर्थवाद की भाँति प्रमाणान्तरावधारण होता है। अतएव शास्त्र में इसका लक्षण किया गया है—प्रमाणा-

---

१—ऋ० भा० भू० विधिप्रामाण्य विचार ।

२. ब्राह्मण शेषोऽर्थवादः ।

३. प्राशस्त्य निन्दान्यतरपरं वाक्यमर्थवादः । अ० सं० ।

४. आम्नायस्य क्रियार्थत्वात्०, जै० सू० ।

---

१. जै० सू० १।२।७ ।

२. सद्विविधः, विधिशेषो निषेधशेषश्चेति ।

न्तर विरोधतत्प्राप्तिरहितार्थं बोधकोऽर्थवादो भूतार्थवादः"। इसका दृष्टान्त है—"इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्।" कहीं भी ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं होता जिससे इस कथन का विरोध हो अतः प्रमाणान्तर अविरोध है, साथ ही ऐसा भी प्रमाण नहीं है जिससे इसका समर्थन हो, अतः प्रमाणान्तरावधारण भी नहीं है। इस प्रकार उभय पक्ष के अभाव में यह वाक्य भूतार्थवाद का उदाहरण है।

अथर्वाद भाग को आचार्य पारस्कर ने 'तर्क' शब्द से अभिहित किया है।[1] आचार्य कर्क ने 'तर्क' पद की व्याख्या करते हुए कहा कि जिसके द्वारा सन्दिग्ध अर्थ का निश्चय किया जा सके वह तर्क अर्थात् अर्थवाद है।[2] इसका उदाहरण देते हुए कहा कि—"अक्ता शर्करा उपदधाति तेजो वै घृतम्" इस वाक्य में प्राप्त अञ्जन तैल वसा आदि द्रव्यों से भी संभव है, किन्तु 'तेजो वै घृतम्" इस घृतसंस्तावक अर्थवाद वाक्य से सन्देह निराकृत होकर घृत से अञ्जन करना यह स्थिर होता है। इस प्रकार अर्थवाद भाग महदुपकारक हैं।

आपस्तम्ब, पारस्कर आदि आचार्यों ने वेद के तीन ही भाग—विधि, मन्त्र, अर्थवाद माने हैं। अर्थ संग्रहकार ने वेद के पाँच भाग—विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद माने हैं।[3]

नामधेय—जैसा कि संज्ञा से स्पष्ट है, नामधेय प्रकरण में कतिपय नामों से जुड़े हुए विशेष भागों की आलोचना होती है। इनमें 'उद्भिदा यजेत पशुकामः' 'चित्रया यजेत पशुकामः', 'अग्निहोत्र जुहोति', 'श्येनेनाभिचरन् यजेत' ये चार वाक्य ही प्रमुख हैं। नामधेम विजातीय की निवृत्तिपूर्वक विधेयार्थ का निश्चय कराता है[4]। यथा—'उद्भिदा यजेत पशुकामः' इस वाक्य में पशु रूप फल के लिए याग का विधान किया गया है। यह याग वाक्यान्तर से अप्राप्त है और इस वाक्य द्वारा विहित किया जा रहा है। यदि इस वाक्य से 'उद्भिद्' शब्द हटा दिया जाय तो 'यजेत पशुकामः' यह वाक्य होगा, जिसका अर्थ है 'यागेन पशुं भावयेत्' किन्तु इससे याग सामान्य का विधान होगा जो कि अविधेय है क्योंकि याग विशेष का नाम अभिहित किये बिना अनुष्ठान संभव नहीं है। उद्भिदा पद द्वारा इस प्रयोजन की पूर्त्ति होती है अतः उद्भिद याग का नाम हुआ तथा याग विशेष का निर्देशक होने से विधेयार्थ परिच्छेद भी हुआ। नामधेयत्व—चार कारणों से होता है—(१) मत्वर्थ लक्षणा के भय से (२) वाक्य भेद के भय से (३) तत्प्रख्यशास्त्र से (४) एवं तद्व्यपदेश से।

निषेध—जो वाक्य पुरुप को किसी क्रिया को करने से निवृत्त कराता है उसे निषेध कहते हैं[5]। शास्त्रों में नरकादि को अनर्थ माना है। इस नरक प्राप्ति का हेतु कलञ्जभक्षणादि है, अतः पुरुष को ऐसे कार्यों से 'निषेध वाक्य' निवर्तित करते हैं। इस प्रकार अनर्थ उत्पन्न करनेवाली क्रियाओं से पुरुष का निवर्त्तन कराना ही निषेध वाक्यों का प्रयोजन है। मन्त्र ब्राह्मणात्मक (विधिमन्त्र नामधेय निषेधार्थवाद रूप) वेद में कतिपय विचारकों ने ब्राह्मण भाग को वेद नहीं माना है। उनके प्रधान तर्क ये हैं—

(१) ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि उन्हीं का नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी भी है।

(२) एक कात्यायन को छोड़कर किसी अन्य ऋषि ने उनके वेद होने में साक्षी नहीं दी है।

(३) ब्राह्मण भाग को भी यदि वेद माना जाय तो 'छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि"[1] इत्यादि पाणिनि सूत्र में छन्द शब्द के ग्रहण से ही ब्राह्मणों का भी ग्रहण हो जाने से अलग से ब्राह्मण शब्द का उल्लेख करना व्यर्थ होगा।

(४) ब्राह्मण ग्रन्थ चूंकि मन्त्रों के व्याख्यान हैं अतः ईश्वरोक्त नहीं है, अपितु महर्षि लोगों द्वारा प्रोक्त हैं।

इसके समाधान में यह कहना अत्यन्त संगत है कि ऐतरेय, शतपथ आदि ब्राह्मणों को पुराण अथवा इतिहास नहीं कहा जाता, रामायण, महाभारत, विष्णुपुराण आदि को ही इतिहास पुराण कहा जाता है। यदि पुरातन अर्थ के प्रतिपादक होने से तथा ऐतिहासिक अर्थ के प्रतिपादक होने से इनको पुराण—इतिहास कहा जायगा तो इस तरह की संज्ञा से वेद संज्ञा का कोई विरोध नहीं है, वेद संज्ञा के रहते हुए भी ब्राह्मण भाग की पुराण-इतिहास संज्ञा भी हो सकती है। भारतीय दृष्टि से—भूत, भविष्य, वर्त्तमान सब कुछ वेद से ज्ञात होता है।[2] अतः जिस प्रकार कम्बु—ग्रीवादि से युक्त एक ही पदार्थ के घट, कलश आदि अनेक नामधेय होने से कोई विरोध उपस्थित नहीं होता उसी तरह एक ही ब्राह्मण ग्रन्थ के वेद होने में और पुराण—इतिहास होने में कोई विरोध नहीं है।[3]

कात्यायन को छोड़कर अन्य ऋषि ने ब्राह्मण भाग के वेद होने में प्रमाण नहीं दिया है यह कथन भी आधार रहित है। क्योंकि भारतीय दृष्टि से एक भी आप्त ऋषि का प्रामाण्य अव्याहत है। दूसरे ऐसी बात नहीं है कि अन्य ऋषियों ने ब्राह्मण भाग के वेदत्व को नहीं स्वीकारा है। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र, सत्याषाढ श्रौत सूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र आदि ग्रन्थों में तत्तत् आचार्यों ने मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को वेद माना है। अतः यह शंका निर्मूल सिद्ध होती है।

पाणिनि के "छन्दो ब्राह्मणानि०" इत्यादि सूत्रों में छन्द शब्द से ही ब्राह्मण का ग्रहण मानने पर ब्राह्मणानि यह पद व्यर्थ होगा यह कथन भी तर्क संगत नहीं है। आचार्य पाणिनि ने "छन्दसि" पद से मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का ग्रहण किया है, क्योंकि 'छन्दसि' इस अधिकार में जो-जो आदेश, प्रत्यय, स्वर आदि का विधान किया गया है वे दोनों में पाये जाते हैं। जो कार्य केवल मन्त्र भाग में इष्ट था उनके लिए सूत्रों में 'मन्त्र' पद तथा जो ब्राह्मण में इष्ट था उनके लिए 'ब्राह्मण' पद दिया है। यह

---

[1] विधिर्विधेयस्तर्कश्च वेदः। पा० गृ० सू०, २।६।५।

[2] तर्क शब्देनार्थवादोऽभिधीयते। तर्क्यंते ह्यनेन सन्दिग्धोऽर्थः। पा० गृ०, २।६।५ पर कर्क।

[3] स च विधिमन्त्र नामधेय निषेधार्थ वादभेदात् पञ्चविधः।

[4] नामधेयानां च विधेयार्थपरिच्छेदकतयार्थवत्त्वम्। अ० स०।

[5] पुरुषस्य निवर्त्तकं वाक्यं निषेधः। अ० स०।

---

[1] पा० सू०, ४।२।६६।

[2] भूतं भवद्भविष्यञ्च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति। मनु०, १२।९७।

[3] वेदार्थ पारिजात।

भी ध्यातव्य है कि छन्द पद यद्यपि मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद का बोधक है, किन्तु कभी-कभी वे इनमें से किसी एक अवयव के भी बोधक होते हैं। महाभाष्य पस्पशाह्निक एवं ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य में यह स्पष्ट किया गया है कि समुदायार्थक शब्दों की कभी-कभी उनके अवयवों के लिए भी प्रवृत्ति देखी जाती है। यथा–पूर्वपाञ्चाल, उत्तरपाञ्चाल आदि प्रयोग। अतः शास्त्र में छन्द शब्द अथवा वेद शब्द केवल मन्त्रभाग, केवल ब्राह्मणभाग अथवा दोनों भागों के लिए प्रसंगानुसार प्रयुक्त होते हैं।

ब्राह्मण भाग मन्त्रों के व्याख्यान हैं अतः वेदान्तर्गत नहीं हो सका यह कथन भी सर्वथा असंगत है। मीमांसा एवं न्यायशास्त्र में वेद के जो विषय विभाग किये गये हैं—विधि, अर्थवाद, नामधेय, निषेध वे सभी मुख्यतया ब्राह्मण में ही घटित होते हैं। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता आदि में तो मन्त्र और ब्राह्मण सम्मिलित रूप में ही है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि महाभाष्यकार पतञ्जलि ने यह विचार उठाया है कि व्याकरण केवल सूत्रों को कहना चाहिये या व्याख्या सहित सूत्रों को। इसका सिद्धांत यही दिया गया है कि व्याख्या सहित सूत्र ही व्याकरण है। इसी प्रकार व्याख्या (ब्राह्मण) सहित मन्त्र वेद है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण भाग मात्र मन्त्रों का व्याख्यान नहीं करता अपितु यज्ञादि कर्मों की विधि, इतिकर्त्तव्यता, स्तुति, ब्रह्मविद्या आदि का स्वतन्त्रतया विधान करता है। अतः ब्राह्मण भाग का वेदत्व सर्वथा अव्याहत है।

मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद के वैषयिक तीन भेद परम्परा से चले आ रहे हैं। इनमें कर्मकाण्ड के प्रतिपादक भाग का नाम ब्राह्मण, उपासना काण्ड के प्रतिपादक भाग का नाम आरण्यक तथा ज्ञानकाण्ड के प्रतिपादक भाग का नाम उपनिषद् है।

वेद का विभाजन—भारतीय वाङ्मय में बतलाया गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ ऋग्यजुःसाम अथर्वात्मक वेद एकत्र संकलित था। सत्ययुग, त्रेतायुग तथा द्वापर युग की लगभग समाप्ति तक एकरूप वेद का ही अध्ययन-अध्यापन यथाक्रम चलता रहा। द्वापरयुग की समाप्ति के कुछ वर्षों पूर्व महर्षि व्यास ने भावी कलियुग के व्यक्तियों की बुद्धि, शक्ति और आयुष्य के ह्रास की स्थिति को दिव्य-दृष्टि से जानकर ब्रह्म-परम्परा से प्राप्त एकात्मक वेद का, यज्ञ क्रियानुरूप चार विभाजन किया। इन चार विभाजनों में हौत्रकर्म के उपयोगी मन्त्र एवं क्रियाओं का संकलन ऋग्वेद के नाम से, यज्ञ के आध्वर्यव कर्म (आन्तरिक मूल स्वरूप निर्माण) के उपयोगी मन्त्र एवं क्रियाओं का संकलन यजुर्वेद के नाम से औद्गात्र कर्म के उपयोगी मन्त्र एवं क्रियाओं का संकलन सामवेद के नाम से एवं शान्तिक-पौष्टिक अभिलाषाओं (जातविद्या) के उपयोगी मन्त्र क्रियाओं का संकलन अथर्ववेद के नाम से किया। इस विभाजन में भगवती श्रुति के वचन को ही आधार रखा गया। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि सम्प्रति प्रवर्त्तमान वेद शब्दराशि का वैवस्वत मन्वन्तर में कृष्णद्वैपायन महर्षि व्यास द्वारा यह २८वाँ विभाजन है। अर्थात् पौराणिक मान्यता के अनुसार इकहत्तर चतुर्युगी का एक मन्वन्तर होता है। प्रत्येक चतुर्युगी के अन्तर्गत द्वापर युग की समाप्ति में विशिष्ट तपः सम्पन्न महर्षि के द्वारा एकात्मक वेद का चार विभाजन अनवरत होता रहता है। यह विभाजन कलियुग के लिए होता है और कलियुग के अन्त तक ही रहता है। सम्प्रति मन्वन्तरों में सप्तम वैवस्वत नामक मन्वन्तर का यह २८वाँ कलियुग है। इसके पूर्व २७ कलियुग एवं २७ ही वेदविभागकर्त्ता वेद व्यास (विभिन्न नामों के) हो चुके हैं। वेदों का यह २८वाँ उपलब्ध विभाजन महर्षि पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन के द्वारा किया गया है। वेदों का विभाजन करने के कारण ही उस महर्षि को वेदव्यास शब्द से जाना जाता है।

चार वेद और उनकी यज्ञपरकता—जैसा कि ऊपर कहा गया है वेदविभागकर्त्ता व्यासोपाधि विभूषित महर्षि कृष्णद्वैपायन ने यज्ञ-प्रयोजन की दृष्टि से वेद का ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद यह विभाजन प्रसारित किया। क्योंकि भारतीय चिन्तन में वेदों का अभिप्रवर्त्तन ही यज्ञ एवं उसके माध्यम से समस्त ऐहिकामुष्मिक फलसिद्धि के लिए हुआ है। वैदिक यज्ञों का क्या रहस्यात्मक स्वरूप है एवं साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने किन बीजों द्वारा प्रकृति से अभिलषित पदार्थों का दोहन इस भौतिक यज्ञ के माध्यम से आविष्कृत किया यह पृथक् विवेचनीय विषय है। यहाँ स्थूलदृष्ट्या यह अभिगमनीय है कि प्रत्येक छोटे (इष्टि) और बड़े (सोम, अग्निचयन) यज्ञों में मुख्य चार ऋत्विक्—होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा होते हैं। बड़े यज्ञों में एक-एक के तीन सहायक और होकर सोलह ऋत्विक् हो जाते हैं, किन्तु वे तीन सहायक उसी मुख्य के अन्तर्गत मान लिए जाते हैं। इनमें अध्वर्यु नामक ऋत्विक् द्रव्य देवता-त्यागात्मक यज्ञस्वरूप का निर्माण यजुर्वेद से करता है। होता नामक ऋत्विक् यज्ञ के अपेक्षित शस्त्र (अप्रगीत मन्त्रसाध्य स्तुति) एवं अन्य अङ्गकलापों का अनुष्ठान ऋग्वेद द्वारा तथा उद्गाता नामक ऋत्विक् स्तोत्र (गेय मन्त्रसाध्य स्तुति) और उसके अङ्गकलापों का अनुष्ठान सामवेद द्वारा करता है। ब्रह्मा नामक चतुर्थ ऋत्विक् यज्ञीय कर्मों के न्यूनादि दोषों का परिहार एवं शान्तिक-पौष्टिक-आभिचारिकादि सर्वविध अभिलाष सम्पूरक कर्म अथर्ववेद द्वारा सम्पादित करता है।

वेद-त्रयी—कतिपय अर्वाचीन वेदार्थ विचारक "सैषा त्रय्येव विद्या तपति" (श० ब्रा० १०।३।६।२), "त्रयी वै विद्या" (श० ब्रा० ४।६।७।१), "इति वेदास्त्रयस्त्रयी" इत्यादि वचनों के द्वारा वेद वस्तुतः तीन हैं तथा कालान्तर में अथर्ववेद को चतुर्थ वेद के रूप में मान्यता दी गई ऐसी कल्पना करते हैं। किन्तु यह कल्पना भारतीय परम्परा से सर्वथा विपरीत है। भारतीय आचार्यों ने रचना-भेद की दृष्टि से वेद चतुष्टयी का त्रित्व में अन्तर्भाव कर उसे लक्षित किया है। रचना शैली तीन ही प्रकार की होती हैं—(१) गद्य, (२) पद्य, (३) गान। इस दृष्टि से—छन्द में आबद्ध, पादव्यवस्था से युक्त मन्त्र ऋक् कहलाते हैं; वे ही गीति रूप होकर साम कहलाते हैं, तथा वृत्त एवं गीति से रहित प्रश्लिष्ट-पठित (=गद्यात्मक) मन्त्र यजु कहलाते हैं।[1] यहाँ यह ध्यातव्य है कि छन्दोबद्ध ऋग्विशेष मन्त्र ही अथर्वाङ्गिरस हैं, अतः उनका ऋग्रूपा (पद्यात्मिका) रचना शैली में ही अन्तर्भाव हो जाता है, और इस प्रकार वेदत्रयी की अन्वर्थता होती है।

---

१. पादेनार्थेनचोपेता वृत्तबद्धा मन्त्रा ऋचः। गीतिरूपाः मन्त्राः सामानि। वृत्तगीति वर्जितत्वेन प्रश्लिष्ट पठिता मन्त्राः यजूंषि।

धर्मसम्राट् स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

की

७५वीं वर्षगाँठ पर उनके दीर्घायु के लिए श्री संकटमोचन हनुमान जी से

प्रार्थना करते हैं

—द्वारिका प्रसाद गुप्ता

हम्बर साइकिल मार्ट

सन्त कबीर मार्ग व बुलानाला
वाराणसी
फोन : ६६८१०, ५२९४९

निवास :
१०९ ए, लेन नं० २, रवीन्द्रपुरी
वाराणसी
फोन : ६६२५६

"योगीश्वरं यतिवरं सततं नताःस्मः"
"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति"
"गुरूणां गुरवे नमः"
"सज्जनप्राणपुञ्ज"
"तं सद्गुरुं गुणनिधिं सततं नताःस्मः"
"करपात्री स्मृतोऽद्यत्वे भगवान् बादरायणः"

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

की

७५वीं शुभ वर्षगाँठ पर सादर नमन

—राधेश्याम खेमका एवं समस्त परिवार

राधेश्याम पेपर स्टोर्स

कर्णघंटा, वाराणसी • फोन : ६३९५२, निवास : ६४६०२

वैदिक शिक्षाव्यवस्था एवम् उपनयन

• श्री श्रीकिशोर मिश्र •

भारत पुरातन काल से ज्ञानप्राप्ति द्वारा आध्यात्मिक उन्नति को ही अपना ध्येय समझता आया है। अपने उन्नत ध्येय के कारण इसे समस्त देशों का गुरु कहा जाता था। मनु ने स्पष्ट रूप से कहा कि—

> एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।[1]

अर्थात् समस्त देशनिवासी मानवमात्र इस पुनीततम भारत के जन्मे ब्राह्मण बालक से अपने-अपने धर्म एवं चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें। आज भी इस गवेषणाप्रधान युग में भारतीय आर्यों की शिक्षा के मूलस्रोत वेदशास्त्रों के अतिरिक्त कोई भी ग्रन्थ पुरातन सिद्ध नहीं हो सका है। आर्य वेद को उच्चतम आदर्श ग्रन्थ मानते हैं। आर्यों के अनुसार तो वेद अनादि हैं।[2] पाश्चात्य शिक्षाविद् भी इसे विश्व का सर्वप्राचीन ग्रन्थ स्वीकार करते हैं।

वेद—शास्त्रों में वेद का बहुत महत्व है। वेद वस्तुतः आदरणीय एवं प्राणिमात्र की सर्वतोमुखी उन्नति का उपदेशक, शिक्षा का अनुपम कोष ग्रन्थ है। अत्यन्त प्राचीन काल में वेद एक ही था। प्रत्येक द्वापर युग के अन्त में भगवान् वेदव्यास कलियुगीय मानवों की मन्दबुद्धि एवं अल्पजीवन को देखकर एक वेद को चार भागों में विभक्त कर देते हैं।[3] जिनको क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद कहा जाता है।[4] प्रत्येक वेद में कई शाखाएँ होती हैं[5]। वेदों के दो विशेष विभाग हैं, जिनको मन्त्र और ब्राह्मण शब्दों से कहा जाता है[6]। पूर्वजों से जिस वेदशाखा का अध्ययन परम्परा समागत हो उस कुल का वह वेद कहलाता है[7]। यद्यपि सम्प्रति कुलपरम्परा द्वारा प्राप्त वेदों का अध्ययन समाप्त हो चला है, तथापि अपनी पितृपरम्परा से जिस वेदशाखा का अनुयायी होना ज्ञात हो तथा जिस वेदशाखा के अनुसार अपना उपनयन संस्कार हुआ हो उस वेद का अध्येता स्वयं को मानना चाहिये। यदि किसी कुल में अशिक्षा या अज्ञानवश अपने कुलपरम्परागत वेद का स्मरण नहीं हो पाता है तो उसे शुक्लयजुर्वेदी एवं माध्यन्दिनशाखीय समझना चाहिये। चतुर्थवर्ण शूद्र को भी शास्त्रकारों ने शुक्लयजुर्वेदी बतलाया है। प्राचीन भारत में वेद की शिक्षा प्रत्येक द्विज के लिये अनिवार्य थी।[1] वैदिक शिक्षा द्वारा ज्ञान का विकास कर व्यक्ति आत्मोन्नति के पथपर अग्रसर होता था।

ज्ञानप्राप्ति—ज्ञान के स्वरूप का विवेचन भारतीय शास्त्रों में विभिन्न रूपों में किया गया है। ज्ञान अनुपम आनन्दमय पुनीत ज्योति है[2]। हृदय के अज्ञानान्धकार को नष्ट करने का एकमात्र साधन ज्ञान है। परन्तु इस ज्ञानज्योति के किंचिन्मात्र लाभ के आनन्द में ही जिसको थोड़ा सा प्रकाश प्राप्त हो जाता है और जो सन्तुष्ट हो जाता है, वह अपने ज्ञान की इयत्ता को न जान सकने के कारण उन्मत्त हो जाता है। उन्माद के कारण वह स्वयं को तत्ववेत्ताओं से भी उन्नत समझ लेता है। ऐसे उन्मादावस्था वाले व्यक्तियों को ही दृष्टि में रखकर शास्त्रकारों ने कहा है :—

> विद्ययैव समं कामं मर्तव्यं ब्रह्मवादिना।
> आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामीरिणे वपेत्।।[3]

ज्ञानप्राप्ति की अवस्थाओं का वर्णन भर्तृहरि ने अत्यन्त ललित शब्दों में इस प्रकार किया है—

> यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
> तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
> यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगतम्
> तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।।[4]

विनम्र जिज्ञासु संयत व्यक्ति ही वस्तुतः ज्ञानोपदेश का पात्र अधिकारी होता है।[5] अधिकारी होने पर उसे तत्ववेत्ताओं से सुख का मूल ज्ञानरूपी धन प्राप्त होता है। इस ज्ञानात्मक अक्षय धन का उपयोग वह अपने जीवन में करता है तथा अपने अस्तित्व को धारण कर स्थिर रखने वाले धर्म (आत्मा) को प्राप्त करता है। आत्मसाक्षात्कार से अत्युत्तम आनन्द एवं सुख शान्ति की प्राप्ति होती है। इस महत्वपूर्ण ज्ञान के लाभों को समझाने हेतु ही संक्षेप में कहा गया है—

> विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
> पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मं ततः सुखम्।।[6]

अधिकारी सत्पात्र को विद्या देने से ही विद्या की पुष्टि होती है। जिज्ञासा

---

[1] म. स्मृ., २।२०।
[2] "अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा" (म. भा. शा. प. २३२।३५)।
[3] भागवत, १२।६।४६-४७।
[4] भागवत, १।४।२१-२२।
[5] भागवत, १।४।२३-२४।
[6] मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् (प्र. परि. १।२, आप. परि. ३१)।
[7] परम्परागतो येषां वेदः सपरिबृंहणः।
तच्छाखं कर्म कुर्वीत तच्छाखाध्ययनं यथा।। वी. मि. सं. प्र. वसिष्ठोक्ति, पृ० ५०५।

---

[1] स्वाध्यायोऽध्येतव्यः, श. ब्रा. ११।५।७।१०। [2] गीता, ४।३८।
[3] म० स्मृ०, २।११३। [4] नीतिशतक, ८। [5] निरुक्त, २।४।१।
[6] हितोपदेश, ६।

धर्मावतार श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज की

७५ वीं वर्षगाँठ पर श्रीचरणों में सादर नमन

जी० पी० पोद्दार ब्रदर्स

(इण्डियन ऑयल डीलर्स)

पुरुलिया रोड, चास (धनबाद)

धर्मसम्राट् पूज्य श्री करपात्री जी महाराज

के ७५ वें जन्म दिवस पर

श्री चरणों में श्रद्धासुमन

सादर सर्मपित करते हैं

रामदेव मदनलाल

१७ पगैया पट्टी स्ट्रीट, बड़ा बाजार,

कलकत्ता–७

परमपूज्य गुरुदेव श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज के

श्री चरणों में सादर नमन

श्रीराम जगन्नाथ

सी० के० ३३/३५, नीलकण्ठ, वाराणसी

फोन : ६३७८३

कारखाना : श्री विष्णु कंक्रीट प्रोडक्ट्स प्रा० लि०

ए-६, इण्डस्ट्रियल एरीया, रामनगर, वाराणसी

तार : VISCON

कलकत्ता कार्यालय : १३४, विप्लवी रासविहारी वसु रोड,

कलकत्ता-७००००१

निवास : ५, विवेकानन्द रोड, कलकत्ता-७

फोन : ३३४००४-५ (दो लाइन)

दूरभाषः श्री विजयकुमार कनोडिया-२६७०४०

श्री जीवकुमार कनोडिया-२६७०२०

२६४३६२ (तीन लाइन), २६४३५३ (तीन लाइन),

२६७०८६ (कर्मचारी विभाग), २६७०८६ (चलानी विभाग)

टेलेक्स : ०-२१-३२८६

एक पिपासा है तथा ज्ञान पुष्टिकारक सुखद अमृतस्वरूप है। पिपासु की पिपासा शान्त होने पर सुख होता है।

ज्ञानरूपी ज्योति गुरु से ही प्राप्त होती है। गुरु उदयकालिक सूर्य के समान आनन्द एवं अमृतमय ज्ञानस्रोत का उद्गम स्थान है। गुरु से विद्या या ज्ञानप्राप्ति के तीन साधन शास्त्रों में प्रतिपादित किये गये हैं। वेद के अंग शिक्षाशास्त्र की भाषा में वे तीनों साधन सेवा, धन और विद्या नाम से हैं।[1] श्री मद्भगवद्गीता में इन तीनों में उत्तरोत्तर को प्रशस्त बताने के लिए प्रणिपात (धन), परिप्रश्न (विद्या) तथा सेवा यह क्रम रखा गया है।[2] गुरु की आभ्यन्तरिक पूर्ण इच्छा न रहने पर भी धनलोभ से उपदिष्ट विद्या की अपेक्षा शिष्य द्वारा पूर्वपरिज्ञात विषय के कथनानन्तर जिज्ञासा करने पर उपदिष्ट परिप्रश्नरूप विद्या का महत्व अधिक है। धन के लोभवश गुरु की स्वार्थपरायणता से विपर्यय एवं अपने आत्मानुभव का उपदेश न करना संभव हैं। इसीप्रकार धनदातृत्व के अहंकार से शिष्य द्वारा उसे ग्रहण न करना भी संभव है। परन्तु प्रश्न होने पर उपदिष्ट गुरुवचनों में यथार्थ आत्मानुभव का समावेश अवश्य रहता है। इस परिप्रश्न में ज्ञानार्थी को भी विद्या से सम्पन्न होना आवश्यक है। अतः शिक्षाकारों ने इस उपाय को "विद्यया विद्या" शब्द से व्यवहृत किया है। इस द्वितीय परिप्रश्नात्मक ज्ञानार्जनोपाय की अपेक्षा सेवास्वरूप तृतीय साधन अतिप्रशस्त है। सेवात्मक साधन में अपनी ग्रहणशक्ति के ज्ञानाभिमान में अथवा उत्तरदाता के प्रतिष्ठा प्रभाव के कारण शिष्य द्वारा न समझने पर भी स्वीकार कर लेना आदि परिप्रश्न के दुर्गुणों का समावेश नहीं है। सेवासाधन में तो "शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्"[3] के अनुसार गुरु में पितृत्व की भावना होती हैं। वस्तुतः वह विद्या गुरु के वात्सल्य का प्रतीक है। धनदाता एवं जिज्ञासु शिष्य की अपेक्षा सेवक विद्यार्थी गुरु से अधिक विद्या सम्पत्ति ग्रहण कर सकता है तथा उन दोनों की अपेक्षा उसकी विद्या अधिक सफला बन जाती है।[4]

उपर्युक्त तीनों साधनों से गुरु के द्वारा विद्या प्राप्त की जाती है। प्राचीन काल में विद्या गुरुमुख से सुन लेने पर विद्यार्थियों को ही नहीं गुरुकुल में स्थित पक्षियों को भी कण्ठस्थ हो जाती थी।[5] परन्तु समय के प्रभाव से शिक्षार्थियों की धारणा में ह्रास होने लगा। उस समय को ग्रन्थरचना का प्रारंभिक काल कहा जा सकता है। उस समय गुरुजनों ने ग्रन्थों का प्रणयन किया तथा प्रणीत ग्रन्थों को लिपिबद्ध किया गया। इसके फलस्वरूप ग्रन्थों के अध्ययन के लिए अक्षर परिचय आवश्यक हो गया। अतः अक्षरों का परिचय प्राप्त करने के लिए अक्षरारम्भ नामक कार्य निश्चित किया गया। अक्षरारम्भ बालक के पाँचवें वर्ष में शुभ मुहूर्त में सविधि होता है।[1] अक्षरों के दृढ़ परिचय एवं लेखन का पूर्ण अभ्यास हो जाने पर शुभदिन में विद्याग्रहण का कार्य प्रारम्भ होता है।

भारतीय साहित्य में अनेक विद्याएँ हैं तथा सभी महत्वपूर्ण हैं। परन्तु देश, धर्म एवं समाज के उन्नयन की दृष्टि से उन सभी विद्याओं में वेदविद्या का महत्त्व सर्वाधिक माना गया है। महाभाष्यकार पतंजलि ने स्पष्ट रूप से यह बतलाया है कि द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के बालक का यह आवश्यक कर्तव्य है कि वह जीविका आदि किसी बाह्य उद्देश्य से निरपेक्ष होकर धर्म, भारतीयता एवं संस्कृति की वास्तविक रक्षा एवं बाह्य सांस्कृतिक आक्रमणों के निराकरण के लिए षडंग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द ज्योतिष) सहित वेद का अध्ययन एवं उसके मर्म को समझ कर तदनुकूल आचरण करे।[2] मनु ने तो भारत के त्रैवर्णिक को वेद न पढ़ने पर अत्यन्त निन्दित माना है तथा कहा है कि जो द्विज वेदाध्ययन के बिना अन्य विद्या को पढ़ने में श्रम करता है वह जीवित ही दासता को प्राप्त हो जाता है। मात्र वही नहीं अपितु उसकी सन्तति भी दासता की भावना से ग्रस्त हो जाती है।[3] राजर्षि मनु का उद्घोष बहुत उग्र है परन्तु वस्तुतः सत्य है।

अध्ययन——यों तो विद्याध्ययन सर्वदा ही किया जा सकता है। तथापि शास्त्रकारों ने जीवन के प्राथमिक चतुर्थांश को विद्याध्ययन के लिए परम उपयुक्त समझ कर इसे विद्याध्ययन के लिए ही निश्चित कर दिया है। आयु के इस भाग की संज्ञा आगम काल है।[4] अध्ययन के सुचारु सम्पादन के लिए उपनयन नामक संस्कार निश्चित किया गया है। उपनयन संस्कार का समय जातिभेद से भिन्न-भिन्न माना गया है। त्रैवर्णिक बालक को पाँचवें वर्ष में ज्योतिष शास्त्रानुसार शुभ दिन में अक्षरारंभ कराना चाहिये। वर्ण परिचय तथा लेखन ज्ञान प्राप्त करने के बाद शुभमुहूर्त से विद्याध्ययन प्रारम्भ करना चाहिये।[5]

संस्कार—जिस प्रकार अनेक रंगों के उचित उपयोग करने पर चित्र में सुन्दरता, आकर्षण एवं पूर्ण वास्तविकता आ जाती है, उसी प्रकार शास्त्रोपदिष्ट अनेक संस्कार करने से पुरुष की बुद्धि एवं मन में सात्विकता एवं सर्वजनप्रियता का संचार होता है तथा उसको वास्तविक सुखशान्ति के पथ का अनुभव होता है।[6] शास्त्रों में संस्कारों की संख्या बहुत है।[7]

---

१. गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थं नोपपद्यते॥ (या० शि० ११२)।

२. तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया (गीता ४।३४)।

३. गीता, २।७।

४. या० शि०, ११०, १११।

५. जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः।
निगृह्यमाणा बटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः॥
——(कादम्बरी कथामुख १२)।

---

१. मु० चि०, ५।३७।

२. निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च (महाभाष्य)।

३. योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ (म० स्मृ० २।१६८)।

४. चतुर्भिश्च प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति आगम कालेन स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेनेति (महाभाष्य)।

५. मु० चि०, ५।३८।

६. चित्रकर्म यथानेकै रङ्गैरुन्मील्यते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधि पूर्वकैः॥ (प्र० पा०, पृ० ३, अङ्गिरावचनम्)।

७. गौ० ध०, १।८।१४–२२।

धर्मावतार श्रीपूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज की
७५ वीं वर्षगाँठ पर

शत शत नमन

Agnihotri Brothers

(Iron Merchants, Commission Agents &
Order Suppliers).

Head Office :
46/93, Halsey Road,
KANPUR-1

Branch Office :
76/68, Halsey Road,
KANPUR-1

Phone
Head Office : 66458
Godown : 68082
Residence : 42107

कोटिशः प्रणाम

कश्यप इण्डस्ट्रीज

सुन्दर एवं सुदृढ़ बाल्टियों के निर्माता एवं गैल्वनाइजर्स

८५/३७, झाकरकटी, जी० टी० रोड,
कानपुर-३

बिक्री केन्द्र :
७६/५७९, कुली बाजार,
कानपुर-२०८००१

फोन :
कार्यालय : ६७४६७
निवास : ७१५८०, ६८३०९

धर्मावतार श्रीपूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज की
७५ वीं वर्षगाँठ पर

साष्टांग प्रणाम

Narain Prasad Phoolchand

(Registered Stock holders of Iron & Steel,
Merchants & Govt. Order Suppliers)
76/44, Halsey Road
KANPUR-208001

Phone
Office : 63576
Resi. : 81548

श्रद्धासुमन समर्पण

Deo Kumar Jain

DEO BHAWAN
76/577, Coolie Bazar
KANPUR-208001

तथापि विद्वानों ने प्रधानरूप से सोलह संस्कार माने हैं। इन षोडश संस्कारों के नाम हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, केशान्त, विवाह (गृह्य), अग्निपरिग्रह तथा अन्त्येष्टि। कतिपय स्थलों पर श्रेताग्निपरिग्रह को सोलहवाँ संस्कार माना गया है। इनमें से आदि के नौ संस्कार चारों वर्णों के बालक बालिकाओं के होते हैं। अन्तिम सात संस्कार त्रैवर्णिक (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के होते हैं। इन संस्कारों से चित्तशुद्धि एवं आध्यात्मिक उन्नति होती है। संस्कार्य की अपनी वेदशाखा के अनुसार ही संस्कार किये जाते हैं।[1]

उपनयन—त्रैवर्णिक के मुख्य संस्कारों में सर्वप्रथम संस्कार उपनयन है। उपनयन संस्कार होने पर ही त्रैवर्णिक बालक द्विज कहलाता है।[2] शास्त्रों का मत है कि इस संस्कार से बालक का विशुद्ध ज्ञानमय जन्म होता है। इस ज्ञानमय जन्म का पिता आचार्य तथा माता गायत्री है।[3] जिस प्रकार अच्छे बीज से अच्छे अन्न की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार इस ज्ञानमय जन्म में अच्छे विद्वान् के आचार्य रहने पर कल्याण-दायक शुद्धभावना वुद्धि द्वारा विशुद्ध ज्ञान होता है। महर्षि आपस्तम्ब ने भी इस तथ्य को स्पष्ट लिखा है कि—"तमसो वा एष तमः प्रविशति यमविद्वानुपनयते यश्चाविद्वानिति हि ब्राह्मणम्[4]।" अर्थात् जिसका अविद्वान् आचार्य (गुरु) के द्वारा उपनयन संस्कार कराया जाता है वह अन्धकार से अन्धकार में ही जाता है। अतः कहा गया है—

> तस्मिन्नभिजनविद्यासमुदेतं समाहितं संस्कर्तारमीप्सेत्। अविच्छिन्न-वेदवेदिकुले जन्म अभिजनः। षड्भिरंगैः सहैव यथावदर्थज्ञानपर्यन्त-मधीतो वेदो विद्या।[5]

अर्थात् वेद एवं वेदी (यज्ञों) से सम्बन्धित कुल में जन्म लेनेवाले, षडंगों एवं मीमांसाशास्त्र आदि के अध्ययन द्वारा वेदार्थ के परिज्ञाता तथा विहित-निषिद्ध कर्मों में सावधान आचार्य को उपनयन में अपना उपनेता गुरु बनाना चाहिये।

गोभिल स्मार्तकल्प के भाष्यकार नारायण ने एक वचन उपस्थित कर यह बतलाया है कि इस उपनयन संस्कार द्वारा त्रैवर्णिक बालक अपनी कर्तव्य शिक्षा के लिए गुरु, वेद, यम, नियम एवं देवताओं के समीप ले जाया जाता है, इसलिए इस संस्कार को उप(=समीप) नयन (=लेजाना) कहते हैं।[6] प्राचीन समय में उपनेता गुरुओं के पास शिष्यगण ब्रह्मचर्यपूर्वक कई वर्षों तक अध्ययन करते थे। उपनीत बालक को गुरुकुलवासतथा अध्ययन करने से शास्त्रों एवं अपने धर्म का पूर्णरूपेण परिज्ञान हो जाता था। जिसके फलस्वरूप वह विशुद्ध ज्ञान उपार्जित करके सांसारिक कार्यों को करते हुए भी अपने देश की आध्यात्मिक शान्ति के उन्नत लक्ष्य को प्राप्त करता था। उपनयन संस्कार के लिए शास्त्रों में मुहूर्त निर्दिष्ट किये गये हैं। मुहूर्त का तात्पर्य है कि अध्येता की आधिदैविक परिस्थिति (=जन्मकालिक ग्रहस्थिति) से उस समय की आधिदैविक परिस्थिति अनुकूल बन सके, जिससे उसका अध्ययन सकुशल, निर्विघ्न एवं परिपुष्ट हो सके।

उपनयन के काल—ब्राह्मण जाति का गायत्री छन्द से सम्बन्ध है[1]। गायत्री छन्द का एक पाद आठ अक्षरों का होता है[2]। अतः ब्राह्मण बालक का उपनयन संस्कार आठवें वर्ष में बतलाया गया है[3]। क्षत्रिय जाति का सम्बन्ध त्रिष्टुप् छन्द से है[4] तथा त्रिष्टुप् छन्द का एक पाद ग्यारह अक्षरों का होता है[5]। अतः ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय बालक का उनयन संस्कार बताया गया है[6]। वैश्य जाति का सम्बन्ध जगती छन्द से है[7] तथा जगती छन्द का एक पाद बारह अक्षरों का होता है[8]। अतः बारहवें वर्ष में वैश्य बालक का उपनयन संस्कार का काल है।[9]

तीन वर्णों से इन छन्दों का सम्बन्ध भी तथ्यों पर आधारित है। गायत्री अपने गायक (=उपासक) की रक्षा (=त्राण) करने के कारण अन्वर्थ है।[10] इसी प्रकार ब्राह्मणवर्ण भी अपने सच्चे उपासक भक्त की रक्षा कर सकता है। त्रिष्टुप् छन्द में जिस प्रकार त्रि (=तीन) के स्तोभन करने की शक्ति है[11] उसी प्रकार क्षत्रिय वर्ण में भी राजशासन द्वारा देश, काल एवं समाज इन तीनों की असद् गति को रोकने की शक्ति है। जगती गततम=उत्कृष्ट छन्द है।[12] वैश्यजाति भी देश की सुस्थिति के मूलभूत कृषि, गोरक्षा एवं वाणिज्य के व्यवहार से देशरक्षा में अन्तिम उत्कृष्ट सहायक है। इन सभी त्रैवर्णिकों के लिए उपनयन संस्कार हेतु वर्ष की गणना गर्भस्थिति से अथवा जन्मगण से करनी चाहिये।[13]

---

१. स्वे स्वे गृह्ये यथा प्रोक्तास्तथा संस्कृतयोऽखिलाः (प्र० पा०, पृ० ३, अङ्गिरावचनम्)।

२. जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।

३. गौ० ध०, १।१।९ भाष्येऽपि।

४. आप० ध०, १।१।११।

५. आप० ध०, १।१।१२ भाष्येऽपि।

६. गुरोर्व्रताय वेदस्य यमस्य नियमस्य च।
देवतानां समीपं वा येनासौ संविधीयते॥ (गो० गृ० ना०, ४५३)।

---

१. गायत्रो वै ब्राह्मणः (ऐ० १।२८)।
गायत्रच्छन्दा वै ब्राह्मणः (तै० १।१।९।६)।
ब्रह्मगायत्री क्षत्रं त्रिष्टुप् (श० १।३।५।५)।

२. अष्टाक्षरा वै गायत्री (श० १।४।१।३६)।

३. आप० ध०, १।१।१९ पा० गृ०, २।२।१।

४. त्रिष्टुप् छन्दा वै राजन्यः (तै० १।१।९।६)।
त्रैष्टुभो वै राजन्यः (ऐ० १।२८, ८।२) आदि।

५. एकादशक्षरा वै त्रिष्टुप् (गो० उ०, १।१८)।

६. आप० ध०, १।१।१९, पा० गृ०, २।२।२।

७. जागतो वै वैश्यः (ऐ० १।२८)।
जगतीच्छन्दा वै वैश्यः (तै० १।१।९।७)।

८. द्वादशाक्षरपदा जगती (ष० २।१)।

९. पा० गृ०, २।२।३, आप० ध०, १।१।१९।

१०. द्र० निरुक्त, ७।१२।५।

११. यत् त्रिरस्तोभत् तत् त्रिष्टुभ स्त्रिष्टुप्त्वामिति विज्ञायते (निरुक्त, ७।१२।१२)।

१२. जगती गततमं छन्दः (निरुक्त, ७।१३।१)।

१३. म० स्मृ०, २।३६।

काम्यकाल—त्रैवर्णिक वालकों के उपनयन संस्कार के लिए क्रम से आठ, ग्यारह एवं वारह वर्ष का समय नित्य कहा जाता है। किसी विशेष प्राप्ति की इच्छा पर शास्त्रकारों ने वैज्ञानिक ढंग से समय का निर्धारण किया है। मनु के अनुसार ब्रह्मतेज प्राप्ति के लिए ब्राह्मण का पंचम वर्ष में उपनयन होना चाहिये। उसी प्रकार वलप्राप्ति के लिए क्षत्रिय का षष्ठ वर्ष में तथा धन प्राप्ति के लिए वैश्य का सप्तम वर्ष में उपनयन होना चाहिये।[1] महर्षि आपस्तम्ब ने सभी द्विज वालकों के लिए ब्रह्मवर्चस् की कामना में सप्तम वर्ष, आयु की कामना में अष्टम वर्ष, तेज की कामना में नवम वर्ष, पाचन शक्ति की कामना में दशम वर्ष, इन्द्रियों की दृढ़ता की कामना में एकादश वर्ष तथा पशु की कामना में द्वादश वर्ष का समय निर्दिष्ट किया है।[2] विष्णु ने धन की कामना में षष्ठ वर्ष, विद्या की कामना में सप्तम वर्ष, सर्वकामना के लिए अष्टम वर्ष तथा कान्ति की कामना में नवम वर्ष का उपनयन काल निर्धारित किया है।

उपनयन का अन्तिम समय—सभी शास्त्रकारों की सम्मति से संस्कार्य के पंचम वर्ष से उपनयन का काल प्रारम्भ होता है।[3] ब्राह्मण के लिए सोलह वर्ष, क्षत्रिय के लिए वाईस तथा वैश्य के लिए चौवीस वर्ष की अवस्था तक उपनयन की परम अवधि वतलाई गयी है।[4] इस परमावधि के वीत जाने पर प्रायश्चित्त करने के अनन्तर उपनयन संस्कार का अधिकार प्राप्त होता है। यह प्रायश्चित्त राजशासन भंग के दंड की भाँति प्राचीन आर्ष मर्यादा को भंग करने का दंडस्वरूप है। जिस प्रकार राजदंड के योग्य मनुष्य किसी सत्पुरुष के अधिकारों (जमानत आदि) को नहीं रखता है, उसी प्रकार विना प्रायश्चित्त के उसका उपनयनाधिकार नहीं माना जाता है।

पूर्वपुरुषों का उपनयन—ज्योतिर्निवन्ध की उक्ति के अनुसार अधिकारी त्रैवर्णिक यदि अपनी परमावधि के वाद भी एक वर्ष के अन्तर्गत उपनयन संस्कार नहीं कराता है तो वह वृषल होता है।[5] अर्थात् वह वृष=धर्म का उच्छेद करनेवाला निन्द्य है।[6] महर्षि आपस्तम्ब ने अपने पूर्व पुरुषों के उपनयन संस्कार न हुए रहने पर उन कुलों को ब्रह्मसंस्तुत[7] (ब्रह्मघातियों के समान) तथा श्मशानसंस्तुत[8] (श्मशान के समान) वतलाया है। इन कुलों में उत्पन्न व्यक्ति को अपनी वृषलता के निराकरण के लिए वेदशास्त्र के अध्ययन एवं उपनयन संस्कार की इच्छा रहने पर विशेष विधान द्वारा अधिकारी वनाये जाने की शास्त्रों ने आज्ञा प्रदान की है।[9] यह विशेष विधान प्रायश्चित है। प्रायश्चित्तों में शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार से उपवासों को करने का ही मुख्य उपदेश है। अशक्तिवश या मुख्य प्रायश्चित की असमर्थता पर गौण (होमादि) प्रायश्चित्त द्वारा भी अधिकार दिया जाता है। इस गौण प्रायश्चित्त का निर्णय समय, कुल, अनुपनीतता आदि के अनुसार होता है। इसका विस्तृत विवेचन धर्मशास्त्र निवन्धों में वर्तमान है।

उपनयन के अधिकारी—गर्भाधान से उपनयन एवं प्रथम विवाह तक के संस्कारों को करने का अधिकार संस्कार्य के पिता को ही होता है।[1] पिता की अनुपस्थिति में संस्कार्य के अभिभावक को संस्कार करने का अधिकार प्राप्त होता है। शास्त्र की मर्यादा के अनुसार अभिभावकों का क्रम भी निश्चित है,[2] जिसमें सर्वप्रथम पिता का अधिकार है। उसके वाद क्रमशः पितामह, पितृव्य, ज्येष्ठ भ्राता, सात पीढ़ियों के अन्तर्गत पुरुष, स्वगोत्रीय व्यक्ति तथा संस्कार्य से ज्येष्ठ आयु वाले गोत्र भिन्न सत्पुरुष माने गये हैं। लोकव्यवहार में कई जगह वालक के पिता के उपस्थित रहते हुए भी अपने कुल के वड़े पुरुष द्वारा ही वालक का उपनयन संस्कार कराया जाता है, परन्तु यह शास्त्र समनुमत मार्ग नहीं है। यदि वालक स्वयं समर्थ हो गया गया हो तथा पिता आदि सन्निकट सम्वन्धियों की अनुपस्थिति हो तो वह वालक स्वयं ही आचार्य के पास गायत्री सम्वन्ध के लिए प्रार्थना कर सकता है।[3]

यज्ञोपवीत—उपनयन संस्कार का प्रथम मुख्य कर्तव्य यज्ञोपवीत धारण करना है। यज्ञोपवीत, उपवीत, ब्रह्मसूत्र, यज्ञसूत्र या जनेऊ सभी पर्यायवाची शब्द हैं। उपवीत शरीर की पेटिका (कन्धे से नाभि तक) के दो विभाग करनेवाला सूत्र है। यह सूत्र उस भाग के उप=चारों ओर वीत=वँधा रहता है, अतः इसे उपवीत संज्ञा दी गयी है। इस सूत्र के वनाने एवं पहनने का प्रकार शास्त्रों में विशेष प्रकार से निर्दिष्ट है। शास्त्रकारों ने वतलाया है कि उपवीत बिना पहने हुए जो कार्य किया जाता है वह निष्फल है। अतः उपवीत सर्वदा धारण करना चाहिये।[4]

यज्ञोपवीत द्विजत्व का महत्वपूर्ण चिह्न है। यह चिह्न भी किसी विशेष उद्देश्य से रखा गया है। चिह्न की यह विशेषता आवश्यक तथा उचित है कि वह जिस समाज या देश के लिए निश्चित हो उसकी सर्वतोमुखी उन्नति का लक्ष्यस्वरूप हो। भारतवर्ष की सर्वविध अभ्युन्नति चाहने वाले ऋषियों द्वारा प्रणीत शास्त्रों में तथा शास्त्र पर विश्वास करनेवाली आर्य सन्तानों के हृदय में इस जगत् का मुख्यतम लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों को स्वायत्त करता रहा है। अतएव

---

[1] म० स्मृ०, २।३।७।

[2] आप० ध०, १।१।२१–२६।

[3] गो० गृ० ना०, ४५७।

[4] आप० ध०, १।१।२७, म० स्मृ०, २।३८।

[5] अग्रजा बाहुजा वैश्याः स्वावधेरुर्ध्वमब्दतः।
अकृतोपनयाः सर्वे वृषला एव ते स्मृताः॥ (नि० सि०, १९२)।

[6] अ० को०, २।१०।१, रामाश्रमिव्याख्यायाम्।

[7] आप० ध०, १।१।३२।

[8] आप० ध०, १।२।५।

[9] आप० ध०, १।१।३४, १।२।६।

---

[1] पितैवोपनयेत् पुत्रम् (नि० सि०, १९५ पृष्ठे प्रयोगरत्नोक्तिः)।

[2] पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः।
उपनयेऽधिकारी स्यात् पूर्वाभावे परः परः॥ (वी० मि० सं० प्र०, पृ० ४०७) इत्यादि।

[3] वी० मि० संस्कारप्रकाशे मेधातिथिवचनम्, पृ० ३३६।

[4] सदोपवीतिना भाव्यं सदा वद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्। (वी० मि० संस्कार प्रकाशे कात्यायनोक्ति, पृ० ४२२।

इनको पुरुषार्थ शब्द से भी व्यवहार किया जाता है। इन चारों पुरुषार्थों को स्वायत्त करने के मार्ग प्रदर्शक शासनों (नियमों) के समूह को ही शास्त्र कहा जाता है। चतुर्विध पुरुषार्थ एवं इनके स्वायत्तीकरण के साधनों का उपदेश वेद में किया गया है। वेद के मन्त्र आर्यों के प्राणप्रिय भावपूर्ण शब्द हैं। इनके सम्पूर्ण भावों को समझना प्रत्येक व्यक्ति के लिए साधारण नहीं है। अतः लोकपितामह ब्रह्मा ने लोकोपकार के लिए एक लाख अध्यायों में इन चारों पुरुशार्थों के स्वरूप एवं प्राप्तिसाधनों का उपदेश दिया है[1]। मानव में इस विस्तृत उपदेश की ग्रहण शक्ति भी न रह सकी तब महर्षियों ने भिन्न-भिन्न पदार्थों को लक्ष्य करके भिन्न-भिन्न रचनाएँ कीं। स्वायम्भुव मनु आदि ऋषियों ने धर्म नामक प्रथम एवं मुख्य पुरुषार्थ के लिए स्मृतिशास्त्र का निर्माण किया। स्मृतिशास्त्र में प्रधान रूप से धर्म का वर्णन है। इसलिए इसको धर्मशास्त्र भी कहते हैं। यज्ञोपवीत के तन्तुओं में ही समग्र धर्मशास्त्र को सूक्ष्म रूप से समाविष्ट किया गया है।

उपनयन के पूर्व बालक के नौ संस्कार सम्पन्न रहते हैं। उपनयन के अनन्तर एवं समावर्तन संस्कार के पूर्व अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में एक ही उपवीत धारण करने का विधान बतलाया गया है[2]। इस उपवीत में नौ तन्तु होते हैं[3]। जिनका अर्थ उस बालक को अपने पूर्वभावी नौ संस्कारों का स्मरण दिलाता है। मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार भी यह निश्चित है कि मनुष्य की सर्वविध उन्नति के लिये उसका उत्साह अत्यन्त सहायक होता है। यह उत्साह विशेष महत्वपूर्ण कर्तव्यों की उपस्थिति या शक्ति से दृढ़ एवं सक्रिय होता है। व्यक्ति को स्वयं की वर्तमान शक्ति का ज्ञान हृदय में अद्भुत बल दिलाता है। इसे हम आत्म गौरव कहते हैं। इस अपनी शक्ति या स्वरूप को न समझना ही अपने अस्तित्व को खोना होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार उपनीत वेदाध्यायी ब्रह्मचारी बालक को इस नौ तन्तुओं के उपवीत द्वारा उसके संस्कारों की प्रतिक्षण स्मृति दिलाकर अदम्य उत्साह दिया जाता है। ये नौ तन्तु तीन-तीन मिलकर तीन सूत्रों में उपस्थित रहते हैं[4]। तीन सूत्र भी नौ संस्कारों में किसी विशेषता के ज्ञापक हैं। वे संस्कारों के तीन त्रिकों में विभक्त होने का निर्देश करते हैं। प्राथमिक त्रिक अर्थात् गर्भाधान पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन गर्भदशा के संस्कार हैं। दूसरा त्रिक—जातकर्म नामकरण एवं निष्क्रमण स्तन्यजीवनदशा के संस्कार हैं। तृतीय त्रिक अन्नप्राशन, चूड़ाकरण तथा कर्णवेध अन्नाधारदशा के संस्कार हैं।

समावर्तन संस्कार में द्वितीय यज्ञोपवीत भी धारणीय होता है[5]। यह भी पूर्व की भाँति विशेष स्मारक है। प्रथमसूत्र के तीन तन्तु ब्रह्मचर्य, वेदारम्भ एवं केशान्त इन ब्रह्मचर्याश्रम के तीन संस्कारों के द्योतक हैं। द्वितीय सूत्र केतीन तन्तु गृहस्थाश्रम के समावर्तन विवाह एवं अग्निपरिग्रह इन तीन संस्कारों के निर्देशक हैं। तृतीय सूत्र के तीन तन्तुओं में से एक चरम (सोलहवें) संस्कार का परिचायक है तथा अन्तिम दो तन्तु अग्निपरिग्रह के अनन्तर क्रियमाण हविर्यज्ञ एवं सोमयज्ञ संस्थाओं के सूचक हैं। अथवा इन्हें पुरुषत्व का परिचायक भी माना जा सकता है। पुंस्त्व के प्रादुर्भाव या विकास के लिये द्वित्व की संख्या आवश्यक है। पौरुष की परीक्षा द्वित्व अर्थात् दूसरे प्रतिद्वन्द्वी के रहने पर ही हो सकती है। इसी कारण स्मृतिग्रन्थों में पुत्रप्राप्ति के लिये युग्मरात्रियों में ही अभिगमन का विधान किया गया है।[1]

ब्राह्मण ग्रन्थों की परिभाषा के अनुसार यज्ञोपवीत त्रिवृत् है। त्रिवृत् नवसंख्या का बोधक है[2]। परन्तु त्रिवृत् की नवसंख्या तीन त्रिकों में ही विभक्त होनी चाहिये, जिस प्रकार यह यज्ञोपवीत में होती है। त्रिवृत् एक स्तोम है। यह स्तोम अग्नि देवता का है[3]। अग्नि और ब्राह्मण जगद्वीज पुरुष के मुख की सृष्टि हैं अतः सजात हैं[4]। इस कारण अग्नि ब्राह्मणों से अधिक सम्बन्ध रखता है। इसे 'श्रुति आग्नेयो वै ब्राह्मणः' द्वारा प्रतिपादित करती है[5]। ब्राह्मण को ब्रह्मवर्चसी होना चाहिये[6]। ब्रह्मवर्चस् की अग्नि के साथ तुलना की जाती है। इसलिये ब्रह्मवर्चस् प्राप्ति, अग्नि की समानता एवं त्रिवृत् स्तोम की विशेष उपासना की द्योतना कराने हेतु यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। शास्त्रों में इसीलिये ब्रह्मचारी को नित्य अग्नि की परिचर्या का उपदेश दिया गया है[7]। समावर्तन के बाद श्रौत एवं स्मार्त (सभ्य एवं गार्हपत्य) अग्नियों की नित्य स्थिति एवं उपासना होती है। इसी दृष्टि से दूसरे यज्ञोपवीत के भी सर्वदा धारण करने का विधान है।

यज्ञोपवीत द्वारा अर्थशास्त्र को भी परिलक्षित किया गया है। अर्थशास्त्र में दो शास्त्रों का संग्रह कहा जा सकता है, वार्ता तथा दंडनीति। वार्ताशास्त्र प्रधानतया वैश्यवर्ग के लिये अध्येतव्य एवं उपकारक है। वार्ताशास्त्र का विषय पशुपालन, कृषि एवं वाणिज्य है[8]। ये तीनों ही कर्म भारतीय दृष्टि से वैश्यवर्ग की आजीविका है। वार्ताशास्त्र अर्थशास्त्र का एक विशेष सहायक प्रकरण है। आचार्य चाणक्य के अनुसार वार्ता शास्त्र अन्न, पशु, सुवर्ण, सेवक आदि की प्राप्ति कराने के कारण राजा का उपकारक है। वार्ताशास्त्र के द्वारा राजा अपने पक्ष को समृद्धि विधायक उपायों से वशीभूत कर सकता है[9]। वार्ताशास्त्र के तीन मुख्यतम विषयों का स्मरण एक यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों से हो रहा है। द्वितीय यज्ञोपवीत अर्थशास्त्र के दूसरे प्रकरण दंडनीति की तीन सिद्धियों का स्मारक है।

---

१. लक्षं तु चतुरो वेदाः, च० व्यू०, खं० ५।

२. उपवीतं बटोरेकम् (वी० मि० संस्कार प्रकाशे भृगुवचनम्, पृ० ४२१)।

३. यज्ञोपवीतं कुर्वीत सूत्रेण नवतन्तुकम् (वी० मि० संस्कारप्रकाशे देवलोक्तिः, पृ० ४१६)।

४. अधोवृतेस्त्रिभिः सूत्रैः (वी० मि० संस्कारप्रकाशे दत्तात्रेयवचनम्, पृ० ४१६)।

५. स्नातकानां द्वितीयं स्यात् (वी० मि० संस्कारप्रकाशे वसिष्ठवचनम्, पृ० ४२१)।

---

१. म० स्मृ०, ३।४८। २. जै० न्या० मा०, १।३।५।

३. अग्निर्वै त्रिवृत् (तै० १।५।१०।४)। ४. मा० सं०, ३१।११-१२।

५. तै०, २।७।३।१। ६. मा० सं०, २२।२२।

७. अग्नीन्धन भैक्षचरणे (गौ० ध०, १।२।१२)।

८. कृषिपशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता (कौ० अ०, ४।१)।

९. धान्य-पशु-हिरण्य-पुष्प-विष्टिप्रदानादौपकारिकी। तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम् (कौ० अ० ४।२-३)।

७५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

धर्मावतार परमपूज्य यतिश्रेष्ठ श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

श्री चरणों में कोटि-कोटि नमन

मेसर्स मुरलीधर शंकरलाल

अस्पताल रोड, विदिशा [म०प्र०]

फोन : { ३०१
२०६

धर्माधिकारी मंडल

विदिशा

मध्यप्रदेश

मुरारीलाल नारायणप्रसाद सर्राफ

५५।३२, लक्ष्मी मार्केट

कानपुर

होटल मधुवन

* आधुनिक सुविधायुक्त

रमणीय सुखद आवास *

सिविल लाइन्स, कानपुर

फोन : ५३९४३

इन तीनों सिद्धियों की पूर्णप्राप्ति का समुचित उपाय ही दंडनीति में बतलाया गया है। अथवा लोकस्थिति के लिये राजा द्वारा निर्णेतव्य अष्टादश विवादस्थानों की यज्ञोपवीत के अठारह तन्तुओं द्वारा निर्दिष्ट किया गया है।

कामशास्त्र के रहस्य परिचायन की दृष्टि से भी एक यज्ञोपवीत पुरुष एवं दूसरा स्त्री के शासनों का उपदेशक है। वात्स्यायन के अनुसार पुरुष एवं स्त्री के प्रमाण, भाव एवं काल ये तीन प्रासंगिक वर्ग होते हैं। प्रत्येक वर्ग में भी तीन अवान्तर भेद हैं। प्रत्येक वर्ग सूत्र रूप से तथा उनके भेद तन्तुरूप से यज्ञोपवीत में द्योतित होते हैं। इस दृष्टि में सम्पूर्ण यज्ञसूत्र की ९६ चतुरंगुल (चौवा) दीर्घता भी, वात्सायन प्रोक्त आठ अंगों के भेदों की परिचायक है।

उपर्युक्त गवेषणा से यह स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत भारतीय संस्कृति की समग्रता का पूर्ण परिचायक है।

गायत्री उपदेश—उपवीत धारण के अनन्तर बालक का अभिभावक उसे योग्य गुरु की शरण में पहुँचा देता है। गुरु उसे योग्य अधिकारी समझकर गायत्री मन्त्र का उपदेश करते हैं। बालक अपनी योग्यता की परीक्षा गुरुकुल में संरक्षण से लेकर एक वर्ष के भीतर समाप्त कर लेता है। यदि गुरु उसे गुरुकुल में जाने के समय ही मन्त्रोपदेश का अधिकारी समझ लेते हैं तो उसी समय गायत्री मन्त्र का उपदेश कर देते हैं। अन्यथा तीन दिन, छः दिन, बारह दिन या छः मास अथवा बारह मास में उसे उपदेश प्राप्त होता है। उपनयन का शुभ मुहूर्त्त ज्योतिष शास्त्र द्वारा निश्चित किया जाता है। तदनुसार शुभलग्न में गायत्री मन्त्र का उपदेश होना चाहिये। संस्कार के अन्य कार्य अंगभूत हैं। अतः उनमें विशेष रूप से लग्न का विचार नहीं किया जाता है।

मन्त्रपरिचय—शुभलग्न में योग्य गुरु द्वारा परीक्षित शिष्य को जो मन्त्र नामक अक्षर समुदाय प्राप्त होता है वह विशेष शक्ति से सम्पन्न होता है। उसी मन्त्र को पुस्तकों में देखकर, असमय में ग्रहण करके या गुरु से प्राप्त कर अभ्यास किया जाय एवं अनुष्ठान आदि वैध प्रयोग किये जायँ तो वे शास्त्रों के दृढ़ सिद्धान्त के अनुसार कल्याणकारक नहीं हो सकते। क्रियासार में बतलाया गया है कि जो मूर्ख मनष्य प्रयोगपद्धति सहित मन्त्र को पुस्तक से देखकर उसके आधार पर ही जप करता है उसके मूल का ही नाश होता है। फल की बात ही दूर है[1]। भगवान् शंकर का वचन है कि जो अज्ञ गुरु के उपदेश के बिना ही पुस्तक, चित्र आदि को देखकर जप करता है वह बन्धन एवं पाप का भागी बनता है[1]।

जिस प्रकार पद पर आसीन अधिकारी द्वारा प्रदत्त वैध आदेश या उपदेश ही माननीय एवं कार्यक्षम होता है। उसी प्रकार शास्त्रोक्त निश्चित ब्राह्मण योग्य गुरु द्वारा उपदिष्ट मन्त्र एवं आदिष्ट विधान ही कल्याणकारक होता है। अनधिकृत व्यक्ति का अवैध आदेश या उपदेश लोक में भी आदरणीय या अनुशीलनीय नहीं होता एवं स्वतन्त्र कर्त्तव्य लोकहितकारक होने पर भी शासन नियम के बहिर्भूत होने के कारण लाभप्रद न होकर कष्टप्रद ही होता है। उसी प्रकार शास्त्रोक्त अनधिकृतब्राह्मणेत्तर व्यक्ति या पुस्तकादि से उपदिष्ट प्राप्त मन्त्र भी अनादरणीय एवं अनुशीलनीय होते हैं। शास्त्रमर्यादा के व्यतिक्रम करने के कारण मन्त्रदाता एवं ग्रहणकर्ता के लिये लाभ के स्थान पर हानिप्रद ही है। मन्त्रोपदेश करने का अधिकार ब्राह्मण को ही है। इसके लिये शास्त्रों में सर्वत्र निर्देश दिये गये हैं[2]।

उपनयन का वर्तमान स्वरूप—उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में शिक्षण व्यवस्था को महनीय बनाने हेतु उपनयन संस्कार की भावात्मक विशिष्ट व्यवस्था की गयी थी। उपनयन एवं तदनन्तर ब्रह्मचर्याश्रम द्वारा अध्येता में तेजस्विता बुद्धि एवं ज्ञान का पर्याप्ति विकास होता था। वर्तमान समय में उपनयन संस्कार की व्यवस्था समाप्त हो चली है। किन्हीं-किन्हीं आस्तिक कुलों में बालक का उपनयन संस्कार किसी तीर्थक्षेत्र में जाकर अथवा घर में ही सम्पन्न कराया जाता है। परन्तु ब्रह्मचर्याश्रम में बालक को रखने की परम्परा मूलरूप से विच्छिन्न हो चुकी है। उपनयनसंस्कार में यज्ञोपवीतधारण एवं गायत्री उपदेश के अनन्तर तत्काल समावर्तन संस्कार का बालक का गृहस्थाश्रम में प्रवेश करा दिया जाता है। युग के परिवर्तित परिवेश में यह उचित ही है। भविष्य को ध्यान में रखते हुए शास्त्रकारों ने इसे अनुमति भी दी है।[3] भारतीय त्रैवर्णिक यदि उपनयन के वर्तमान स्वरूप का भी निर्वाह कर सकें तो उन्हें प्राचीन संस्कृति की रक्षा का विशिष्ट श्रेय प्राप्त होगा।

✻

---

१. कल्पे दृष्ट्वा तु यो मन्त्रं जपते तु विमूढधीः ।
मूलनाशो भवेत्तस्य फलमस्य सुदूरतः ॥ (स० स० ५१४) ।

---

१. गुरुं विना यस्तु मूढः पुस्तकादिविलोकनात् ।
जपेद् बन्धं समाप्नोति किल्विषं परमेश्वरि ॥ (स० स० ५१४)

२. द्र० नि० सि०, पृ० १९५ ।

३. युगेयुगे तु दीक्षासीदुपदेशः कलौ युगे । चन्द्रसूर्यं ग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे
शिवालये।मन्त्रमात्रप्रकथनमुपदेशः स उच्यते ॥ (ध० सि०, पृ० १८८)।
अनुपाकृतवेदस्य कर्तव्यो ब्रह्मयज्ञकः ।
वेदस्थाने तु सावित्री गृह्यते तत्समा यतः ॥ (नि० सि०, पृ० १९७,
जैमिनिः) ।

७५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

सनातनधर्म प्रतीक वेदशास्त्र प्रवीण अनन्तश्री विभूषित

यतिश्रेष्ठ श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज

के

श्री चरणों में

कोटिशः नमन

महादेव हंसनाथ मिश्रा एण्ड कं०

फ्रूट मर्चेन्टस् एंड कमीशन एजेंट

स्युनिसिपल प्लान्टेन मार्केट
भायखला स्टेशन रोड
बंबई–४०००११

टेलिफोन : ३७७९५७
टेलिग्राम : महामिश्रा
ट्रेडमार्क : M. H.

M/S. GHAMAJI MANAJI MEHER

Plantain, Vegetable Merchants
&
Commission Agents

Bhaji Bazar, Byculla
Dr. Ambedkar Road
BOMBAY-400 027

टेलिफोन : ३७३३६९
टेलिग्राम : GHAMAMEH
मार्क G. M. M.

भारतभूमि और गायत्रीमन्त्र

● चक्रवर्ती रामाधीन चतुर्वेदी ●

ब्रह्मा की सृष्टि में भूमण्डल का एक विशेष स्थान है और इस भूमण्डल में भी भारतभूमि की महिमा अद्भुत है। इस भूमि पर मनुष्य रूप में प्रकट होने के लिये देवता भी लालायित रहते हैं। बात यह है कि भारतभूमि में ही यह एक विशेष शक्ति है जो निर्गुण निराकार ब्रह्म को भी सगुण-साकार रूप में प्रकट कर देती है। जिसके साक्षात्कार के लिये ऋषि-मुनिजन आजीवन श्रवण, मनन, निदिध्यासन में रत रहते हैं, उस व्यापक ब्रह्म का दर्शन जहाँ साकार रूप में समय-समय पर होता रहता है, उस भूमि पर जन्म लेने की अभिलासा किसके मन में नहीं होगी? प्राणीमात्र अपनी व्यापकता के लिये व्यग्र रहता है। उसकी उपलब्धि में ही परमविश्रान्ति का अनुभव होता है। यह बात स्वभाव सिद्ध है कि प्रत्येक वस्तु में सजातीयाकर्षण होता है। परमाणु के लिये महत्परिमाण का आकर्षण प्रत्यक्ष है। नदियाँ समुद्र में मिलकर ही शान्त होती हैं। आकाश में फेंका हुआ मिट्टी का ढेला भूमि को प्राप्त करके ही रुकता है। अग्नि की ज्योति सदा आकाश की ओर ही उन्मुख रहती है, क्योंकि सूर्यज्योति उसके लिये व्यापक आकर्षक तत्त्व है। जब जड़ पदार्थों में यह सजातीयाकर्षण रूप सहज-धर्म देखा जाता है तो जो चेतन प्राणी हैं, उनमें अपने व्यापकरूप ब्रह्म की ओर आकर्षित होना तो स्वतः सिद्ध है, और सबका आकर्षक व्यापक परब्रह्म को भी आकर्षित करने की शक्ति भारतभूमि मे है, क्योंकि भारतभूमि पर प्रेम और भक्ति की धारा सदा बहती रहती है, जिसके कारण ब्रह्म को बालकरूप में देखने का सौभाग्य भारतवासियों को मिलता है। जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

व्यापक ब्रह्म निरञ्जन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद॥[1]

इसीलिये भारतभूमि की गरिमा का गान देवता भी करते हैं—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥[2]

अर्थात् स्वर्ग और मोक्षपद की प्राप्ति का कारण भारतभूमि है। इसलिये इस भूमि पर जन्म लेने वाले मनुष्य धन्य हैं। देवता लोग भी मनुष्य रूप में यहाँ जन्म लेते हैं। इस प्रकार अन्य-देशों की भूमि की अपेक्षा भारत-भूमि का महत्त्व स्पष्ट है।

साथ ही एक बात और यह है कि निराकार या साकार ब्रह्म को जानने तथा पाने का जो मुख्य साधन वेद है, उसका आविर्भाव भी सबसे पहले इसी भारतभूमि पर हुआ, और वही विश्व के इतिहास में सबसे पहला ग्रन्थ माना गया। ऋग्वेद ही विश्व का प्रथम ग्रन्थ है—यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है। इसमें विवाद का कोई प्रश्न उपस्थित नहीं होता।

वेद का बीजमन्त्र प्रणव है, जो ब्रह्म का वाचक है। जैसा कि योग सूत्रकार महर्षि पतञ्जति ने स्पष्ट कहा है—"तस्य वाचकः प्रणवः[1]" अर्थात् अविद्याऽस्मितादि पञ्च क्लेश एवं पाप पुण्यादि चतुर्विध कर्म, तथा इनके भोगों और संस्कारों से शून्य, निरतिशय ज्ञानवान् कालातीत जो पुरुष विशेष ईश्वर है, उसका बोधक प्रणव=ओङ्कार पद है। ओङ्कार ही उसकी संज्ञा है, और ओङ्कार बोध्य ब्रह्म ज्योति की उपासना का प्रमुख साधन गायन्त्री मन्त्र है। जिसमें वैदिक और लौकिक शास्त्रों का सारतत्त्व निहित है। रामायण, महाभारत, पुराणादि ग्रन्थों में भी गायत्रीमन्त्र के अर्थ का ही उपाख्यानों द्वारा उपबृंहण हुआ है। मूलतः सारतत्त्व तो एक ही है जो निरतिशय प्रकाशरूप है, उसी तत्त्व की ओर गायत्रीमन्त्र का संकेत है। क्योंकि गायत्रीमन्त्र के द्वारा हम प्रसविता=परमपिता परमेश्वर के उस वरेण्य=सर्वश्रेष्ठ मनोहर भर्ग=प्रकाश का ध्यान करते हैं, जो हमारे विचारों को सदा प्रेरित करता रहे। तात्पर्य यह है कि मनुष्य के दैनिक कार्य की प्रवृत्ति में जिस प्रकार सूर्य-प्रकाश प्रेरक है, उसी तरह बुद्धि को निरन्तर प्रेरित करनेवाला परम प्रकाश है, जो सबका प्रकाशक होता हुआ भी बुद्धि में सदा भासित रहता है। किन्तु हमारी बुद्धि उस प्रकाश से लौकिक विषयों में रम जाती है और अपने प्रकाशक को भूल जाती है। उसी भूली हुई बुद्धि को प्रकाश की ओर अन्तर्मुख करना ही गायत्री मन्त्र का परम लक्ष्य है। और उसी परम लक्ष्य के प्रतिपादन में हमारे सभी निगमागम शास्त्रों का भी परम तात्पर्य निहित है। श्रुति का स्पष्ट उद्घोष है कि—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥[2]

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा-१९८।

[2] श्री विष्णु पुराण, २, ३, २४।

[1] पातञ्जल योगदर्शन, पा० १, २७ सू०।

[2] मुण्डकोपनिषद्, २-२-१०।

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज
के
श्री चरणों में शतशत नमन

मूलचन्द हनुमान प्रसाद

नोहर, राजस्थान (फोन : १२)

संबंधित :—

- श्री होलसेल क्लाथ स्टोर, एलनाबाद
- मूलचन्द रामेश्वर दास, नोहर
- मूलचन्द रघुनाथ प्रसाद, नोहर

परमपूज्य
धर्मसम्राट्
श्री स्वामी करपात्री जी महाराज
के चरणों में
शतशत प्रणाम

*

गोपीराम हजारीमल

नोहर, राजस्थान

अनन्तश्री विभूषित
स्वामी श्री करपात्री जी महाराज
के
७५वें जन्म दिवस पर
सद्भक्तिपूर्ण नमन

शिवकुमार हिसारिया एण्ड सन्स

(ग्रेन मर्चेण्ट एण्ड कमीशन एजेण्ट)
हनुमानगढ़ जंक्शन (राजस्थान)

फोन—दुकान : 29   निवास : 49

धर्मप्राण स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के
७५वें जन्म दिवस पर

श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम

सराफ पेपर मिल्स लिमिटेड

अलवर (राजथास्न)

रजिस्टर्ड कार्यालय
101-103 पद्मा टावर, I राजेन्द्र प्लेस
नई दिल्ली—110 008
फोन : 564359 - 562833

अर्थात् उस परम प्रकाश को प्रकाशित करने की क्षमता जब सूर्य, चन्द्र, तारे तथा बिजलियों के दिव्य प्रकाश में नहीं है, तो फिर भौतिक अग्निप्रकाश की वहाँ कथा ही क्या है, वस्तुस्थिति तो यह है कि उस परम प्रकाश के कारण ही सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित है और सूर्य चन्द्रादि में भी उसी का प्रकाश भासित हो रहा है। भाव यह है कि सम्पूर्ण जगत् भास्य है, भासक तत्व तो केवल एक ही है जिसे चिन्मय ब्रह्म कहा जाता है। गीता में उसी चिन्मय भासक तत्व को भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना धाम और तेज बतलाया है—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥
यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥[1]

भगवान् के इस सिद्धान्त कथन में "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्" इस श्रुति का भाव ही साररूप से प्रकट हुआ है। मूलतः यह बात सिद्ध है कि उस सर्व श्रेष्ठ परम-तेज की आराधना और उसकी अनुभूति में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है और उसकी अनुभूति का परम साधन गायत्री मन्त्र है। इस मन्त्र का अनुसंधान पूर्वक जप से द्विजाति के सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

राजर्षि विश्वामित्र को गायत्री मन्त्र के अनुष्ठान से ही ब्रह्मर्षिपद प्राप्त हुआ था। इसलिए राजर्षि से ब्रह्मर्षि बनाने की शक्ति जिस गायत्री मन्त्र में है, उसकी महिमा जितनी भी कही जाय थोड़ी है। याज्ञवल्क्य ऋषि ने गायत्री के विषय में कहा है—

गायत्री वेद जननी गायत्री पापनाशिनी।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिविचेह च पावनम्॥

अर्थात् गायत्री वेद (ज्ञान) की माता तथा सभी पापों को नष्ट करने वाली एक शक्ति है। इस भूमण्डल तथा परलोक में भी इससे बढ़कर पवित्र वस्तु दूसरी फोई नहीं है। ज्ञान प्रदान कर अज्ञान को दूर करने की पवित्र शक्ति गायत्री मन्त्र में ही है। इसी लिए देवीभागवत में कहा गया है—

सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः।
आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम्॥[1]

अर्थात् शिव और विष्णु के अनन्योपासक शैव वैष्णव कोई नहीं है, सभी द्विज-ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य तो आदि शक्ति, वेदमाता, गायत्री देवी की उपासना करते हैं, इसलिये शाक्त हैं।

वस्तुतः शक्ति की उपासना मानव मात्र का सहज धर्म है। शक्तिमान् शिव तथा विष्णु की उपासना में भी उनके स्वभाव और प्रभावरूप शक्तियों का ही अनुचिन्तन होता है। इसलिये सभी लोग अपने इष्टदेव की शक्ति के उपासक होने के कारण भी शाक्त हैं। वेदमाता गायत्री के उपासक द्विज हैं, इसका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की संज्ञा "द्विज" है, क्योंकि इनका जन्म दो बार होता है। पहले माता के गर्भ से और फिर यज्ञोपवीत संस्कार से। केवल माता के गर्भ से उत्पन्न और यज्ञोपवीत संस्कार से विहीन-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तो सामान्य मानव की कोटि में ही आते हैं, धर्मशास्त्र उन्हें "द्विज" नहीं कहता। धर्मशास्त्र तो "संस्काराद् द्विज उच्यते" इस सिद्धान्त का समर्थक है। अतः संस्कारशून्य—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य भी गायत्री मन्त्र के अधिकारी नहीं होते। गायत्री मन्त्र का अधिकारी तो यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत व्यक्ति ही होता है। और वह अधिकारी व्यक्ति यदि अपने अधिकार के सदुपयोग में विधिपूर्वक गायत्रीमन्त्र का अनुष्ठान तथा अनुचिन्तन करता रहे तो निश्चय ही उसे चिन्मय प्रकाश की अनुभूति होती है, और वह स्वयं चिन्मय प्रकाश हो जाता है।

इस प्रकार निष्कर्ष यह है कि भारतभूमि और गायत्रीमन्त्र की उपासना का अधिकार जिन महापुरुषों को प्राप्त है, उनका जीवन धन्य है।

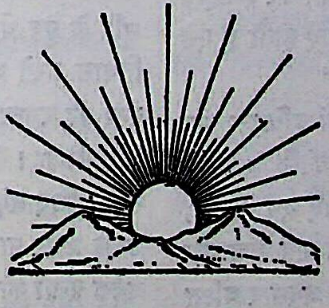

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीता,, १५-६-१२।

[1] देवी भागवत ११।१६।१७

वेदों में श्रीरामचरित्र

● श्री अवधबिहारी उपाध्याय 'व्यास' ●

"वेदों में श्रीरामचरित्र है या नहीं" यह अतीत का पुरातन प्रश्न है—जिसपर बड़े ही समारोह के साथ वैदिकों ने विस्तृत विचार किया है और सभी इस तथ्य से पूर्ण सहमत हैं कि वेदों में भौतिक पदार्थों के वर्णन के साथ ही इतिहास का भी वर्णन है। वेदार्थ के लिए श्रीयास्कजी का निरुक्त प्रमाण माना जाता है। श्री यास्कजी परम वैज्ञानिक होते हुए भी वेदों में इतिहास का होना मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं—इत्यैतिहासका—नि० २।५।१६।२, तत्रैतिहासमाचक्षते—नि० २।५।२४।२, तत्र ब्रह्मेतिहास मिश्रमृङ् मिश्रं गाथा मिश्रं भवति—नि० ४।१।६।२।

वेदाभाष्यकार श्रीसायणजी ने भी अनेक वेद मन्त्रों की अवतारपरक व्याख्या की है। उदाहरणार्थ : वराहेण पृथिवी संविदाना······(अथर्व० १२।१।४२), इदं विष्णुर्विचक्रमे·····(ऋग्वेद १।२२।१७), वज्रनखाय विद्महे·····(तैत्तिरीय ११।३१), प्रोवाच रामो भार्गवेयो·····(ऐतरेय ७.५.३) आदि मन्त्र देखे जा सकते हैं—जिनकी व्याख्या में क्रमशः वराह, वामन, नृसिंह और परशुराम आदि अवतारों का उल्लेख है।

वेद स्वयं कहता है कि हमारे पेट में इतिहास भरे हुए हैं। देखिए अथर्व० १५–६ तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ११, इतिहासस्य च वै पुराणस्य च गाथानाञ्च नाराशंसीना च प्रियं धाम भवति य एव वेद। १२।

महर्षि मनु के शब्दों में—

भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति।

जो कुछ विश्व में हो गया है, हो रहा है या होने वाला है वह सब वेदों में है। सभी घटनादि के मूल रूप श्रुति में न हों तो उसमें पूर्ण ज्ञान है, यह कहा न जा सके। आज के सर्वमान्य सनातनधर्म के स्तम्भ, वेद-भाष्यकार यति शिरोमणि स्वामी श्री करपात्रीजी का कथन है "अनादि अपौरुषेय वेदों में नित्य इतिहास हैं। वेदों में घटना के अनन्तर इतिहास का उल्लेख नहीं हुआ है अपितु वेदानुसार सृष्टि एवं घटनाएँ होती हैं ऐसे इतिहास नित्य इतिहास कहे जाते हैं—जो वेदों में हैं।[1]"

इस प्रकार स्पष्ट है—सभी वेदवेत्ताओं को वेदों में इतिहास का होना मान्य है। क्योंकि प्रतिकल्प घटित होनेवाले दिव्य कोटि के सभी तथ्य वेदों से सिद्ध हैं, तदनुकूल सर्ग-प्रतिसर्ग आदि की घटनाएँ एवं श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि के नित्य इतिहास भी वेदों से सिद्ध हैं। वे सब वृत्त एक कालिक नहीं अपितु प्रतिकल्प तथैव "यथापूर्वमकल्पयत्" के अनुसार घटित होनेवाले सत्य पर आधारित तथ्य हैं। यह हमारी कल्पना नहीं किन्तु आदि कवि महर्षि वाल्मीकि और वेदव्यास जैसे मन्त्र द्रष्टा ऋषियों ने तथा गोस्वामी तुलसीदास आदि सन्त परम्परा ने वेदों में श्रीराम, श्रीकृष्ण चरित्र होना बताया है। महामहिम पूर्वाचार्यों का उद्घोष है—

वेद वेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षात् रामायणात्मना।।
तस्मात् रामायणं देवि वेद एव न संशयः।—'अगस्त्यसंहिता'।

वेदों से वेद्य परब्रह्म जब दशरथनन्दन के रूप में अवतरित हुए तब वेदों ने भी प्राचेतस् भगवान् वाल्मीकि के मुख से स्वयं रामायण रूप में अवतार लिया। अतः भगवान् शंकर पार्वती से कहते हैं—हे देवि! रामायण स्वयं ही वेद है, इसमें संशय नहीं है। इन पवित्र वचनों के आधार पर वेदों में निरूपित अवतारों के चरित्र या उनके वर्णन विशेषतः समुचित कहे जा सकते हैं।

प्राचीन काल में वैदिक ऋचाओं से जिस परम तत्त्व का ज्ञान होता रहा है, अवतार में आये श्रीराम वही परतत्त्व हैं, यह संहिता काल के ऋषियों ने श्रीराम में देखा और सीधा निर्णय दिया—"राम एव परब्रह्म" राम परमात्मा परब्रह्म हैं। उनकी उपासना समुचित है। सारी प्रजा का झुकाव श्रीराम की उपासना की ओर हुआ। युग परिवर्तन के कारण प्रजा में अविद्या के प्रभाव से अन्धकार का प्रसार हुआ और प्रजा को यह समझने की आवश्यकता हुई कि राम का अवतार परात्पर अवतार है तो वेदों में कहाँ है? तब वेदों में राम को या रामकथा को खोजने का समय आया। बड़ी-बड़ी विभूतियाँ उस समय आयीं और उन्होंने वेदों में पैठ कर राम को और रामकथा को खोजा और संसार को बताया—वेदों में रामचरित्र है और रामचरित्र में वेद है। यह कार्य विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में आचार्य श्री नीलकण्ठ ने किया। इनका जन्म सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में विद्वानों ने माना है। ये चतुर्धरवंशीय पं० गोविन्द सूरि के पुत्र थे और गोदावरी के पश्चिम तटवर्ती कोपर नामक ग्राम में निवास करते थे। आचार्य नीलकण्ठ ने "मन्त्र रामायण" नाम से वैदिक ग्रन्थ की रचना की और उसमें सम्पूर्ण रामकथा को वेद की ऋचाओं से सिद्ध किया। 'मन्त्र रामायण' में ऋग्वेद के मन्त्र हैं तथा कुछ अन्यत्र से भी लिए गये हैं। उन मन्त्रों पर विस्तृत संस्कृत भाष्य है जिसे पढ़कर उनके प्रखर पाण्डित्य का ज्ञान होता है। आचार्य नीलकण्ठ ने और भी अनेक ग्रन्थों की रचना की है। सम्पूर्ण महाभारत पर उनकी संस्कृत टीका प्रसिद्ध ही है। इन्होंने अपने ग्रन्थों में अपने लिए "श्रीमत्पद वाक्य प्रमाण मर्यादा धन्धर चतुर्धरवंशावतंश गोविन्द सूरि सुनुः नीलकण्ठः" लिखा है। ये बड़े ही प्रमाणवादी विद्वान् थे। 'मन्त्र रामायण' में भी ऋग्वेद के मन्त्रों की रामकथापरक व्याख्या के पूर्व उनकी प्रतिज्ञा है—

---

[1] विशेष जानकारी के लिए पूज्य स्वामी करपात्रीजी द्वारा लिखित 'वेदार्थ पारिजात' एवं 'रामायण मीमांसा' देखें।

एकैकस्मिन् यथादर्शे प्रासादो मुहुरान्तरैः ।
सहितो दृश्यते देवेष्वेवं लोकः सुरान्तरैः ॥१॥
तस्यात्स्युर्देवताः सर्वाः प्रत्येकं विश्वयोनयः ;
अन्योन्ययोनयश्चैव यथा यास्कमुनीरितम् ॥२॥
अतस्तासां स्तुतिः सर्वा रामस्तुतरसंशयम् ।
वलवद् रामलिङ्गायां यत्किञ्चिद्देवतामृतम् ॥३॥
रामायणानुसारेण व्याकुर्वन्नैव दुष्यति ।
विनियोगानुगो गौण्या वेदव्याचष्ट भाष्यकृत् ॥४॥
तत्त्वानुगो मुख्यवृत्त्या व्याकुर्वे यास्कवत्त्वहम् ।

अर्थात्—जैसे विभिन्न दर्पणों में (उनके छोटे-बड़े आकारों के अनुसार) राजप्रासाद आदि ने दृश्य सुदूरवर्ती भी निकटवर्ती जैसे नानाविध दीख पड़ा करते हैं। इसी प्रकार देवताओं में यह लोक अन्यान्य देवताओं से व्याप्त-सा जान पड़ता है। इसलिए सभी देवता एक-एक करके विश्व के कारण भूत हैं। वे अन्योन्य जन्मा होते हैं जैसा यास्क मुनि ने अपने 'निरुक्त' में कहा है। इस प्रकार चाहे किसी भी देवता की स्तुति की जायगी तो वह अन्ततोगत्वा राम भगवान् की स्तुति में ही पर्यवसित होती है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। सो जिन श्रुतियों में रामार्थ सूचक मुख्य लिङ्ग प्रमाण विद्यमान होगा और यत्किञ्चित् अन्य देवता की भी प्रतीति होती होगी एवं विध श्रुतियों की रामायणानुसारणी व्याख्या करने में कोई भी दोष नहीं दीख पड़ता। सायणादि भाष्यकारों ने गौण वृत्ति के अनुसार विनियोनिष्ठ व्याख्या की है। मैं यास्क की भाँति मुख्य वृत्ति के अनुसार तत्वनिष्ठ व्याख्या करता हूँ।

उक्त प्रतिज्ञा के अनुसार आचार्य नीलकण्ठ ने विद्वत्तापूर्ण रीति से आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक त्रिविध व्याख्याओं का निर्देश करते हुए समस्त रामचरित्र वर्णन किया है। पाठकों के अवलोकनार्थ कतिपय उदाहरण देना अनुचित न होगा।

अयोध्या—अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तेषां हिरण्मयः कोशः स्वर्गोज्योतिषावृतः ॥
(अथर्ववेद १०।२।३१)

आठ चक्र (गोल बाजार) और नव द्वारों वाली साक्षात् देवपुरी अयोध्या नगरी है। जिसमें सुवर्ण पूरित कोश (खजाना) स्वर्गीय ज्योति से प्रकाशित है।

सरयू नदी का वर्णन—सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो मही खसा यन्तु वक्षणीः (ऋग्. १०।६४।९)।

अर्थात्—सरयू नदी अपनी महती तरङ्गों से हमारे यज्ञ की रक्षा के लिए यहाँ उपस्थित हो।

सूर्यवंशी मनु— अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः। (ऋग्वेद, ४।२६।१)।

अर्थात्—(भगवान् कहते हैं) मैं ही सृष्टि के आदि में मनु हुआ और सूर्य भी मैं हूँ।

दशरथ—चत्वारिंशद् दशरथस्यशोणाः। (ऋग्वेद, २।१।११)।

अर्थात्—महाराजा दशरथ के चालीस शोण (लाल रंग के विचित्र अश्व) थे।

पुत्रेष्टि यज्ञ के हव्य से पुत्र प्राप्ति—

स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारु विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परितमांस्यक्तून् प्रमातृभ्योऽधिक निक्रदद्गाः ॥
(ऋग्वेद, १०।१।२)।

अर्थात्—द्यावा भूमि व्याप्त तेज ही गर्भ रूप में परिणत हो गया। हव्योपयोगी औषधियों में (मन्त्रशक्ति द्वारा) दिव्य शिशु में तेज भर गया था। तमोगुण रहित विचित्र शिशु माताओं की गोद में बाल रोदन करने लगे।

विष्णु ही रामरूप में अवतीर्ण—विष्णुरित्था परमस्य विद्वान् जातो बृहन्नभियाति तृतीयम् ॥—(ऋग्वेद, १०।१।३)।

अर्थात्—परमपुरुष सर्वज्ञ विष्णु भगवान् ही इस प्रकार राम रूप में अवतरित हुए जो ब्रह्म होते हुए भी विचित्रमय देहधारी बन गये

चारों भ्राताओं का नामकरण—चत्वारि ते असुर्याणि नामाऽदाभ्यानि महिषस्य सन्ति।—(ऋग्वेद, १०।५४।४)।

अर्थात् (हे विष्णु) आप महामहिम हैं, आप असुरों का भी हित करने वाले अवर्णनीय हैं, आपके (राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न) चार नाम हैं।

विश्वामित्र का यज्ञ संरक्षण—विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः।—(ऋग्वेद, ३।५३।९)।

अर्थात्—सुदास गोत्रोत्पन्न राम भगवान् को विश्वामित्र ऋषि (अपनी यज्ञ की रक्षा के लिए) लिवा ले गये, इन्द्र कौशिकों के निर्विघ्न यज्ञ द्वारा बहुत सन्तुष्ट हुये।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परियातो अध्वरम् ।
—(ऋग्वेद, १०।८५।१८)।

अर्थात्—राम लक्ष्मण दोनों बालकों की भाँति क्रीड़ा करते हुए यज्ञवाट् के इधर-उधर छुपकर घूम-घूमकर यज्ञ की रक्षा करने लगे।

भूमिजा सीता की वन्दना—अर्वाची सुभगे! भव सीते! वन्दा महेत्वा। यथा नः सुभगाऽससि यथा नः सुफला अससि ॥—(ऋग्वेद. ४।५७।६)।

अर्थात्—(देवता स्तुति करते हैं) हे सुभगे सीते! हम सब तुम्हारी वन्दना करते हैं, तुम हमारे लिए अनुकूल हो। हमें सौभाग्यशाली और सफल मनोरथ बना दो।

श्री सीता का पंचामृत द्वारा अभिषेक—घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।—(यजु०, १२।७०)।

अर्थात्—(ऋत्विजों ने कहा) सीताजी को घृत, मधु उपलक्षित पंचगव्य द्वारा सम्यक् अभिषिक्त करो। यह सम्पूर्ण देवगण और मरुद्गणों से सम्मानित दिव्य शक्ति है।

श्रीराम सीता विवाह—इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषाऽनुयच्छतु। —(ऋ० ४।५७।७, अथर्व० ३।१७।४)।

अर्थात्—सर्वैश्वर्य सम्पन्न भगवान् राम सीता को ग्रहण करें और राजा (प्रजापोषक) जनक उसे प्रदान करें।

दशमुख रावण—ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दश शीर्षो दशास्यः। स सोमं प्रथमः पपौ स चकार रसं विषाम् ॥—(अथर्व० ४।६।१)

With Best Compliments From :

ISDEC INDIA PRIVATE LTD.

IMPORT SUBSTITUTE DEVELOPMENT, AIR-COMPRESSOR &
ALL SORTS OF PNEUMATIC SPARES

Regd. Office : 33/1, NETAJI SUBHAS ROAD,
CALCUTTA - 700 001
Phone : 22-0792

Branch : Kilburn Colony, Behind 'Udipi Lodge' Lane
HINOO, RANCHI - 834 002
Phone : 8755

With best compliments from :

M/s. INDO SCRAP
(FOUNDRY DIVISION)

ALL TYPES OF FERROUS AND NON-FERROUS METAL CASTINGS AS PER DRAWING AND SPECIFICATION RANGING FROM 500 GRAMS TO 3 M/TONS.

We Are the Manufacturers of Soil Pipes and Fitting as Per (B. S. S. 416)

M/s. INDO SCRAP
• SCRAP PROCESSORS •

PROCESSING OF STEEL SCRAP, BALES OF SCRAP SHEETS AND CRUSHERS OF BORINGS & TURNINGS.

Works :
ADITYAPUR Industrial Area
Plot No. B22/3rd Phase,
Adityapur
JAMSHEDPUR.

Head Office :
'GOYAL BHAWAN'
Marwari Para Road
Jugsalai
JAMSHEDPUR-831006.

Works :
FOUNDRY ROAD
Bajrangbali Market,
Burmamines.
JAMSHEDPUR

अर्थात्—पुरायुग में दश सिर और दश मुख वाला एक प्रसिद्ध ब्राह्मण उत्पन्न हुआ। उसने प्रथम तो यज्ञानुष्ठान तपश्चर्य्या रूप अमृत पान किया। पश्चात् वर प्राप्त हो जाने पर उसे विष बना दिया अर्थात् यज्ञ, होम, पूजन, पाठादि नहीं करने देता है।

सीता की अग्नि परीक्षा—सुप्रकेतैं र्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुषद्भिर्वर्णैं रभिराममस्थात् ।—(ऋ० १०।३।३, साम १५।२।३) ।

अर्थात्—दिव्य तेज से उपलक्षित सीता को लेकर जाज्वल्यमान अग्निदेव राम भगवान् के सामने उपस्थित हुये।

रामराज्य की एक झाँकी—

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीराम: स्वधा च यत्र तृप्तिश्च ॥
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुद प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र मामृतं कृधि ॥

(ऋग्वेद, ९।११३।८-११) ।

अर्थात्—जहाँ विवश्वान् के वंशावतंश भगवान् राम राजा हैं वहाँ मानो समस्त स्वर्गीय सुखो का आवास हो गया है। जहाँ समय पर याचित वृष्टि होती थी, प्रजाजन स्वाहाकार, स्वधाकार में प्रवृत्त थे। सब तृप्त रहतें थे। सर्वत्र आनन्द, मोद, हर्ष और प्रमोद छाया था।

इस प्रकार वेद में रामचरित के वर्णन प्रसङ्गों का निर्देश उपलब्ध होता है।

अनेक हार्दिक शुभ कामनाओं सहित—

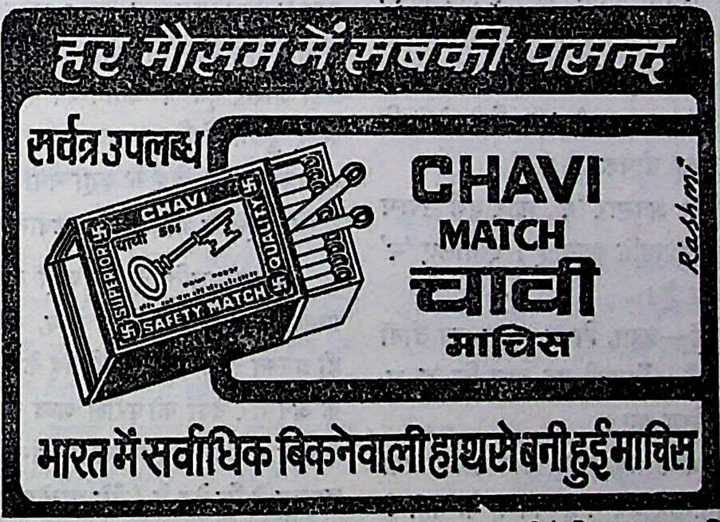
हर मौसम में सबकी पसन्द
सर्वत्र उपलब्ध
CHAVI
SUPERIOR QUALITY
SAFETY MATCH
CHAVI
MATCH
चावी
माचिस
Rashmi
भारत में सर्वाधिक बिकनेवाली हाथसे बनी हुई माचिस

- जलने में उत्तम
- उत्कृष्ट टेकनिक द्वारा निर्मित
- हर घर में उपयोगी

वितरक

हनुमान दास गोपाल दास
जालपा देवी रोड, वाराणसी – 221 001.

ऋग्वेद में रामदूत श्रीहनुमान

• श्री अर्जुन पाण्डेय •

श्रीरामदूत हनुमानजी साक्षात् परमेश्वर रुद्र हैं। उनकी रुद्र रूप में अभिव्यक्ति वेदों, पुराणों, उपनिषदों और रामायणों के माध्यम से यथा प्रसंग की गई है। श्रीहनुमानजी परब्रह्म हैं और वे रुद्र रूप में प्रकट महादिव्य शक्ति के भागवत ज्योति के प्रतीक हैं। वे 'ऊँ' स्वरूप हैं, परम उपास्य हैं।

तांत्रिक 'वर्ण बीजकोश' के सिद्धान्त के अनुसार श्रीहनुमानजी और ऊँकार में धर्मसाम्यता निम्न प्रकार से सुस्पष्ट है—

'ह' आकाश बीज है, जो आञ्जनेय (हनुमान) का नामाक्षर विष्णु तत्त्व का द्योतक है। कोशशास्त्र में आकाश द्रव्य को 'विष्णुपद' कहा गया है। यथा—'वियद्विष्णुपदं वा तु पुंस्याकाश विहायसी' इत्यमरः। इस प्रकार नाम का प्रथम अक्षर 'ह' कार विष्णु तत्त्व सिद्ध हुआ, जो ओंकार (अ+उ+म) के प्रथम भाग अकार से गृहीत है–'अकारो वासुदेवः स्यात्।'

'नु' यह हनुमान के नाम का दूसरा अक्षर है, इसमें जो 'उ' कार है, वह शिवतत्त्व का द्योतक है। 'मेदिनीकोश' के 'उ सम्बोधनरोषोक्त्योः'— इस वचन के अनुसार रुद्र रूप शिव ही सिद्ध होते हैं। श्रीमद्भागवत में पारमहंस्यसंहिता में तो स्पष्ट ही 'रुद्रः क्रोधसमुद्भवः' कहकर कार्य कारण की अभिन्नता के आधार पर रोष को रुद्र और रुद्र को रोष सिद्ध कर दिया है। इस प्रकार नाम का द्वितीयाक्षर 'नु' शिवत्व सिद्ध हुआ।

'मान्' नाम के तृतीय भाग में जो 'म' एक भाग है, (क्वचिदेकदेशोऽपि गृह्यते) यह बिन्दुनाद-शून्य अनुस्वार का बोधक है।

तन्त्र ग्रन्थ 'वर्णबीज-प्रकाश-कोश' के अनुसार 'म' कार वर्ण उपस्थ का बोधक है। उपस्थ अङ्ग के देवता प्रजापति ब्रह्मा हैं। इसीलिए 'म' कार को ब्रह्मा तत्त्व भी कहा जा सकता है।

इस प्रकार समष्टि शक्ति रूप से ऊँ—ब्रह्मा, विष्णु, महेश–इन तीनों ही आदि कारण तत्त्वों का भी प्रतीक हैं। निष्कर्ष यह हुआ कि 'ह–अ, नु–उ, म–त्–हनुमान्–'ओम्' एकत्व सिद्ध हुए।

श्रीरामदूत पवनपुत्र का नाम 'हनुमान' क्यों पड़ा और उसकी क्या व्युत्पत्ति है, वह शब्द या तत्सदृश शब्दानन्तर वेद में प्रयुक्त है या नहीं ? इस पर विचार करना है।

'अङ्' 'हन्' हिंसा तथा गतिमान् अर्थमुक्त धातु से प्रत्यय 'अङ्' तथा हनुरस्ति अस्त्र–अस्मिन् वा इस अर्थ में तद्धितीय 'मतुप्' प्रत्यय 'नम्' एवं दीर्घादि करने पर 'हनूमान्' शब्द की निष्पत्ति होती है। 'मतुप्' प्रत्यय से प्रकृति के अर्थ की अतिशय विशिष्टता अथवा विलक्षणता सूचित होती है। इस प्रकार 'हनूमान' शब्द का अर्थ विलक्षण 'चिबुक' (ठुड्डी) वाला होगा।

विलक्षण 'चिबुक' का संकेत अधोलिखित 'ऋग्वेदीय' मन्त्र में परिलक्षित होता है।

ममञ्चन ते मघवन् व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य संपिंणग्वधेन[1] ॥

'महावन' अर्थात् हे इन्द्र, 'ते' आपके सान्निध्य में 'चन' निश्चित, 'ममत्' प्रमाद करते हुए, 'व्यंसः' विशाल स्कन्ध युक्त आपके ऐरावत को फल जानकर खाने की इच्छा से भयंकर विशाल शरीरधारी कपिराज महावीर, 'निविविध्वान' आपको लगातार सताने लगा। तब 'निविद्धः' पीड़ित हुये आपने 'हनू' हनौं, विभक्ति वचनयोर्व्यत्ययः चिबुक (ठुड्डी) में 'अप' अपगमन के लिये उसे हटाने के लिये 'वधेन' वज्र से, 'जघान' प्रहार किया। 'अधा' अथ इसके बाद 'दासस्य' भविष्य में जो श्रीराम के सेवक होने वाले हैं, उन महावीर का 'शिरः' 'अवयवेऽवयविनः प्रयोगः' शिर के अवयव ओष्ठ के नीचे 'चिबुक' नाम वाले प्रदेश को 'सम्पिणक' अच्छी प्रकार से तोड़ डाला। अतएव वज्र प्रहार के प्रभाव से भग्न 'हनु' प्रदेश से युक्त होने के कारण पवन कुमार की संज्ञा 'हनूमान' हो गयी। 'क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः' इस उक्ति के अनुसार वह वज्र प्रहार लाभकारी ही प्रमाणित हुआ, क्योंकि मृतप्राय पुत्र को गोद में लेकर गुफा में स्थित शोकग्रस्त वायुदेव ने जब कोपवश अपना संचार रोक दिया तो पीड़ित प्रजा की प्रार्थना से देवगण सहित ब्रह्मा ने वहाँ आकर मृत अञ्जनीनन्दन पवन पुत्र को जीवित ही नहीं किया अपितु अति दुर्लभ विविध वरदानों द्वारा अतिबलवान भी बना दिया। इसी अभिप्राय से ऋग्वेद में कहा गया है कि 'व्यंसः हनुमान उत्तरो बभूवान्' अर्थात् पहले से भी अधिक बलवान हो गये।

वैदिक पद्धति है कि जहाँ तक सम्भव हो, किसी वस्तु का निर्देश प्रत्यक्ष शब्द द्वारा न किया जाय, अपितु उसकी सूचना के लिए परोक्ष शब्द ही प्रयुक्त हो। ऐतरेयोपनिषद् के 'परोक्षप्रिया इव हि देवाः' के इस वचन के अनुसार देवों को परोक्ष शब्द द्वारा वस्तु का निर्देश अत्यन्त प्रिय है। अतएव भगवान् वेद में भी हनुमान जी 'हन्मन' शब्द द्वारा निर्दिष्ट हुये हैं। ज्ञातव्य है कि वेद में (जैसे ऋग्वेद, २।२८।२ में) 'महिम्ना' की जगह वर्णविलोप से निष्पन्न 'महन' शब्द प्रयुक्त हुआ है। ठीक उसी प्रकार 'हनुमता' इस तृतीयान्त पद के स्थान में 'हन्मना' पद का प्रयोग हुआ है। कारण है उकार का लोप और तकार के स्थान पर नकार का आदेश मानकर 'हन्मना' रूप सहज निष्पन्न होता है। अतः प्रमाणित हुआ कि दूतादि विशेषणों द्वारा ही नहीं, अपितु उनके वाचक 'हनुमत्' शब्द द्वारा भी वेद में उनका निर्देश उपलब्ध है।

---

[1] ऋग्वेद, ४।१८।९।

वेद में 'दूत' शब्द विभक्ति भेद से नव्वे वार, 'हनु' शब्द चार बार और हन्मना शब्द जो तृतीयान्त 'हनुमता' शब्द का रूपान्तर है, पाँच वार प्रयुक्त हुआ है ।[1]

चान्द्रभाष्य में ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में 'अग्नि' शब्द का अर्थ वायुपुत्र मानकर हनुमान को ही प्रतिपाद्य स्वीकार किया है ।[2] प्रथम मन्त्र में 'पुरोहितम्' और 'यज्ञस्य' पदों का अर्थ है कि सुग्रीव ने श्रीराम के समीप मैत्री के लिये पहले जिसे भेजा, उसी का स्पष्टीकरण (ऋग्वेद, १।१२।१) में 'दूतम्' पद द्वारा किया गया है । 'पुरोहित' शब्द का दूसरा अर्थ यह भी है कि युद्धारम्भ के पहले श्री सीताजी की खोज के लिये जिसे भेजा गया, वह पुरोहित है । अर्थ कुछ भी करें, 'पुरोहित' शब्द दूत का समानार्थक है । ऋग्वेद में प्रयुक्त 'होतारम्' शब्द का अर्थ है—युद्ध के लिये राक्षसवृन्द को आह्वान करने वाला । ऋत्विजम् (ऋत्वाएजम्) का अर्थ है समुद्र पार करके दैत्यों को कँपानेवाला, अर्थात् जिसे देखकर दैत्यों का हृदय दहल गया हो मन्त्रस्थ 'रत्नधातमम"[3] पद विशेष महत्वपूर्ण है । इसकी व्याख्या है—सीता के लिए पहचानने के लक्ष्य से श्रीराम द्वारा दी गयी रामनामाङ्कित अँगूठी को धारण करनेवाला अर्थात् सीता के द्वारा अभिज्ञान के रूप में दी गयी चूड़ामणि का धारक । 'तमप' प्रत्यय अतिशयता का सूचक है । रामनामाङ्कित अंगुलीयक के धारक राम हैं—रत्नधाः । चूड़ामणि रत्न की धारिका सीता भी 'रत्नधा' हैं । इन दोनों ने एक-एक रत्न को धारण किया और तृतीय हनुमान ने अभिज्ञानरूप में अँगूठी और चूड़ामणि—दोनों को धारण किया, अतः वे एकैक-रत्नधारक सीता और श्रीराम की तुलना में 'रत्नधातम' हुए । 'रत्नधातम' शब्द बलात् रामदूत हनुमान में ही 'अग्नि' शब्द के तात्पर्य का ग्राहक है । 'सशंखचक्रोहरिः' इस वाक्य में जैसे शंख-चक्र का साहित्य 'हरि' शब्द के विष्णु रूप अर्थ में तात्पर्य का ग्राहक है; उसी प्रकार 'रत्नधातमम्' शब्द के प्रयोग से प्रथम मन्त्र में अनेकार्थक होने पर भी 'अग्नि' शब्द का वायुपुत्र हनुमान में ही तात्पर्य है, अन्यत्र नहीं ।

"अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्नधातमम्[4] ॥"

मन्त्रार्थ इस प्रकार है—'यज्ञस्य' संगमन मैत्री के निमित्त प्रथम सुग्रीव द्वारा श्रीराम के समीप में प्रेषित, 'देवम्' विजिगीषु, 'ऋत्विजम्' समुद्र पार करके रक्षक-वृन्द-हृदय को भयमुक्त बनाने वाले, 'होतारम्' अशोक वाटिका में युद्ध के लिये ललकारने पर आये मन्त्री पुत्र तथा रावण पुत्र अक्षय कुमारादिक के संहारक, 'रत्नधातमम्' श्री राम-प्रदत जटित अँगूठी के धारक तथा सीता-प्रदत्त चूड़ामणि के ग्राहक, 'पुरोहितम्' दूत, 'अग्नि' वायुपुत्र श्री हनूमान जी को मैं 'इष्टे' स्तुतिपूर्वक वन्दना करता हूँ ।

'अग्नि दूतं व्रणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्' ॥[5]

अग्निम् अग्रणी, वानराग्रणी, वायुपुत्र अथवा दैत्य-वन-दहन अग्नि को, 'आस्यः यज्ञस्य दूतम्' ध्यान की परिपाक अवस्था में सामने उपस्थित अथवा लोक-कल्याण के उद्देश्य से भूमण्डल पर अयोध्या में अवतीर्ण 'यज्ञो वैविष्णुः (शत० ब्रा०, १।१।२) । इस श्रुति के अनुसार 'यज्ञस्य' विष्णु के अर्थात् दशरथनन्दन श्रीराम के दूत को, 'सक्रतुम' सुकर्म अर्थात् जिस महावीर ने श्रीराम की प्रसन्नता के लिये समुद्रोलंघन, सीतान्वेषण, मूर्च्छित लक्ष्मण को जीवन-दान देने के लिये द्रोणादि सहित संजीवनी-औषधि लाने जैसे अद्भुत पराक्रम किये, उन श्रीहनुमान जी को 'व्रणीमहे' हम भक्तगण उपास्य रूप में स्वीकार अथवा प्रार्थना करते हैं ।

ऋग्वेद का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि वेद में प्रयुक्त 'अपां नपात्' शब्द का असाधारण देव हनुमान ही हैं । वे स्वतन्त्र एवं अल्पस्तुत देव हैं । इनके दो मंत्र हैं–(ऋग्वेद, २।३५ तथा ऋग्वेद, १०।३०)। 'अपांनपात्' शब्द का अर्थ है—आकाश के पौत्र । 'अप' शब्द, अन्तरिक्ष, आकाश का वाचक है । निघण्टु में 'आपः' शब्द अन्तरिक्ष नामों से ज्ञात है—'अन्तरिक्ष आकाश आपः' ।

सृष्टि प्रकरण की दृष्टि से 'आकाशाद्वायुः[1]" श्रुति के अनुसार आकाशात्मज वायु के तनय भगवान् हनुमान ही हैं । वेद ने इसी गूढ़ अभिप्राय से उनके लिए 'अपां नपात्' शब्द का प्रयोग किया है । यह निम्न निर्दिष्ट मन्त्र से और स्पष्ट हो जाता है :—

हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृगपां नपात् सेदुहिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषधाहिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै[2] ॥

सायणाचार्य ने 'रूप' शब्द का अर्थ शरीर 'संदृक्' का अर्थ इन्द्रिय तथा 'वर्ण' का अर्थ कान्ति किया है । अतः 'सः' वह हिरण्मय शरीर युक्त तथा हिरण्मय इन्द्रियों से समलंकृत है । 'सेदु' निश्चित ही वह स्वर्ण के समान कान्ति से शोभित है । जो 'अपां' नपात्' देव हैं, वह स्वर्णमय स्थान तेजोमय सूर्यमण्डल से 'परि' उपरि, दूसरे शब्दों में स्वर्णमय सूर्यमण्डल के ऊपर 'निषध' स्थित (आसीन) होकर 'राजते' शोभित हो रहा है । 'हिरण्यदा' स्वर्ण के दाता सम्पन्न भक्त 'अस्मै' इस 'अपां नपात्' देव हनुमान के लिये 'अन्नम' अन्नोपलक्षित मधुर मोदकादि पदार्थ 'ददति' देते हैं । तात्पर्य है कि हनुमान को मोदकादि का भोग लगाते हैं ।

इसी मन्त्र का भाव गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'हेमशैलाभदेहम्' शब्द से अभिव्यक्त किया है ।

लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व महाविद्वान् श्री नीलकण्ठसूरि ने वेदों के कुछ मन्त्रों का संकलन 'मन्त्र-रामायण' के रूप में करके उन पर बहुत ही सुन्दर भाष्य किया है । उस मन्त्र रामायण में दो स्थलों पर संक्षिप्त रूप से हनुमद् चरित्र का वर्णन है । वेद वर्णित श्री हनुमद्चरित्र का संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है ।

देवास आयन् परशूनरबिभ्रन्
वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
निसुद्रुवं दधतो वक्षणासु
यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति[3] ॥

श्री सीताजी का संदेश श्रीराम जी के लिये लेकर श्रीहनुमान जी रावण के परमप्रिय अशोकवन को उजाड़ने लगे तथा रखवालों के रोकने

---

[1] कल्याण, हनुमान अंक, पृष्ठ ४० ।
[2] वही, पृष्ठ ४० ।
[3] ऋग्वेद, १।१।१ ।
[4] ऋग्वेद, १।१।१ ।
[5] ऋग्वेद, १।१२।१ ।

[1] तैत्तिरीयोपनिषद्, २।१ ।
[2] ऋग्वेद, २।३५।१० ।
[3] ऋग्वेद, म० १०, सूक्त २८, मन्त्र ८ ।

With the Best Compliments from :

Eastern Castings (P) Ltd.

(Cast Steel Engineers)

Head Office : **Bedi market, Main Road**
Chas-827013 (Bokaro Steel City)

Regd. Office : **Calcutta**

Branches : **Hyderabad, Banglore**

Factory : **III-D 4,5 & 6, Industrial Area,**
Bokaro Steel City-827014

Gram—EASTCAST

Phone : 8221

सनातन धर्म के उन्नायक

पूज्य गुरुदेव स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के श्रीचरणों में

सादर शत शत नमन

—मोतीलाल अग्रवाल

—बनवारीलाल अग्रवाल

(A. C. C. सीमेन्ट स्टाकिस्ट)
पो. चास (बोकारो स्टील सिटी-१३)
जिला—धनबाद (बिहार)
फोन : ५०७

पर उन्हें मार-पीट कर इतना व्याकुल कर दिया कि जो बचे उनकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गयी, जिससे उन्होंने समझा कि देवता लोग आकर उपद्रव कर रहे हैं। अतः बचे हुए घायल रक्षकगण जाकर रावण से कहने लगे—

देवासः, बहुत से देवता लोग, आयत्-अशोकवन में आ गये हैं और वे परशून अबिभ्रन्—हमलोगों के परशु आदि को छीनकर धारण कर लिये हैं तथा विड्भिः वना वृश्चन्तः—हमलोगों के संतानादि परिवार सहित अशोक-वन को एकदम उजाड़ते हुए अभि आयन्—इधर-उधर चारो ओर खूब दौड़ते हैं। निसुद्रुवं वक्षणासु दधतः—अत्यन्त शीघ्रगामी अग्नि जैसे घरों को जलाते हुए अनुयश्राक्रुपीटम् दहन्ति—पीछे से अलग पड़े हुए काष्ठादि को जला डालते हैं। तद् अनुदहन्ति—इसी तरह देवगण एक-एक पेड़-कुञ्ज आदि को नष्ट करते हैं, तब आस-पास के वृक्ष भी नष्ट हो जाते हैं।

अक्षानहो नह्यत नोत सोम्या इष्क्रणुध्वं रशना ओतपिंशत ।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम्[1] ॥

ब्रह्मपाश में बँधे होने पर भी श्रीहनुमान जी जब उस (ब्रह्मपाश) की कुछ भी परवाह न की, तब उस ब्रह्मपाश का अपमान न हो, इसलिये देवतागण श्रीरामदूत की प्रार्थना करने लगे—

सोम्याः—हे भगवद्भक्त परम वैष्णव श्री हनुमान जी महाराज! नह्यत अक्ष आनह—आपको बाँधने आया राक्षस अक्ष स्वयं ही मृत्युपाश में बँध गया। रशना इष् कृणुध्वम्—आप कृपा कर इस ब्रह्मपाश-बन्धन को अभी मान लीजिये। न उत आपिंशत—बाद में चाहे इस ब्रह्मपाश को खण्ड-खण्ड कर डालियेगा। अष्टावन्धुरम्—दो हाथ, दो पाँव, दो कंधे और दोनों ऊरु—इस तरह आठ जगह बँधे हुए रथम्—अपने रथ शरीर को अभितो वहत—इस लंकापुरी में ले जाइये। येन देवासः प्रियम्—जिससे देवतागण अपना अभीष्ट अभिअनयन्—प्राप्त करें। अर्थात् आपके लंका में जाने से देवताओं को सुख होगा।

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्[2] ॥

देवताओं की प्रार्थना को श्रीहनुमानजी ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार वे बँधकर लंका में गये और जब रावण ने उनकी पूँछ में आग लगवा दी, तब इस बात को अशोकवाटिका रक्षिका राक्षसियों से सुन और देखकर श्रीसीताजी अग्नि देव से प्रार्थना करने लगीं—

रक्षोहणं वाजिनम—राक्षसों को मारने वाले एवं परम वेग वाले श्री रामदूत को इस दशा में देखकर आ जिघर्मि—मैं शोक से आँसू बहाती हूँ, अतः उन अग्निदेव से जो मित्रं प्रथिष्टम्—आञ्जनेय के पिता पवन के मित्र तथा परम पवित्र एवं प्रतिष्ठित देवता हैं, उनसे शर्म उपयामि—वत्स हनुमान के कल्याण की कामना करती हूँ। शिशानः क्रतुभिः समिद्धः—पहले जो यज्ञों द्वारा देदीप्यमान संदीपित किये गये हैं स अग्निः नः—वही अग्निदेव स्वयं मेरे प्रिय वात्सल्य भाजन हनुमान की सदैव दिवा नक्तम् स रिषः पातु—दिन-रात हिंसारत सभी कष्टों से रक्षा करते हैं।

श्री सीताकृत अग्नि-प्रार्थनात्मक इस वैदिक मन्त्रों का भावानुवाद श्रीवाल्मीकीय रामायण में देखा जा सकता है।

श्रीसीताजी का पता लगाकर श्रीहनुमान जी वानरों सहित जब श्रीराम जी के पास पहुँचते हैं—

हरि मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित् परिप्रियः[1] ॥

रोष रहित परम शान्त स्वरूप श्रीराम जी हनुमानजी के ऊपर प्रेमयुक्त हाथ फेरने लगे। जैसे गाय से उत्पन्न पञ्चगव्य युक्त कलश में सोमवल्ली का रस अच्छी तरह मिलाया जाता है। उसी तरह आञ्जनेय ने श्रीराम के प्रेम पूरित हृदय-कलश को श्रीसीताजी की प्रेम-संदेश वाणी से पूर्ण कर दिया और कहने लगे कि जिनकी मति सदैव बढ़ी रहती है, उन श्रीरामजी को जब बहुत बड़ी एवं श्रेष्ठ शब्दों में बहुत काल तक स्तुति करने वाले ब्रह्मा शिवादि से स्तुति की जाती हुई वाणी भी प्रसन्न करने में समर्थ नहीं होती, तब भला मेरी वाणी किस गणना में है, अर्थात् मैं जितनी भी स्तुति कर सकूँगा, वह सब आपकी महिमा के आगे अत्यल्प ही रहेगी।

भगवान् श्रीराम रावण का वध कर तथा भगवती सीता की अग्नि परीक्षा कर श्रीहनुमान आदि के साथ सपत्नीक अयोध्या लौट आये—

स रुद्रेभिरशस्तवार ऋम्वा हित्वी गयमारे अवद्य आगात् ।[2]

महाभारत में उल्लेख है कि भगवती सीता के आशीर्वाद और वरदान से देवता-यक्ष आदि हनुमानजी की सेवा-अर्चा में तत्पर रहते हैं।

'बृहद्भागवतामृत' में श्रीनारदजी ने गोपकुमार के वेद शास्त्र वर्णित हनुमत्प्रियेश्वर श्रीराम के गुण-वैभव के स्मरण पूर्वक कीर्तन करने की जो सीख दी है, उससे यह स्पष्ट होता है कि श्रीहनुमानजी महाराज का पुण्य-चरित वेद-शास्त्र विदित है, क्योंकि स्वामी श्रीराम के कार्य-सम्पादन में हनुमान के सहयोग की प्रमुखता तथा अभिन्नता है—

सीतापते श्रीरघुनाथ. लक्ष्मण
ज्येष्ठ प्रभो श्री हनुमत्प्रियेश्वर ।
इत्यादिकं कीर्तय वेदशास्त्रतः
ख्यातं स्मरंस्तद्गुणरूपवैभवम्[3] ॥

जिस प्रकार श्रीराम का चरित्र वेद वर्णित है, उसी प्रकार उनके लीला चरित्र के प्रमुखतम आधारस्तम्भ श्रीहनुमानजी का भी वृत्तान्त ऋग्वेद में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

इस प्रकार श्रीहनुमानजी का यश वेद विदित है। गोस्वामी तुलसी दासजी की वाणी है—'बाँकी बिरदावली बिदित बेद गाइयत'।[4]

---

[1] ऋग्वेद, १०।५३।७ । [2] ऋग्वेद, १०।८७।१, अथर्ववेद, ८।३।१।

[1] ऋग्वेद, ९।७२।१ । [2] ऋग्वेद, १०।९९।५ ।
[3] बृहद्भागवतामृत, २।४।२४३ । [4] हनुमानबाहुक, ३१ ।

∴

वेद के मन्त्रभाग में श्रद्धा-उपासना-भक्ति की अवधारणा

• श्रीरामप्रभा ओझा •

'मन्त्रब्राह्मणात्मक' वेद के दो भाग है—(१) कर्मकाण्ड तथा (२) ज्ञानकाण्ड। वेद का अधिकांश कर्मकाण्डात्मक है तथा उसकी परिणति ज्ञानकाण्ड में मानी जाती है। कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड की भाँति भक्तिकाण्ड की भी स्थिति प्रारम्भ से चली आ रही है, किन्तु भक्तिकाण्ड को पृथक् से निर्दिष्ट नहीं किया गया, एतावता यह नहीं कहा जा सकता कि वेद में भक्ति की स्थिति नहीं थी। भक्ति के आचार्यों द्वारा स्वीकृत 'अनुरागात्मिका भक्ति' का स्वरूप वेदमन्त्रों में भले न उपलब्ध हो, किन्तु भक्त ऋषिओं द्वारा इन्द्रादि देवों की स्तुति 'माता', 'पिता', 'सखा'[1] इत्यादि रूप में की गयी है, जो बिना अनुराग के संभव नहीं। वस्तुतः युगपरिवर्तन के अनुसार मनुष्य उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर होता है, यही कारण है कि वैदिक युग में भक्त ऋषियों का जो अनुराग अपने आराध्य के प्रति 'माता', 'पिता', 'सखा' इत्यादि रूप तक सीमित था, उसी अनुरक्ति को परवर्ती भक्ताचार्यों ने ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा[2] कहकर "पराभक्ति" बतलाया है। अतः भक्ति का मूल स्रोत श्रुति होने के कारण ही महर्षि शाण्डिल्य ने "भक्तिः प्रमेया श्रुतिभ्यः[3]" सूत्र की रचना की।

आचार्य स्वप्नेश्वर ने भी "तच्चेश्वरभक्तिरेवालौकिकत्वाच्छ्रुतिस्मृतिसिद्धा[4]" कहकर भक्ति का उद्गम स्थान श्रुति को ही बताया है। शाण्डिल्यभक्ति सूत्र के व्याख्याकार स्वामी नारायण तीर्थ ने भी—

"रतौ हेतुः पश्यन्निति निगममौली निगदिता,
रतिः क्रीडानन्दो मिथुनमिति पूर्णा परिणता।"[5]

इत्यादि कथन से सुस्पष्ट किया है कि भक्ति की स्थिति श्रुति में समझनी चाहिए। इसी प्रकार प्रायः भक्ति के सभी आचार्यों ने भक्ति को श्रुतिप्रतिपादित कहा है।

भक्ति का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग श्रद्धा है, जिसके बिना भगवद्भक्ति संभव नहीं, स्वयं श्रुति कहती है—श्रद्धया देयम्। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी श्रीमद्भागवत में स्वयं कहा है—

"मत्पराः श्रद्धानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि॥"[6]

श्रद्धा से ही सत्य को प्राप्त किया जा सकता है—

"व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥"[7]

इस प्रकार मन्त्रों में भी उद्घोष किया गया है। अतः वेदमन्त्रों में विहित श्रद्धा का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है।

श्रद्धा का अर्थ है—'श्रत्' अर्थात् 'सत्य' को अपनी बुद्धि में धारण करना। वह तभी संभव है, जब विजिज्ञासित पदार्थ को किसी एक रूप में पकड़कर उसमें ज्ञान एवं आस्था रखी जाय। यद्यपि वेदों में अनेक उपास्य देवों की स्तुतियाँ प्रसिद्ध हैं, तथापि उन देवों में भी भक्त ऋषियों की अपने श्रद्धेय एकमात्र 'सत्' के प्रति श्रद्धा का सुस्पष्ट उल्लेख वेदमन्त्रों में उपलब्ध होता है—

"इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥"[1]

उन भक्त ऋषियों के मतानुसार एक सत्यस्वरूप परमतत्त्व को भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है।

कहीं कहीं भक्त ऋषि भक्ति भावना से ओत-प्रोत होकर स्वयं को सर्वात्मना भजनीय के लिए समर्पित कर श्रद्धा रूपी व्रत ही लेने का निश्चय करता हुआ पाया जाता है—

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि।
व्रतं च श्रद्धां चोपैमिन्धे त्वा दीक्षितो अहम्॥"[2]

यजुर्वेद में इसका भी उल्लेख है कि प्रजापति परमात्मा ने देखकर सत्य और असत्य को अलग-अलग रूप दिया तथा असत्य में अश्रद्धा एवं सत्य में श्रद्धा धारण करने का उपदेश दिया—

"दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनतेऽदधाच्छ्रद्धा सत्ये प्रजापतिः॥[3]"

इसी प्रकार वेदमन्त्रों में बहुशः श्रद्धा का उल्लेख मिलता है, जिसका यहाँ संक्षेप में प्रतिपादन किया गया। वस्तुतः भक्ति के लिए श्रद्धा अत्यन्त अपेक्षणीय है, क्योंकि मनुष्य की चित्तवृत्ति तास की दीवार के समान होती है, अतः भजनीय में भक्त की श्रद्धा न रहने पर भजनीय का दोष गुण सुनने के पश्चात् भक्त की चित्तवृत्ति भक्ति से निवृत्ति की ओर जा सकती है। श्रद्धा के लिए श्रद्धेय के सम्बन्ध तद्रूपत्वेन किञ्चिद् ज्ञान भी अपेक्षित है। आचार्य स्वप्नेश्वर ने ज्ञान को अश्रद्धारूपी मल को प्रक्षालित करने के कारण भक्ति में उपयोगी बतलाया है—

"न चात्मज्ञानवैयर्थ्यम्, अश्रद्धामलक्षालनेन भक्तावुपयोगात्"[4]

यदि भक्त को भजनीय का सम्यग् ज्ञान हो जाता है, तब उसके सम्बन्ध में किये गये कुतर्कों का प्रभाव श्रद्धालु भक्त पर नहीं पड़ता। "श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से विवाह के लिए लालायित

---

[1] ऋग्वेद, ८।९।११ एवं ४।१७।१७।
[2] नारद भक्ति सूत्र २, 'सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा'।
[3] शाण्डिल्य भक्तिसूत्र, १।२।९।
[4] स्वप्नेश्वर भाष्य, पृ० १।
[5] भक्तिचन्द्रिका, १।७।
[6] श्रीमद्भागवत, ११।२६।२९।
[7] शुक्लयजुर्वेद, १९।३०।

---

[1] ऋग्वेद, १६४।४६।
[2] शुक्ल यजुर्वेद, २०।२४।
[3] वही, १९।७७।
[4] स्व० भा०, पृ० २।

शिशुपाल आदि राजाओं के सौन्दर्य, सम्पत्ति एवं वीरता का वर्णन करते हुए अपने लिए अकिञ्चनादि शब्दों का प्रयोग कर स्वयं सामान्य जन की भाँति बतलाया किन्तु श्रीकृष्ण में परम श्रद्धावती होने के कारण ही रुक्मिणी ने भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा प्रयुक्त अकिञ्चनादि शब्दों का भगवान् के प्रशंसापरक अर्थों के कथन द्वारा अनुरागात्मिका भक्ति से भगवान् को प्रसन्न किया।[1]" वहाँ पर भगवान् के ऐश्वर्य ज्ञान से रुक्मिणी को भगवान् में श्रद्धा थी, जिसके कारण कुतर्कों को उन्होंने प्रशंसात्मक ही समझा।

श्रद्धा तथा उपासना—श्रद्धा की भाँति उपासना भी भक्ति का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। श्रद्धा की अपेक्षा उपासना भजनीय को प्राप्त करने के लिए अत्यन्त समीप रहनेवाला साधन है। श्रद्धा के बिना उपासना भी संभव नहीं, अतएव श्रद्धा उपासना का भी अङ्ग है।

दोष देखने की जो चित्तवृत्ति मनुष्यों में स्वाभाविक होती है, उस चित्त की प्रतिबन्धक चित्तवृत्ति को श्रद्धा कहते हैं—

"दोषदर्शनानुकूलप्रतिबन्धकानुकूलवृत्तिः श्रद्धा"[2]

श्रद्धा के पाटवश्य से उसके अनुकूल विज्ञानसिद्ध ध्यानादिसिद्ध परिचर्या ही उपासना है। उपासना का लक्षण है—"इतरवृत्तिनिरोधपूर्वकेण मनोयोगेन एकत्र समान प्रत्यय प्रवाह उपासनम्।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रद्धा एवं उपासना दोनों भिन्न-भिन्न हैं, तथापि बिना श्रद्धा के उपासना संभव नहीं। अतः श्रद्धा साधक के चित्त में जब अविचल आत्मविश्वास उत्पन्न कर देती है, तब वह परमेश्वर को ही सब कुछ समझता हुआ उसी में 'अविच्छिन्नतैलधारावत्' अपनी चित्तवृत्ति को लगाये रहता है जिसे शङ्कराचार्यजी ने भी अपने शब्दों में अभिव्यक्त किया है—

"उपासनं नाम यथाशास्त्रमुपास्यस्यार्थस्य विषयीकरणेन सामीप्यमुपगम्य तैलधारावदविच्छिन्न समान प्रत्ययप्रवाहेण दीर्घकालं तदासनं तदुपासनमाचक्षते।"[4]

श्रद्धा तथा भक्ति—'श्रद्धा' तथा 'उपासना' इन दोनों की एकमात्र साध्या परमप्रेमरूपा भगवद्भक्ति ही है, जिसे प्राप्त कर भक्त कृतकृत्य हो जाता है। उसमें भी श्रद्धा परम्परया पराभक्ति को सिद्ध कर मुक्ति प्राप्ति में साधिका होती है। इसलिए महर्षि शाण्डिल्य ने श्रद्धा को 'साधारणी' कहा है।

तात्पर्य है कि कुछ लोग भजनीय में परम श्रद्धा को ही 'परा भक्ति' न मान ले यह बात सोचकर महर्षि शाण्डिल्य ने "नैव श्रद्धा तु साधारण्यात्"[5] सूत्र की रचना की। यहाँ साधाख्य का अर्थ है कि सभी प्रकार के भगवत्संबन्धी (पूजा, नमस्कार, सेवा आदि) कर्मों के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है, अतः उसे साधारणी कहा गया। अतः कर्म सामान्य के लिए श्रद्धा की आवश्यकता होती है। तैत्तिरीय श्रुति का कथन है कि जो श्रद्धा के बिना यज्ञादि कर्म करते हैं वहाँ अभीष्ट प्राप्ति नहीं होती—

"यो वै श्रद्धामनारभ्य यज्ञेन यजते नाष्येष्टाय श्रद्धधते॥"[1]

शतपथ ब्राह्मण तो यह भी कहता है कि जो मनुष्य अश्रद्धा से यजन करते हैं, वे पापी हैं तथा जो उस प्रकार न होकर अर्थात् श्रद्धापूर्वक यजन करते हैं, वे कल्याण के भागी हैं—"अश्रद्धा मनुष्यान् विवेद ये यजन्ते, पापीयाँसस्ते भवन्ति, य उ न यजन्ते श्रेयांसस्ते भवन्ति।"[2]

उपासना—उप् उपसर्गपूर्वक 'आस' धातु से 'उपासना' शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ होता है—"पास बैंठना"। किन्तु 'पास बैंठना' इस शाब्दिक अर्थ से उपासना का पूरा भाव प्रकट नहीं हो रहा है, अतः इसका अर्थ होगा—"श्रीमन्नारायण भगवान् से नैकट्य स्थापित करना।" भगवान से नैकट्य स्थापित करने का मतलब उनके गुणों को अपना कर उनसे तादात्म्य स्थापित करना।

वरिवस्या, शुश्रूषा, परिचर्या, आराधना, सेवा आदि शब्द इसके पर्यायवाची हैं एवं पूजा, भक्ति, नमस्या, अपचिति, सपर्या, अर्हणा, नमस्क्रिया तथा ध्यान आदि शब्द इसके अत्यन्त निकटार्थक तथा सामान्य अन्तरङ्गार्थक हैं।[3] उपर्युक्त शब्दों में कुछ उपासना के साक्षात् तथा कुछ तदङ्गभूत विविध क्रियात्मक अनुष्ठानों के द्वारा उपकारक होने के कारण उपासना अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। वेद के मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् भागों में प्रायः उक्त सभी शब्द यत्र तत्र ज्यों-के-त्यों अथवा प्रत्यय-विशेष के तारतम्य से रूपान्तर में प्रयुक्त उपलब्ध होते हैं। सम्प्रति वेद के मन्त्रभाग पर विचार करते हुए वैदिक उपासना की विवेचना प्रस्तुत है।

वैदिक उपासना का स्वरूप—वैदिक उपासना का सच्चा स्वरूप श्रीमद्भगवद्गीता के निम्न श्लोक से समझा जा सकता है—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना[4]॥

अर्पण, हवि, अग्नि, आहुति देने वाला सब ब्रह्म ही है, वही ब्रह्ममार्ग से जा सकता है। अर्थात् जो पूर्णरूपेण ब्रह्ममय बन जाता है, वही ब्रह्म के मार्ग का पथिक हो सकता है। इस प्रकार के मन्त्र बहुधा वेदों में पाये जाते हैं। निम्न मन्त्र को उद्धृत कर समझा जा सकता है—

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्[5]।"

इस मन्त्र में बताया गया है कि विद्वानों ने यज्ञ के द्वारा यज्ञ की पूजा की, यही उनका प्रधान धर्म था। इस कथन के द्वारा यह स्पष्ट है कि सर्वप्रथम स्वयं पूज्य बने तब उस पूज्यतम उपास्य परब्रह्म की पूजा के लिए प्रवृत्त होवें। उस परब्रह्म के समान उपासक में भी सत्य, सङ्कल्पादि गुण तभी संभव हैं जब उपासक की मानसिक दुष्प्रवृत्तियाँ दूर हों, अतः उसके लिए भी प्रार्थना करता है—

---

१. श्रीमद्भागवत, १०।६० सम्पूर्ण।

२. गीता प्रवचनमाला, पृ० १२१। ३. कल्याण, उपासनाङ्क, पृ० २७।

४. श्रीमद्भगवद्गीता, शाङ्करभाष्य ११।३।

५. शा० भ० सू०, १।२।१४।

---

१. तैत्तिरीय, सं० १।६।८। २. श० प० ब्रा०, २।३।२४।

३. पूजा नमस्यापचितिः सपर्याचार्हणा समाः।
वरिवस्याः तु शुश्रूषा परिचर्याप्युपासना॥ अमरकोश, २।७।३४-३५।

४. गीता, ४।२४। ५. ऋग्वेद, १।१६४।५०।

धर्मसम्राट् सनातनधर्म संरक्षक

परमपूज्य श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज की

७५वीं वर्षगाँठ पर

श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम

—कन्हैयालाल झँवर

◆

श्री झँवर एण्ड कम्पनी

(कपड़ों के थोक व्यापारी)

२०३, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता–७००००७

फोन—३३२६०७

"विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव[1] ।।"

अर्थात् हमारे सब दुष्टभाव दूर हों तथा जो कुछ सद्भाव या सद्गुण हों, वे हमें प्राप्त हों। वस्तुतः वह परमात्मा स्वयं सद्गुणों से परिपूर्ण है, अतः उसे सद्गुणों से ही जीता जा सकता है।

निम्नोक्त मन्त्र में मन्त्रद्रष्टा ऋषि उस परब्रह्म की महिमा को बतलाते हुए कहता है कि जिसके शासन की देवता भी उपासना करते हैं, उसकी उपासना करनी चाहिए—

'य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्राशिषं यस्ये देवाः ।
यस्यच्छाया अमृतं यस्ये मृत्युः
कस्मै देवाय हविषो विधेम[2] ।।"

अर्थात् जो उपासकों को सायुज्य मोक्ष देने वाला है, सामर्थ्य देने वाला है, समस्त देव जिसके शासन की उपासना करते हैं, तथा जिसका आश्रय ज्ञानपूर्वक उपासना मोक्ष का हेतु है और जिसका अज्ञान ही मृत्यु अर्थात् संसार का कारण है, उस परमपुरुष की उपासना हविर्दान द्वारा करते हैं।

वेद में उपास्य देवों के नामों की इयत्ता नहीं है किन्तु उपासना में उपासक के लिए उपास्य का निर्धारण भी परमावश्यक है। वेद में ऐसे अनेक मन्त्र हैं जिनमें एक ही देवता में अपनी भावना को लीन करने का वर्णन किया गया है—

"पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि ।"
"हिरण्मयेण पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावांदित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।।" (शु० यजुर्वेद ४०।१७)।

इस प्रकार वेदों में यद्यपि देवों के बीच एक की ही उपासना में उपासक के लीन होने का वर्णन मिलता है, किन्तु उस देव का प्रत्यक्ष दर्शन तब होता है, जब उपासक उसमें लीन होकर संसार को भूल बैठता है। अतः विचारणीय है कि उस परब्रह्म में लीन होने के पूर्व उपासक किसके सन्निकट बैठ कर उपासना करता है। इस प्रकार की भावना से ही शास्त्रकारों ने 'प्रतीकोपासना' एवं 'प्रतिमोपासना' का विवेचन किया है,अतः सम्प्रति प्रतीकोपासना एवं प्रतिमोपासना का विचार प्रस्तुत है।

प्रतीकोपासना—प्रतीक का अर्थ है, वे वस्तुयें, जो थोड़े बहुत अंश में ब्रह्म के स्थान में उपास्यरूप से ली जा सकती हैं और प्रतीकोपासना का अर्थ है—ब्रह्म के स्थान में ऐसी किसी वस्तु की उपासना करना, जो कुछ या अधिक अंशों में ब्रह्म के सदृश हो पर स्वयं ब्रह्म नहीं हो[4]। आचार्य रामानुज का कथन है कि जो वस्तु ब्रह्म नहीं है, उसमें ब्रह्मबुद्धि करके ब्रह्म का अनुसंधान करना ही प्रतीकोपासना है—"अब्रह्मणि ब्रह्मदृष्टया अनुसंधानम्[5]।" तात्पर्य है कि मनुष्य किसी भी देव की उपासन करे, किन्तु उसकी भावना यह होनी चाहिए कि मैं परब्रह्म की उपासना करता हूँ। स्मृति भी कहती है—

"सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति[1] ।"

गीता में भी भगवान् स्वयं कहते हैं—

"येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।"[2]

भगवान् शङ्कराचार्य कहते हैं कि सबका नियन्ता होने के कारण वह ब्रह्म ही आदित्यादि देवों की उपासना का फल देता है—"फलम् आदित्याद्युपासनेषु ब्रह्म एव दास्यति सर्वाध्यक्षत्वात्[3] ।"

इस प्रकार प्रतीकोपासना को निम्न मन्त्र में देखा जा सकता है—

"तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुकं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।।"[4]

इस मन्त्र में अनेक देवों का एकत्व कहा गया है, यहाँ पर इन सबका एकत्व अङ्गदृष्टि सापेक्ष है। अङ्गी से अङ्ग भिन्न नहीं होता है अतः उस परमेश्वर की ही उपासना है।

प्रतिमोपासना—उपास्य के प्रतिरूप आकृति की उपासना ही "प्रतिमोपासना" है। यह प्रतिमा दो प्रकार की हो सकती है—१. 'प्रतिकृति प्रतिमा', २. 'भाव प्रतिमा।' रूपवान् साकार वस्तु की चित्रपट द्वारा अथवा दारुपाषण आदि फलक द्वारा प्रतिरूप शिल्प से निर्माण 'प्रतिरूप प्रतिमा' है। निरूप, निराकार वस्तु की प्रतिकृति असम्भव है, अतः परब्रह्म की स्तुतियों में वर्णित स्वरूप का ध्यान कर उपासना करना "भाव प्रतिमा" है।

उपास्य को प्रत्यक्ष देखने की अभिलाषा से उपासना करनेवाला 'प्रतिकृति प्रतिमा' की अपेक्षा रखता है इसलिए इसका उपासक निसर्ग सिद्ध विश्वाकार के सदृश हिरण्यगर्भ के प्रतिकृति नामक शालिग्राम शिला की उपासना करता है, जिसे निम्न मन्त्र में देखा जा सकता है—

"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ,
स दाधार पृथिवीं द्यामु-
तेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम[5] ।।"

गीता के निम्न श्लोकों द्वारा हिरण्यगर्भ की प्रतिमा वर्तुलाकार कही जा सकती है—

"सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्[6] ।"

इस प्रकार की प्रतिमा की उपासना ही "प्रतिरूप-प्रतिमोपासना" है।

"ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासन सन्निविष्टः ।

---

१. ऋग्वेद, ५।८२।५ । २. शु० यजु० २५।१३ ।
३. शु० यजु० ४०।१७ । ४. भक्तियोग, स्वामी विवेकानन्द, पृ० ४८ ।
५. ब्रह्मसूत्र रामनुज भाष्य, ४।१।५ ।

---

१. भागवतधर्म । २. श्रीमद्भगवद्गीता, ९।२३ ।
३. ब्रह्मसूत्र शा० भा०, ४।१।५ । ४. यजुर्वेद, ३२।१ ।
५. यजुर्वेद, २५।१० । ६. गीता०, १३।१३–१४ ।

अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के

७५ वें जन्म दिवस पर

श्रद्धा सहित नमन

कृष्णदास राधिकारंजन

नीचीबाग – वाराणसी

फोन—६३३८४ दुकान, ५२५९३ निवास

- थोक व फुटकर वस्त्र
- पंचायती व फर्शी दरी,
- काश्मीरी शाल के लिए पधारें

धर्मसम्राट्

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के

७५वें जन्म दिवस पर शतशत नमन

कल्पतरु

- फैन्सी वस्त्र विक्रेता
- सूटिंग–शर्टिंग–साड़ियाँ

सोनारपुरा, वाराणसी

फोन { ५३८८० दुकान
५२५९३ निवास

केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः[1] ॥"

इस प्रकार वर्णित नारायण के स्वरूप का ध्यान करते हुए उपासना करना 'भावप्रतिमोपासना' है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से मन्त्र भाग में उपासना की स्थिति जानी जाती है।

भक्ति—'सेवा' अर्थ को अभिव्यक्त करने वाले 'भज्' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय का योग होने से 'भक्ति' शब्द निष्पन्न होता है। सम्प्रति भगवद्भक्ति विचारणीय है, अतः यद्यपि भक्ति शब्द का अर्थ 'सेवा' होता है, तथापि सब प्रकार की सेवा को 'भक्ति' नहीं कह सकते, अर्थात् नौकर द्वारा की गयी अपने स्वामी की सेवा 'भक्ति' नहीं है, इसी अभिप्राय से आचार्य स्वप्नेश्वर ने कहा है—

"जीवोपाध्यनवच्छिन्नचेतनविषयिणी अनुरक्तिरेवसा[2]"

अतः 'भक्ति' शब्द को भगवद् भक्ति के लिए रूढ़ कहना अनुचित प्रतीत नहीं होता।

कदाचित् नौकर द्वारा की गयी स्वामी की सेवा अनुरक्ति के बिना भी दबाव आदि के कारण हो सकती है, किन्तु भगवान् की सेवा बिना अनुराग के संभव नहीं, अतः भक्तिसम्प्रदाय के आचार्यों ने ईश्वर में 'परा अनुरक्ति[3]' अथवा 'उत्कृष्ट प्रेम[4]' को ही भक्ति का स्वरूप बतलाया है। वेद के मन्त्रभाग में बहुधा अनुराग का वर्णन मिलता है, जिनमें कहीं भक्त ऋषि भगवान् की स्तुति करता हुआ देखा जाता है, तो कहीं पति पत्नी के दृढ़तर अनुराग का वर्णन रहता है। जैसे निम्नोक्त मन्त्र में ऋषि कहता है कि जिस प्रकार जाया 'पति' का आलिङ्गन करती है, उसी प्रकार मेरी बुद्धि 'इन्द्र' (उपास्य) का परिरम्भण करे, अर्थात् उपास्य में चिपक जाय–

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः
सध्रीचीर्विश्वा उशतीरेनूषत ।
परिष्वजन्ते जनयो यथा पतिं
मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये[5] ॥

इस प्रकार के अनुराग प्रतिपादक मंत्रों में जितना अंश पति पत्नी के अनुराग का अभिधान करता है, उसके आधार पर ही परवर्ती काल में साहित्यशास्त्राचार्यों ने "शृङ्गार रस" की कल्पना की तथा जितना अंश उपास्य से चिपक जाने को बताता है, उसके आधार पर भक्तिशास्त्र के आचार्यों ने उसे पल्लवित कर 'पराऽनुरक्ति' कहते हुए 'भगवद्भक्ति' की संज्ञा दी, जिसे प्राप्त होने पर भक्त 'सिद्ध' हो जाता है, 'अमृत' हो जाता है तथा 'तृप्त' हो जाता है[6]। अतः भारतीय भक्ति सम्प्रदाय का आदि स्रोत को वेद के उद्धृत कुछ मन्त्रों में मनुष्य एवं देवताओं के बीच गाढ़े प्रेम और मित्रता की कल्पना से भी हम समझ सकते हैं—

(क) "त्वां वर्धयन्ति क्षितयः पृथिव्यां
त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः
पिता माता सद्मिन्मानुषाणाम्[1] ॥

(ख) त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे[2] ।

(ग) अग्निं मन्ये पितरमग्निमापि मग्निं भ्रातरं सद्मित् सखायम्[3] ।

(घ) सखा पिता पितृतमः पितृणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः[4] ॥

उपर्युक्त मन्त्रों में क्रमशः 'अग्नि' एवं 'इन्द्र' की स्तुति है। अग्नि द्वारा यज्ञ का सम्पादन होता है, यह देवताओं का मुख भी कहा जाता है, क्योंकि इसी अग्नि द्वारा देवताओं तक 'हवि' पहुँच पाती है, किन्तु इस रूप में 'अग्नि' की स्तुति नहीं की गयी है, अपितु भक्ति से आप्लावित हृदय वाला भक्त ऋषि ने "भ्राता" "पिता" माता इत्यादि रूप में स्तुति की है। इसी प्रकार वैदिक देवताओं में 'इन्द्र' शौर्य का प्रतीक है जो देवताओं का राजा है। असुरादि से भयभीत हो कर देवता उसकी सहायता की कामना करते हैं। किन्तु उपर्युक्त 'इन्द्र' के स्तुतिपरक मन्त्रों में देवताओं के राजा अथवा सहायकादि रूप से स्तुति नहीं की गयी है, अपितु 'माता' 'पिता' 'सखा' इत्यादि रूप में स्तुति की गयी है। वस्तुतः जो जिस रूप में या जिस कर्म के लिए प्रधान है, उसकी उसी रूप में स्तुति करना सामान्य बात है, किन्तु 'स्तुत्य' को ही सबकुछ समझ कर स्तुति करने का प्रमुख कारण 'अनुरक्ति' ही है। तत्त्वतः विचार किया जाय तो भक्ति भावना के बिना इस प्रकार भाव से परिपूर्ण स्तुति का उद्गम ही संभव नहीं है। अतः उपर्युक्त मन्त्रों से अनुरक्ति पूर्वक स्तुति के द्वारा "ईश्वरविषयिणी अनुरक्ति रूपा भगवद्भक्ति" को समझ सकते हैं।

इस प्रकार भक्ति की स्थिति वेदों में देखते हुए भागवतादि आर्षग्रन्थों में 'नवधाभक्ति' की कल्पना की गयी—

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा[5] ॥"

उपर्युक्त श्रवण, कीर्तन, स्मरण, आत्मनिवेदनादि भक्त्यङ्गों का सङ्केत वेदों में अनेक स्थलों पर मिलता है।

श्रवण कीर्तन—भगवान् की दिव्य लीलाकथाओं का, उनके नामगुणों का श्रद्धाप्रेम से सुनना 'श्रवण' भक्ति है तथा श्रद्धा प्रेमपूर्वक भगवान् की मङ्गलमयी लीलाओं का 'कथन', 'नामों का कीर्तन', 'जप' करना कीर्तन भक्ति है। उपर्युक्त श्रवण तथा कीर्तन, दोनों भक्तियों का दिग्दर्शन निम्न श्रुतियों में देखा जाता है—

"तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद
ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन

---

[1] नारदपाञ्चरात्र, ११।७१।

[2] स्वप्नेश्वर भाष्य, १।१।२। [3] शा० भ० सू०, १।१।२ "सा परानुरक्तिरीश्वरे"। [4] नारद भ० सू०, २, "सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा"।

[5] ऋग्वेद, १०।४३।१।

[6] यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृतो भवति तृप्तो भवति (ना० भ०सू०४)।

[1] ऋग्वेद, ६।१।५। [2] वही, ८।९८।११।

[3] ऋग्वेद, १०।७।३। [4] ऋग्वेद, ४।१७।१७।

[5] श्रीमद्भागवत, ७।५।२२-२३।

परमपूज्य श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज की

७५ वीं वर्षगाँठ पर श्रीचरणों में सादर नमन

अनुभूत घरेलू औषधि

सुधा सिन्धु

पेचिका, दस्त, मरोड़, पेट दर्द, वमन, मितली, बच्चों के हरे पीले दस्त, हैजा एवं खाँसी तथा दमे की अनुभूत औषधि है।

सुधा सिन्धु को नवजात शिशु, बालक, युवा, वृद्ध एवं गर्भिणी स्त्री सभी आवश्यकतानुसार सेवन कर सकते हैं।

सफर में तथा घर में सदैव पास रक्खें।

निर्माता—

सुख संचार कम्पनी

६०७ ताजपुरा, मथुरा।

प्रकाश टेक्सटाइल्स

उच्चकोटि के डेढ़ सूती व दोसूती

के

विशेष निर्माता

मुख्य कार्यालय—

१३७४, कटरा लेहसवान, चाँदनी चौक, देहली

दूरभाष—२५१२४६, २५९५६४, २७११६९

फैक्टरी—मैंडू रोड, हाथरस (उ. प्र.)

दूरभाष—७४१८०२

फोन : ६२७६४, ६३३६०

अनन्तश्री विभूषित स्वामी श्री करपात्री जी महाराजको

सादर नमन

कलाकार — रजि० नं० २१७४६९

अमित — रजि० नं० २८९१२०

महात्मा होजरी

उच्चकोटि के होजरी निर्माता व थोक विक्रेता

हमारे उत्पादन :—सोना, फाइवस्टार, नाइन अप, सुपर मैन, जनता, कविता, स्वामी, डोसा, नाज इत्यादि।

सी. के. ६३।१६९ छोटी पियरी, वाराणसी

With best Compliments

from

Surya Electric Construction

Manufacturer of Surya Brand

TABLE/CABIN FAN

D 58/12-14 SIGRA, VARANASI-221010

Phone : 63505 Gram : SURYACO.

आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन
महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे[1] ।।"
"यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे
सुमज्जानये विष्णंव ददाशति
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्
सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत्[2] ।।"

इन मन्त्रों में अपनी योग्यता के अनुसार विष्णु की स्तुति करने का निर्देश है, तथा जो स्तुति करने में असमर्थ है, वह नाम कीर्तन करे। जो उस सृष्टिकर्ता भगवान् विष्णु के चरित्रों का 'श्रवण', 'कीर्तन' करता हुआ स्वयं को भी सर्मपित कर देता है, वह यश एवं धन से युक्त होकर 'परम पद' को प्राप्त करता है।

स्मरण—भगवान् के परम प्रभावशाली मङ्गलमय नाम, रूप, गुण और लीला का ध्यान करना ही 'स्मरण भक्ति' है, जो निम्न मन्त्र में देखी जाती है—

"वि चक्रमे पृथिवीमेप एतां
क्षेत्राय विष्णुर्मनुपे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास
उरुक्षितिं सुजनिमा चकार[3] ।।"

इस मन्त्र में भगवान् के वामनावतार का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि भगवान् ने स्मरण करने वाले भक्त देवताओं के लिए असुरों से अपहरण कर इस पृथिवी को दिया। इससे भगवान् के 'भक्तवत्सलता' का भी सङ्केत मिलता है।

पादसेवनम्—श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भयहरण करने वाले भगवान् के पादपद्मों की पूजा ही 'पाद सेवन' भक्ति है। इस प्रसंग में यह विचारणीय है कि भगवान् के साक्षात् चरणों का दर्शन तो संभव नहीं, पुनः उनके चरणों की सेवा से 'पादसेवन भक्ति' का क्या तात्पर्य है ? इस बात को ध्यान में रखते हुए भी महर्षि 'शाण्डिल्य' ने "पादोदकं तु पाद्यमव्याप्तेः"[4] सूत्र की रचना की है। इस सूत्र का भाष्य करते हुए आचार्य स्वप्नेश्वर ने लिखा है—"पूजाधिष्ठानप्रतिमापादसम्बन्धादुपचारस्तत्रापि प्रतिष्ठितायाः"[5] ।। अतएव भगवान् की प्रतिष्ठित प्रतिमा के चरणों की पूजा ही "पादसेवन भक्ति" है। 'पादसेवन भक्ति' का संकेत निम्नमन्त्र में देखा जाता है —

"यस्य त्री पूर्णा मधुना पदा—
न्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत
द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा[6] ।।"

उपर्युक्त मन्त्र में बताया गया है कि तीन बार के 'पादप्रक्षेपण' से ही भगवान् के जिन चरणों ने भुवनों में व्याप्त होकर पृथिवी तथा द्युलोक को माप डाले, वे आनन्द प्रदान करने वाले हैं, अतः उनकी सेवा करनी चाहिए।

अर्चन—बाह्य सामग्रियों से या मन के द्वारा कल्पित पञ्चोपचार, षोडशोपचार, शतोपचार, श्रद्धापूर्वक भगवान् का पूजन करना 'अर्चन भक्ति' है। 'अर्चन भक्ति' प्रतिपादक मन्त्र उद्धृत किया जाता है—

"नू मर्तो दयते सनिष्यन्
यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात
एतावन्तं नर्यमाविवासात् ।।[1]"

उक्त अर्चनभक्ति प्रतिपादक मन्त्र में कहा गया है कि बहुतों के द्वारा स्तुत भगवान् विष्णु की पूजा यदि किसी कामना से की जाती है, तो उससे शीघ्र ही फलप्राप्ति होती है। अतः भगवदर्चन द्वारा भगवान् की सेवा करनी काहिए।

वन्दन—भगवान् के श्री चरणों में या उनके श्री विग्रह चरणों में अनन्यभाव से प्रणाम निवेदन करना या उनकी स्तुति करना 'वन्दन भक्ति' है, जो निम्न मन्त्रों में देखा जाता है—

"अग्निमीडे पुरोहितं, यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ।।[2]"
"उपस्तुहि प्रथमं रत्नधेयं
बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शंभविष्ठः
पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ।।[3]"

उक्त मन्त्रों में कहा गया कि रत्न को धारण करने वाले जो यज्ञ के पुरोहित, ऋत्विक तथा होता स्वरूप हैं, उस 'अग्निदेव' की मैं स्तुति करता हूँ। तथा हे ! मनुष्य तूं धन को धारण करने वाले सब देवों में प्रधान उस वृहस्पति की स्तुति (वन्दना) कर, जो लोक में प्रशंसा करने वालों के लिए सबसे बढ़कर सुख देता है।

दास्यभक्ति—भगवान् को ही एकमात्र अपना परम सेव्य स्वामी मान कर श्रद्धापूर्वक दास्यभाव से जब भगवान् की सेवा की जाती है, तब उसे 'दास्यभक्ति' कहते हैं। जैसे—

त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां
वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्
त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ।।[4]

अर्थात् सैकड़ों तरह से जिसकी स्तुति की जाती है, वह महान् देव हमारा स्वामी होवे। उस प्रभु को स्वामी होने की भावना से स्तोता ऋषि में दास्यभाव स्पष्टतः जाना जाता है। अतः यहाँ 'दास्यभक्ति' है।

सख्यभक्ति—भक्ति भावना से आप्लावित होकर भगवान् में मित्रभाव से प्रेम स्थापित करना "सख्यभक्ति' जिसे हम निम्न मन्त्र में देख सकते हैं—

"तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां
नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

---

१. ऋग्वेद, १।१५६।३ । २. वही, १।१५६।२ ।
३. ऋग्वेद, ७।१००।४ । ४. शा० भ० सू० ।
५. स्वप्नेश्वरभाष्य, पृ० ३७ । ६. ऋग्वेद, १।१५४।४ ।

---

१. ऋग्वेद, ७।१००।१ । २. ऋग्वेद, १।१।१ ।
३. ऋग्वेद, ५।४२।७ । ४. ऋग्वेद, ७।१००।३ ।

ऊरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था
विंष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः[1] ।।"

अर्थात् इस विष्णु के चरणों से मधुर रस टपकता है, जिसको पीने के बाद मनुष्य उसे प्राप्त करने की ईच्छा से हर्षित होते हैं। वह विष्णु हमारे 'सखा' होवें। यहाँ सख्यभाव से स्तुति की गयी है, अतः 'सख्यभक्ति' है।

आत्मनिवेदन—अहंकार विहीन होकर स्वयं को सर्वात्मना श्रद्धा-प्रेम पूर्वक भगवान् के लिए समर्पित कर देना 'आत्म निवेदन' है। अहिर्बुध्न्य संहिता में छः प्रकार से 'आत्मनिवेदन शरणागति' का उल्लेख है—

अनुकूलस्य सङ्कल्पः, प्रतिकूलस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ।।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः[2] ।

क, ख—अनुकूल का सङ्कल्प, प्रतिकूल का वर्जन—

प्रभु प्राप्ति के पथ में जो साधन अनुकूल पड़ते हैं, उनको दृढ़ता से अपना कर निरन्तर एकचित्त होकर प्रभु का ध्यान करना ही 'अनुकूल का संकल्प' है, इसके विपरीत प्रभु की प्राप्ति में जो साधन अवरोध उपस्थित करते हैं, उनका सर्वथा परित्याग कर देना ही 'प्रतिकूल का वर्जन' है। उक्त आत्मनिवेदन के दोनों भेद निम्न मन्त्र में देखे जाते हैं—

"नाहमतो निरया दुर्गहैतत्
तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि
युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै[3] ।।"

इस मन्त्र में भक्त ऋषि कहता है कि अत्यन्त दुर्गम जो माया के मार्ग हैं उनका अवलम्बन नहीं करूँगा, क्योंकि ये मार्ग यद्यपि वाह्य चाकचिक्य से लुभा कर मन को आकर्षित करते हैं, तथापि इनके परिणाम वहुत भयंकर होते हैं। वस्तुतः सांसारिक जाल में फँस कर मनुष्य प्रभु की सेवा नहीं कर पाता है, अतः उपर्युक्त मन्त्र में उसका परित्याग वतलाया गया है, जो 'प्रतिकूलवर्जन' नामक 'आत्मनिवेदन शरणागति' है।

इसी मन्त्र में ऋषि का यह भी सङ्कल्प देखा जाता है कि "अव मैं विषय वासनाओं की ओर ले जाने वाले साधनों से युद्ध करूँगा, तभी तो जो अकृत कार्य हैं, उन्हें करने में समर्थ हो सकूँगा। इस प्रकार यहाँ 'अनुकूल का सङ्कल्प' नामक आत्मनिवेदन शरणागति है"।

रक्षा का विश्वास—भक्त जव दुःख में पड़ता है, तो भगवान् का स्मरण इस भावना से करता है कि अपने समस्त वलों एवं सहस्रों रक्षण शक्तियों को लेकर निश्चितरूप से भगवान् मेरे पास पहुँच कर दुःख का निवारण करेंगे। इस प्रकार भक्त में रक्षा का विश्वास निम्न मन्त्र में देखा जाता है—

"आ घा गमद्यदि श्रवत् सहस्रणीभिरुतिभिः
वाजेभिरूप नो हवम्[4] ।।"

गोप्तृत्ववरण—एक मात्र प्रभु को ही अपना रक्षक जान कर उनकी स्तुति करना—

"वयं घा ते त्वे इ द्विन्द्र विप्रा अपिष्मसि
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता[1] ।।"

उपर्युक्त मन्त्र में भक्त कहता है—हे! पुरुहुत प्रभु आपके अतिरिक्त मेरा रक्षक तथा मुझे सुख देनेवाला कोई नहीं है।

कार्पण्य—कार्पण्यावस्था में भक्त अत्यन्त कातर होकर दैन्यभाव से प्रभु के समक्ष अपने दुःख को करुणक्रन्दन द्वारा प्रकट करता है—

"क्वस्य तै रुद्र मृडयाकुर्हस्तो
यो अस्ति भेषजो जलाषाः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी
नु मा वृषभ चक्षमीथाः[2] ।।"

अर्थात् हे प्रभो! क्षमा करो, आज मैं तुम्हारे संरक्षण के विना अत्यन्त दुःखी हूँ। अपने अमोघ वरद हस्त से मेरे संतापों को दूर करो। देवताओं के सम्वन्ध में पाप करके आज मैं कितना दुःखी हूँ। रुद्र! अपने रोगविनाशक, आनन्ददायक हाथ को पुनः मेरे शिर पर रख दो। इस मन्त्र में भक्त का 'कार्पण्य' है।

आत्मनिक्षेप—'आत्मनिक्षेप शरणागति' में भक्त सर्वात्मना अपने को प्रभु के हाथों में समर्पित कर यह समझता है कि प्रभु मेरे लिए जो भी कर रहे हैं, वह उचित ही है—

"यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्यं ।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे[3] ।।

इस मन्त्र में भक्त की समर्पण भावना निम्न प्रकार से अभिव्यक्त हो रही है—हे प्रभो! वलप्राप्ति के लिए जिसके योग्य मैं हूँ वही धन मुझे दीजिए। यज्ञकर्मों को सम्पादित करने के लिए भी वही धन दीजिए, जिसे आप मेरे लिए उपयुक्त समझते हों, क्योंकि मेरी विवक्षा भी आप में ही निहित है।

इस प्रकार वैदिक काल से ही 'भक्ति' का यह क्रम आज तक चला आ रहा है। न केवल ज्ञानकाण्ड की व्याख्या करने वाले वैदिक मन्त्रों में ही भक्ति सीमित रही, अपितु उत्तरोत्तर ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् भागों में भी भक्ति का विकास होता गया। वेद का ब्राह्मण भाग मुख्यतः कर्मकाण्ड की व्याख्या प्रस्तुत करता है, तथापि उसकी भी साध्या भक्ति ही है, अतः ऐतरेय ब्राह्मण कहता है—

"यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्तां मनसा अनुध्यायेत्[4] ।"

यहाँ मन से ध्यान भी भक्ति को ही संकेतित करता है।

उपनिषदों में तो शब्दतः भक्ति का उल्लेख है—

"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः[5] ।।"

अतः वेदविहित भक्ति का उत्तरोत्तर विकास होने के कारण ही आज हम देखते हैं कि कर्म एवं ज्ञान की अपेक्षा भक्ति के प्रति मनुष्यों का अधिक झुकाव है। इस प्रकार संक्षेप में वेदप्रतिपादित भक्ति का विवेचन प्रस्तुत किया गया।

---

[1] ऋग्वेद, १।१५४।५ ।
[2] अहिर्बुध्न्य संहिता, ३७।२८-२९ ।
[3] ऋग्वेद, ४।१८।२ ।
[4] ऋग्वेद, १।३०।८ ।

---

[1] ऋग्वेद, ८।६६।१३ ।
[2] ऋग्वेद, २।३३।७ ।
[3] ऋग्वेद, १०।२१।७।
[4] ऐतरेय ब्राह्मण, ११।८।
[5] श्वेताश्वतर० ६।२३ ।

वैदिक साहित्य में सभा-समिति

• श्री कौशलकिशोर मिश्र •

प्राचीन भारत में शासन-सम्बन्धी अनेक लोकप्रिय अथवा जन-संस्थाएँ थीं। इस तथ्य को सभी भारतीय एवं विदेशी लेखकों ने स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसी संस्थाएँ प्रारम्भिक वैदिक काल में ही थीं, यद्यपि कालान्तर में उनका महत्त्व कम हो गया। स्मृति से भी पूर्व काल में आर्य जाति में अपने सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक प्रश्नों को सभा में तय करने के लिए स्वाभाविक अथवा जन्मजात इच्छा प्रदर्शित की प्रतीति होती है। जिस प्रकार ग्रीक लोगों में 'आरकोपेगस' था, रोमन लोगों में 'क्यूरिया' थी और एंग्लो-सेक्सन देशों में 'वितान' थी, उसी प्रकार भारत के आर्यों में सभा और समिति थी। प्रायः सभी विद्वान् लेखकों ने यह माना है कि वैदिक काल में साधारणतया राजतंत्रीय शासन पद्धति का प्रचलन था, किन्तु राजा के साथ सभा और समिति जैसी लोकप्रिय संस्थाएँ तत्कालीन शासन का महत्वपूर्ण अंग थी।

सभा—ऋग्वेद में सभा शब्द का उल्लेख आठ बार हुआ है। यह सभा में इकट्ठे लोगों और सभा भवन या सभास्थल दोनों का द्योतक है। सभा भवन के अर्थ में यह परवर्ती ग्रन्थों में भी प्रयुक्त मिलता है। यजुः संहिता में ग्राम, वन या सभा[1] में किये गये पापों का वर्णन है। फलतः इन प्रसंगों में यह शब्द स्थान वाचक है। एक स्थान[2] पर सभापाल का उल्लेख मिलता है जिससे सभाभवन के संरक्षक का बोध होता है।

विप्र के साथ सभेय[3] विशेषण के प्रयोग से यह संकेत मिलता है कि जब सभा प्रशासनिक प्रयोजनों से बुलाई जाती थी तब यह गिने-चुने लोगों अर्थात् ब्राह्मणों और गुरुजनों की बैठक होती थी। एक परवर्ती ऋग्वैदिक उल्लेख[4] में स्त्री को 'सभावती' अर्थात् सभा में जाने योग्य कहा गया है जिससे पता चलता है कि स्त्री सदस्याएँ भी इस संस्था में भाग लेती थीं।

अत्यन्त आदिम सभाओं में ही स्त्रियों के सभागमन की प्रथा थी इसलिए समिति की तुलना में सभा की पुरातनता सिद्ध होती है। इसकी पुरातनता का संकेत इस तथ्य से भी मिलता है कि 'समिति' शब्द के विपरीत 'सभा' शब्द के अनेक प्रयोग भारोपीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। शायद सबसे पहले हापकिन्स ने सभा की प्राचीनता की ओर संकेत किया और इसकी तुलना जर्मन शब्द 'सिप्पे'[5] से की। अब मान लिया गया है कि सभा शब्द एक ऐसी मूल धातु से निकला है जिसका पुरानी यूरोपीय भाषा के 'सुब्' पुरानी जर्मन भाषा के 'सिप्प', 'गोथिक', 'सिब्ज' और मध्य जर्मन 'सिप्पे' से निकट सम्बन्ध है। इन सभी का अर्थ सगे-सम्बन्धियों, जन-जाति, परिवार या गोत्र का संघ है। बन्द्योपाध्याय ने ठीक ही कहा है कि भारत की प्रारम्भिक 'सभाएँ' भी कुछ इसी प्रकार की रही होंगी। "सभा' का लोकप्रिय और आदिम स्वरूप इसमें निबटाए जाने वाले सीधे सरल कार्यों से भी भासित होता है। कार्य विभाजन की प्रणाली से अपरिचित किसी भी आदिम सभा की तरह इसके सदस्य भी एकत्र होकर पासा खेलते थे, प्रार्थना तथा यज्ञ करते थे और पशुओं को पालतू बनाने के बारे में विचार विमर्श करते थे।

आगे चलकर 'सभा' का स्वरूप मुख्यतः पितृतंत्रात्मक और अभिजातीय हो गया। प्रारम्भ में इसमें स्त्रियाँ भी सम्मिलित हुआ करती थीं, उत्तर वैदिक काल में यह चलन समाप्त हो गया।[7] सभा के सदस्यों का सामाजिक स्तर बहुत ऊँचा था यह सिद्ध करने के लिए लुडविग ने अनेक वैदिक ऋचाएँ उद्धृत की हैं। ऋग्वेद की एक ऋचा में घोड़ों, रथों और गौओं से सम्पन्न तथा धन प्राप्त करनेवाले एवं सभा में जाने वाले इन्द्र उपासकों का उल्लेख है।[8] एक दूसरी ऋचा में यशस् द्वारा सभासद को प्रदत्त प्रमुखता का जिक्र है।[9] और एक तीसरी ऋचा में अग्नि के चारों ओर सुजातों के जमावों का वर्णन है।[10] सायण के अनुसार इन सुजातों में पुरोहित और उनके यजमान सम्मिलित है, लेकिन पाठ से ज्ञात होता है कि ये सुवीर थे। बन्द्योपाध्याय ने कुछ अन्य उल्लेख उद्धृत किये हैं। दृष्टान्तस्वरूप अथर्ववेद में कहा गया है कि राजा लोग एकत्र होते हैं[11] और अनुमान है कि वे शायद सभा पूर्ति के लिए एकत्र होते थे।[12] ऋग्वेद की एक ऋचा में[13] उपासक लोग गृह कार्य कुशल तथा सभा और यज्ञ में प्रमुखता रखने वाले पुत्रों की याचना करते हैं। यहाँ 'सभेय' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ सभा में बैठने का पात्र होता है। ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा में 'सभेय विप्रों' का उल्लेख हुआ है जिससे प्रगट होता है कि सभा में पुरोहित भी सम्मिलित होता था। अतः पूर्व वैदिक ग्रन्थों में भी 'सभा' के जन-जातीय स्वरूप को सिद्ध करनेवाले अधिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। इसके विपरीत उनसे सभा में उच्च सामाजिक दर्जे वाले लोगों की उपस्थिति का आभास मिलता है। विद्वान्, प्रभावशाली और चरित्रवान लोग इसमें अपना प्रभाव रखते थे इसलिए उन्हें सभेय या सभासद कहा जाता था। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में इस निकाय की गरिमा के अनुरूप भाषणों का उल्लेख है।[14] शतपथ ब्राह्मण में सोम का वर्णन ऐसे राजाधिराज के रूप में किया गया है जिसके राज दरबार में अधीनस्थ राजाओं का समूह एकत्र होता था। इससे प्रकट होता है कि उत्तर वैदिककाल में सरदार लोग राजदरबार में उपस्थित होते थे। यह भी अनुमान है कि गुरुजन या पिता राजदरबार में उपस्थित होते थे।[15] हालांकि वैदिक साहित्य से इस बात की पुष्टि नहीं होती।

सबसे आरम्भिक उल्लेखों से सभा की राजनीतिक स्वरूप की प्रमुखता

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वें जन्मदिवस पर

कोटिशः प्रणाम

—श्री किशनस्वरूप

•

रत्तिराम किशनस्वरूप

गुड़गाँव, हरियाणा

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वें जन्मदिवस पर

शतशः प्रणाम

लक्ष्मी ट्रेडिंग कम्पनी

दुकान नं० ३८, नई मण्डी

सिरसा, हरियाणा

फोन : २२०८, M. L. ७७०

सम्बन्धित फर्म :—

लक्ष्मी क्लाथ हाउस

सुभाष चौक, सिरसा

कनीराम गुलजारीलाल

३८, नई मण्डी, सिरसा (हरियाणा)

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वें जन्मदिवस पर

कोटि-कोटि प्रणाम

• **मेसर्स मुसद्दीलाल मदनलाल**

(राइस एण्ड दाल मिल्स)

सिरसा (हरियाणा)

फोन : दुकान : २५३२ तार : LAXMI

निवास : २५७४

• **अग्रवाल राइस मिल्स**

सिरसा (हरियाणा)

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वें जन्मदिवस पर

कोटि-कोटि नमन

•

हंसराज बाबूलाल

३३, नई मण्डी, सिरसा (हरियाणा)

का आभास नहीं मिलता। इसके विपरीत ऋग्वेद की एक ऋचा में सभा को अक्ष और जुआ खेलने का जमाव कहा गया है।[१६] यदि परवर्ती परम्परा के आधार पर देखा जाय तो कहना होगा कि सभा का उपयोग सामूहिक नृत्य, संगीत आदि क्रीड़ाओं के स्थल के रूप में भी किया जाता था। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि आदिम जन खेल-कूद, राजनीति और धर्म के बीच कोई भेद नहीं बरतते हैं। सभा का संबन्ध जादू-टोने आदि लोक प्रथाओं से भी था। दृष्टान्त स्वरूप अथर्ववेद की एक ऋचा[१७] में कहा गया है कि 'इन लोगों ने सभा में उसके लिए जो भी जादू-टोने किये हैं, मैं उन्हें वापस लेता हूँ।'

वैदिक सभा धर्म सम्बन्धी कार्यकलापों से भी रहित न थी। इसके सदस्य इन्द्र से सभा और सभासदों की रक्षा की याचना करते थे। जब इसकी बैठक आरम्भ होती थी, इसमें यज्ञ किया जाता था और इस यज्ञाग्नि को सभ्य कहा जाता था।

सभा में राजनीतिक और प्रशासनिक कार्यों का भी सम्पादन होता था। अनेक उल्लेखों से स्पष्ट है कि सभा न्याय कार्य भी करती थी। इस तथ्य पर अनेक लेखकों ने जोर दिया है। ऋग्वेद की एक परवर्ती ऋचा के आधार पर सभा को एक ऐसी संस्था के रूप में दिखलाने की कोशिश की गयी है जो अभियोग लगाकर लोगों का कलंक मिटाती थी।[१८] पुरुषमेध में सभाचर के धर्म बलि के रूप में अर्पित किये जाने का उल्लेख है। धर्म का अर्थ है न्याय। अतः मैकडानल के अनुसार सभाचर को न्यायालय का सदस्य या उन लोगों में से एक मानना कठिन नहीं होना चाहिए जो मुकदमों में निर्णय देने के लिए बैठते थे।[१९] मैकडालन सभासद का भी सम्बन्ध उन परमार्शदाताओं से जोड़ते हैं जो सभा में कानूनी मामले निपटाते थे। उनका विचार है कि यह भी सम्भव है कि सभासदों जो सम्भवतः परिवारों के प्रधान हुआ करते थे, यह आशा की जाती थी कि वे सर्वसामान्य लोगों से अधिक नियमितता से सभा में उपस्थित रहें। सामान्य विचार विमर्श और निर्णय करने के उद्देश्य से होने वाली बैठकों की अपेक्षा न्याय करने के लिए सभा की अधिक बैठकें होती होंगी। मैकडानल मानते हैं कि न्यायिक कार्य पूरी सभा नहीं वरन उसकी स्थायी समिति सम्पन्न करती थी।[२०] सभा को 'कष्ट' और 'प्रचण्ड' कहा गया है[२१] जिससे यह ध्वनित होता है कि जो विधि का उल्लंघन करता था उसके लिए सभा कष्टदायक थी। अथर्ववेद में आया है कि चोरों और अपराधियों को घसीट कर सभा में लाये जाने पर कभी-कभी सभासद वक्रोक्तियों से भरे आक्रामक भाषण सुना देते थे और जान पड़ता है कि धनी से धनी, प्रभावशाली से प्रभावशाली लोगों को भी 'सभा' में एकत्र अपने समकक्ष जनों के निर्णय को स्वीकार करना पड़ता था।[२२] स्पष्ट है कि सभा में न्यायिक कार्य होते थे। अथर्ववेद की ऋचा में पृथ्वी पर पूरी की गयी आशाओं या सम्पन्न किये गये सुकर्मों[२३] का सोलहवाँ भाग यम के सभासदों द्वारा आपस में बाँटे जाने का जिक्र है।

वैदिक साहित्य के स्रोतों से स्पष्ट होता है कि राजा सभा में उपस्थित रहता था। यद्यपि कुछेक स्थलों पर समिति द्वारा राजा के निर्वाचन का संकेत मिलता है, लेकिन सभा द्वारा ऐसे निर्वाचन का हमें कोई संकेत नहीं मिलता।[२४] लेकिन यह बात तो साफ है कि वैदिक काल में राजा सभा में उपस्थित रहता था।

राजा सभा के परामर्श को सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझता था और इसके सदस्यों के समर्थन के बिना शायद काम नहीं चला सकता था। ये सदस्य प्रस्तावों पर बोलते और तीव्र विवाद करते थे। अथर्ववेद की एक ऋचा[२५] में राजा के यह स्वर और भावना से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

'प्रजापति की दो पुत्रियाँ, 'सभा' 'समिति' एक होकर मुझे संरक्षण प्रदान करें। जिस किसी से मैं मिलता हूँ वह मेरा आदर करे और मुझे सहायता दे। हे पितरो, सभा में मेरे शब्द न्याययुक्त हों।

हे सभा, हम तेरा नाम जानते हैं, तेरा नाम परिसंवाद है। यहाँ सभा में उपस्थित सभी लोग मुझसे सहमत हों।

यहाँ बैठे लोगों की श्री और विद्या मेरी हो। इन्द्र यहाँ एकत्र सभी लोगों में मुझे प्रमुखता प्रदान करें।'

यदि राजा ऐसी प्रार्थना करता था तो स्पष्ट है कि वह सभा के समर्थन की उपेक्षा नहीं कर सकता। सभा में प्रार्थना इसलिए की जाती थी कि सहयोग बना रहे कलह न हो। ऐसा मालूम होता है कि सभा द्वारा पारित संकल्प सभी के लिए बन्धनकारी था। अथर्ववेद इसे नरिष्टा[२६] कहता है। जायसवाल का अनुमान है कि सभा का संकल्प सभी के लिए बन्धनकारी और अनुलंघनीय था।[२७]

समिति—समिति का उल्लेख ऋग्वेद के उन्हीं भागों में हुआ है जो सबसे बाद में माने गये हैं। इनमें जो छः उल्लेख मिलते हैं वे मण्डल ६ और १० के हैं। फलतः यह माना जा सकता है कि समिति का महत्त्व ऋग्वैदिक काल के अन्त में या उसके भी बाद में हुआ। लेकिन सभा के साथ बात दूसरी है। इसके चार उल्लेख ऋग्वेद के प्रारम्भिक अंशों में और चार बाद वाले अंशों में हैं।[२८] इसलिए समिति सभा से पुरानी नहीं दीखती। अथर्ववेद में इन दोनों संस्थाओं का साथ-साथ चार बार उल्लेख हुआ है। और हर बार सभा पहले और समिति बाद में है।[२९] सामान्यतया यह स्वीकार किया जाता है कि प्रारम्भिक समिति ऐसी जन सभा थी जिसमें जन-जाति के लोग अपना काम-काज करते थे। लुडविग के अनुसार 'समिति' अधिक व्यापक सभा थी जिसमें न केवल सभी जन-सामान्य (विशः) वरन् ब्राह्मण और महावन के रूप में ज्ञात धनी-मानी लोग भी शामिल होते थे। अथर्ववेद से पता चलता है कि इसमें महिलाएं भी शामिल होती थीं।[३०] जायसवाल का मत है कि समिति का संगठन किसी-न-किसी प्रकार के प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त पर होता था और नगर तथा ग्राम का प्रतिनिधित्व संभवतः उसका ग्रामणी करता था।[३१]

श्री दीक्षितार ने माना है कि वैदिक साहित्य में निःसन्देह समिति एक सामुदायिक संस्था थी, जिसका प्रधान राजा था। यह निश्चित है कि जहाँ तक इसकी रचना और कार्यों का सम्बन्ध है समिति अवश्य ही सभा से भिन्न थी। राजा समिति में उपस्थित रहता था और यह आवश्यक समझा जाता था कि वह समिति में उपस्थित रहे। अथर्ववेद में एक स्थल पर वर्णन है कि अभिषेक के बाद पुरोहित कहता था कि राजा अपने

सिंहासन पर स्थापित हो और समिति उसके प्रति वफादार रहे। फलतः समिति जनता की सभा थी और उससे सामञ्जस्य राजा के लिए महत्त्वपूर्ण था। सम्भवतः इसलिए वन्द्योपाध्याय निष्कर्ष निकालते हैं कि—(१) समिति समुदाय के सम्पूर्ण जन का एकत्र समूह था। (२) यह राष्ट्र की सभा थी। (३) इसका राजा से निकट का सम्बन्ध था और इसका अधिवेशन प्रायः सभी अवसरों पर होता था, यथा राजा के अभिषेक, युद्ध काल अथवा राष्ट्रीय संकट काल में। सम्भवतया समिति को राजा का निर्वाचन करने और उसे स्वीकार करने या उसके कार्यों पर स्वीकृति प्रदान करने के लिए आहूत किया जाता था।[३२]

समिति का सम्बन्ध धार्मिक अनुष्ठानों और प्रार्थनाओं से भी था। समिति में सब एक मत होकर निर्णय पर पहुँचे इसके लिए भी प्रार्थनाएँ की जाती थीं। देवताओं को अर्पित बलि से भी समिति का सम्बन्ध था। एक ऋचा में समिति में अग्नि का आवाहन किया गया है, ताकि वह बलि का अपना अंश ग्रहण करे। इसमें यह कामना व्यक्त की गई है कि देवताओं के बीच भी देव समिति हो।[३३]

श्री वन्द्योपाध्याय का मत है कि समिति के कुछ सैनिक कार्य भी होते थे। क्योंकि टीकाकारों ने समिति शब्द का अर्थ युद्ध का व्यूह लगाया है। यास्क ने इसका अर्थ युद्ध बतलाया है।[३४] कैलेसिकी साहित्य[३५] में भी इस शब्द का ऐसा अर्थ बताया गया है। सायण ने समिति का अनुवाद युद्ध या संग्राम किया है।[३६] अथर्ववेद के एक उल्लेख में ऐसा संकेत मिलता है कि समिति और जन-जातीय सैनिक इकाई ग्राम-जिसके समूह को संग्राम कहा जाता था, इन दोनों के बीच कोई अन्तर न था।[३७] प्रारम्भिक भारोपीय संस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन से भी समिति के सामरिक स्वरूप का समर्थन होता है। प्रारम्भिक यूनानी, रोमन और जर्मन सभाओं में लड़ाई और मतदान साथ-साथ चलते थे। होमरकालीन स्वतंत्र जन सैन्य व्यूह में एकत्र होकर महत्वपूर्ण प्रश्नों का निर्णय लेते थे।[३८]

ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनों में समिति के विचारों की एकता पर बहुत जोर दिया गया है। सभा में सहमति के लिए प्रार्थना करते हुए कवि कहता है—हमारा मंत्र एक हो, समिति एक हो, मन एक हो और हमारे विचार एक हों। लोग समिति में सहमति पर पहुँचने का प्रयत्न करते थे।[३९] एक मंत्र में समान मंत्रों, समान समिति और समान व्रत की प्राप्ति की कामना की गयी है (समानो मन्त्रः समिति समानी समानंमनः सह चित्त मेषाम)।[४०] जायसवाल ने समिति की स्थिति का मूल्यांकन करते हुए यह स्वीकार किया है कि समिति एक प्रभुसत्ता सम्पन्न संस्था थी।[४१] लेकिन लेखकों ने इसे साक्ष्यों की खींच-तान माना है।[४२] डा० शर्मा का मत है कि हो सकता है कि यह प्रारम्भिक अवस्था में सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न रही हो लेकिन वैदिक काल के अन्त में इसकी यह सत्ता कायम नहीं रही। समिति को प्राचीन जर्मन संविधान की उस 'प्रभुता-सम्पन्न जनसभा का प्रतिरूप नहीं माना जा सकता जिसका वर्णन टैसिटस ने किया है।[४३]

सभा और समिति जैसी दोनों वैदिक संस्थाओं के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में सामान्यतः लुडविग के विचार को स्वीकार्य माना गया है। उनके अनुसार समिति समस्त जनसमुदाय की संस्था थी और सभा होमरकालीन गुरुजन सभा जैसी संस्था थी। यह इने-गिने-चुने लोगों की निकाय थी जिसमें जन-जाति के केवल श्रेष्ठ जन ही राजा के साथ परामर्श करने के लिए जा सकते थे। जायसवाल इससे प्रायः सहमत हैं। उनका मत है कि सभा भी जन निकाय थी लेकिन यह समिति की सत्ता के अधीन कार्य करने वाले गिने-चुने लोगों की स्थाई और अचल निकाय थी। वन्द्योपाध्याय का मत भी करीब-करीब ऐसा ही है लेकिन घोषाल का मत है कि समिति की तरह सभा भी जन-संस्था ही थी। इन दोनों संस्थाओं को जन-प्रिय रूप में स्वीकार करने में एक कठिनाई है कि सम्पूर्ण वैदिक काल के दौरान—और यह बहुत लम्बा काल है—इसका यही रूप कायम रहा। परन्तु डा० शर्मा ऐसा मानना उचित नहीं मानते।[४४] उनका मत है कि स्पष्टतया सभा शुरू में जनजातीय और सार्वजनिक संस्था थी और बाद में अभिजातीय बन गई, जबकि समिति ने उत्तर वैदिक काल का अपना जन-रूप कायम रखा।[४५]

संदर्भ

१. वाजसनेयी संहिता, ३।४५।२०।१७।
२. वही, ३।७।४।५।
३. ऋग्वेद, २।२४।१४।
४. ऋग्वेद, १।१६७।३।
५. 'पोजिशन ऑफ दि रूलिंग कास्ट्स एटसेटरा', जरनल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी, vol. xiii, १४८।
६. डेवलपमेंट आफ हिन्दू पालिटी एन्ड पालिटिकल थीअरीज, एन० सी० बन्द्योपाध्याय, पृ० ११०।
७. ऋग्वेद, ६।२।४२७।
८. वही, ८।४।९।
९. वही, १०।७१।१०।
१०. वही, ७।१।४।
११. वही, २१।५७।२।
१२. डॉ० रामशरण शर्मा, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृ० १००।
१३. ऋग्वेद, १।९१।२०।
१४. वही, २।२४।१३।
१५. के० पी० जायसवाल, हिन्दू पालिटी (१९२४), पृ० १८।
१६. ऋग्वेद, १०।३४।६।
१७. अथर्ववेद, ५।३१।६।
१८. ऋग्वेद, १०।७१।१०।
१९. वही, ६।२।४२७–२८।
२०. वही, ६।२।४२८।
२१. पारस्कर गृह्य सूत्र, अनु० एच० ओल्डनबर्ग।

२२. अथर्ववेद, ७।१२।३।
२३. वही, ३।२९।१।
२४. डॉ० आर० एस० शर्मा, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृ० १०३।
२५. अथर्ववेद, ७।१२।१–३।
२६. वही, ७।१२।२।
२७. हिन्दू पालिटी, पृ० १९।
२८. हारवर्ड ओरिएंटल सिरीज, भाग ७, पृ० ३९७।
२९. डॉ० शर्मा, पूर्वोक्त उद्धृत पुस्तक, पृ० १०४।
३०. अथर्ववेद, ८।१०।५।
३१. घोषाल, हिस्ट्री ऑफ पब्लिक लाइफ, पृ० १७, भाग १।
३२. एन० सी० वन्द्योपाध्याय, उपर्युक्त पुस्तक, पृ० ११७–११९।
३३. अथर्ववेद, १८।१।२६।
३४. निरुक्त, २।८०७।
३५. अमरकोश, २।८।१०७।
३६. ऋग्वेद, १०।९७।६।
३७. अथर्ववेद, १२।१।५६ पर जायसवाल की टिप्पणी, हिन्दू पालिटी, पृ० १५।
३८. वंद्योपाध्याय पूर्वोद्धृत कृति, पृ० ११९।
३९. ऋग्वेद, १०।१९१।३।
४०. अथर्ववेद, ६।६४।२।
४१. हिन्दू पालिटी, पृ० १२–१३।
४२. डॉ० शर्मा, पूर्वोक्त कृति, पृ० १०८।
४३. उपर्युक्त।
४४. उपर्युक्त।
४५. उपर्युक्त।

• • •

वाराणसी के प्रथम विनियोजन सलाहकार एवं शेयर अभिकर्ता
झंवर ब्रादर्स
२५।४ चौक, वाराणसी
आपका अभिनन्दन करता है
–अन्य सहयोगी संस्थान–
● सतानंद झंवर ● गणेशराम देवकिसन झंवर ● माहेश्वरी एण्ड माहेश्वरी ● गोवर्धन लाल श्याम सुन्दर झंवर ● सुनील ब्रदर्स ● झंवर फेब्रिक्स
तार का पता : 'गणेश को' दूरध्वनि–६४३०१, ५६०२६ कार्यालय ६६४२२, ५५७७०, ५४०२९ निवास

७५वीं वर्षगाँठ पर श्रीचरणों में शतशत नमन

बिहारीलाल द्वारकादास लीला

८०, धानमण्डी, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

रामकिशन लीला एण्ड कं०
श्रीगङ्गानगर (राज०)

लीला टेक्सटाइल्स
जोधपुर (राज०)

(फोन : दुकान—२६३ पी. पी., निवास : ९४७)

७५वें प्राकट्य दिवस पर पूज्य श्री के चरणों में साष्टांग प्रणाम

—बनवारीलाल लीला

लीला ट्रेडिंग कम्पनी

८०, धानमण्डी, श्रीगंगानगर

(फोन : दुकान १२८६ पी० पी०, निवास—९६७)

लीला आटोमोबाइल्स
श्रीगङ्गानगर (राज०)

लीला टेक्सटाइल्स
जोधपुर (राज०)

विश्ववंदनीय परमपूज्य श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के चरणों में शतत प्रणाम

—डा० दीनानाथ महता

ओमप्रकाश सुरेन्द्रकुमार

अंग्रेजी व देशी दवा विक्रेता एवं मनीहारी विक्रेता

पो० नोहर (राज०)

फोन : ९९

With Best Compliments :

KAPIL PLYWOOD COMPANY

Dealers & Stockists in :

Plywood, Hardboard, Teak Ply, Block Board, Sunmica, Aluminium
Sheets, Rexin, Glue, Wax, etc.

164, Chatta Bhawani Shanker
Fatehpur, DELHI—110006

Phone : 250166]

वेदों में अवतार कथाएँ

• श्री गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी •

वैदिकों के मतानुसार वेद अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक भगवान के निश्वास से उद्भूत है और "भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति" महर्षि मनु के उक्त वचनानुसार भूत,वर्तमान तथा भविष्यत् कालिक सब कुछ वेदों द्वारा सिद्ध होता है।

यद्यपि मीमांसकों की दृष्टि में वेदों में देहधारी प्राणियों के ऐतिहासिक वर्णनों का सर्वथा अभाव है। उनके मत से वशिष्ठ-विश्वामित्रादि वेद दृष्ट शब्द समूह तन्नामधारी किसी महर्षि विशेष के सूचक नहीं अपितु वे प्रसंगानुसार यौगिक स्वार्थों के परिचायक हैं। अतः वे सब—

'परन्तु श्रुति सामान्यमात्रम्' न्याय के अनुसार श्रवण मात्र में ही ऐतिहासिक व्यक्तियों के नामों जैसे जान पड़ते हैं।

इन नामों के निर्वचन में प्राण विद्या के प्रसंग में ऐतरेय आरण्यक में लिखा गया है "सर्वं पाप्मनोऽजायत इति अत्रिः", विश्वंमित्रः यस्य असौ विश्वामित्रः आदि आदि।

मीमांसकों के मत में न केवल वैदिक तात्पर्यार्थ सत्ता ही अनादि निधन नित्य है अपितु मंत्र निष्ठ वाक्य निष्ठ और पद निष्ठ आक्षरिक आनुपूर्वी भी अनादि निधन नित्य है। अतः वेदों में उत्पत्ति-विनाशशील एककालिक व्यक्तियों से सम्बद्ध इतिवृत्त की कल्पना को स्थान नहीं है। यास्क कहते हैं 'सर्वाण्यपि नामानि आख्यात जानि' अर्थात् वेदों में प्रयुक्त होनेवाले सभी नाम तत्तद् धातुओं द्वारा ही निष्पन्न हैं, रूढ़ नहीं हैं। अतः वे सभी यौगिक अर्थों के द्योतक हैं, डित्थ डवित्थ की भाँति निरर्थक नहीं हैं। इस मान्यता के अनुसार उन्होंने वेद मंत्र की अधिभौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक त्रिविध व्याख्या की है परन्तु इसके साथ ही यास्क ने ऐतिहासिक पक्ष का भी समर्थन किया है।

तत्को वृत्रोमेघ इति नैरुक्ता त्वाष्ट्रो असुर इति ऐतिहासिका (निरुक्त, २१.१६२)।

यही सायणाचार्य भी 'अत्रेतिहासमाचक्षते' कहते हुए अनेक इतिहासों को उद्धृत करते हैं।

इस प्रकार गम्भीर विचारकों को पढ़ने से यह विदित होता है कि वेदों में इतिहास तो है परन्तु वह मानव कोटि के ऊपर त्रिकालावाधित नित्य इतिहास है और हमारी दृष्टि से मीमांसकों के इस कथन का कि वेदों में इतिहास नहीं, इसका भी यही तात्पर्य है कि उनमें मानव कोटि के व्यक्तियों का इतिहास नहीं है।

फिर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि वेदों में नित्य इतिहास है तो सायण, उव्वट, महीधर आदि प्राचीन वेद भाष्यकारों ने अपने भाष्यों का उल्लेख क्यों नहीं किया?

परन्तु सायणादि के भाष्य का गहन अध्ययन करने पर हमको उक्त प्रश्न का समुचित उत्तर प्राप्त हो जाता है।

सायण ने ऋग्वेद के १.२२.१७ के 'इदं विष्णुर्विचक्रमे०' अथर्ववेद के १२.१.४२ के 'वराहेण पृथिवी संविदाना', तैत्तिरीय उपनिषद १.१.३१ के 'वज्र नखाय विद्महे' तथा 'प्रोवाच रामो भार्गवेयो' (ऐतरिय, ७.५.३) की व्याख्या में क्रमशः. वराह, वामन, नृसिंह और परशुराम अवतारों का उल्लेख किया है। अतः स्पष्ट है कि वेदों में अवतारों की कथाएँ हैं, प्रस्तुत लेख में हम कुछ उद्धरण उपस्थित कर रहे हैं। महाभारत आदि अनेक ग्रंथों की संस्कृत में प्रौढ़ टीका करने वाले पंडित श्री नीलकण्ठ ने अपनी 'मंत्र रामायण' में तथा पूज्यपाद स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज (जिनकी ७५वीं जन्मतिथि पर यह विशेषांक निकल रहा है) की भी यही मान्यता है।

विष्णु का रामरूप में अवतार का सङ्केतवेद में प्राप्त होता है—

'विष्णुरित्था परमस्य विद्वान जातो बृहन्नभियातितृतीयम्।'

—ऋग्वेद १०।१।३।

अर्थात्—परम पुरुष सर्वज्ञ विष्णु भगवान् ही इस प्रकार राम रूप में अवतरित हुए जो ब्रह्म होते हुए भी देहधारी बन गये।

तीन माताओं व तीन प्रकार के पिता (पालक, उपनेता व शिक्षक) के वर्णनपरक मन्त्र में रामकथा का बीज मिलता है—

'तिस्रो मातृस्त्रीन् पितृन् विभ्रदेकः ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमम वग्लापयन्ति।'

—ऋग्वेद, १।१६४।१०।

कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी तीन माताएँ एवं जन्मदाता दशरथ (पालक) विद्या गुरु विश्वामित्र, उपनेता वशिष्ठ तीन ही जिनके पालक थे, वह अद्वितीय रामावतार सर्वोपरि विराजमान थे. उनसे किसी भी व्यक्ति को तनिक भी विक्षोभ नहीं था।

श्री राधाकृष्ण के अवतार की कथा का भी मूल निम्नलिखित मन्त्र में है—

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।
विभूतिरस्तु सूनृता॥—ऋ. १। अ. ६।३०।५।

अर्थात्—हे राधापते (परमेश्वर=घनश्याम) जिसके मुख में आपकी स्तुतिमयी वाणी है उनकी स्तुतियों से प्राप्त होनेवाले तुम उसके घर में ऐश्वर्य भर दो। उसकी वाणी मधुर और सत्य हो।

वामनावतार की कथा इस रूप में निर्दिष्ट है—

'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थ विचक्रमाणस्त्रेधोरुगाय॥'—यजुर्वेद, ५।१८।

परमपूज्य श्री स्वामी

करपात्रीजी महाराज के

श्रीचरणों में सादर नमन

सागरमल राजकुमार

रायपुर–४९२००१ (म० प्र०)

सभी प्रकार के उच्चकोटि की दालों के निर्माता तथा विक्रेता

फोन : { कार्यालय : २५३५९
निवास : २६०७८

तार : "आकाशदीप"

धर्मसम्राट् श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के
चरणों में सतत् प्रणाम

गोविन्दराम गनेशराम

किराना एवं कपड़े के व्यापारी

मु० मड़ेली, जि० रायपुर (म०प्र०)

धर्मसंरक्षक यतिचक्रचूड़ामणि

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम

मेसर्स हरीशकुमार गांधी

रासायनिक खाद एवं कृषि औषधियों के विक्रेता

मु० मड़ेली, ब्रांच–कुरुद, जि०–रायपुर

परम श्रद्धेय सनातन धर्म सम्राट्

श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज के

श्रीचरणों में दण्डवत्

मोहनलाल गांधी

मु०–मड़ेली, जि०–रायपुर (म० प्र०)

अर्थात्—मैं विष्णु के पराक्रम का वर्णन करता हूँ। उन्होंने तीन पैरों में लोकों को नाप लिया और आकाश को स्थिर किया।

सामवेद में सीता की अग्नि परीक्षा की कथा भी आयी है—

सुप्रकेतैर्द्युभिरग्नि वितिष्ठन्नुपद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्।

—सामवेद उत्तरार्चिक, १५।३।

अर्थात्—दिव्य तेज से उपलक्षित सीता को लेकर जाज्वल्यमान अग्निदेव राम भगवान् के समक्ष उपस्थित हुए।

मत्स्यावतार की कथा का वीज इस प्रकार है—

नमस्ते जायमानायै जाताया उ त ते नमः।
वालेभ्यः शफेभ्यो रुपायाघ्न्ये ते नमः॥

—अथर्ववेद, १०।१०।१।

अर्थात्—तुझ प्रकट होती हुई को नमस्कार और तुझ प्रकट हो चुकी को नमस्कार है। हे न मारनेवाली बाल मछली तेरे स्वरूप (फैलाव) को नमस्कार है।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि वेदों में अवतारों की कथाएँ वेद में ही निर्दिष्ट हैं।

* * *

हीरा मोती
दुकान
नं. १८
हथुआ मार्केट
वाराणसी
आकर्षक
साड़ियाँ
शर्टिंग
सूटिंग
ड्रेसमैटेरियल

भारत में वैदिक शासन प्रणाली

• पं० नन्दकिशोर शर्मा शास्त्री •

आयद् वामीय चक्षसा मित्र वयं च सूरयः
व्यचिष्टे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये
—ऋग्वेद ।५।६६।६।

सर्वजन हिताय की पुणीत भावना से (व्यचिष्टे बहुपाय्ये)—प्रत्येक को सुख-सुविधा प्रदान करने के लिए एवं अनेकों की निष्कपट सम्मति से निर्णय लिया जाकर और उसका पालन उन शाषकों (राजाओं) द्वारा जिनका दृष्टिकोण स्वार्थपरक न होकर व्यापक है, तथा (मित्र-तन्मित्र-मापदि सुखे च सम क्रियं यत्) अर्थात् आपत्ति और सुख प्रत्येक परिस्थिति में सहायक होते हैं ऐसे—(सूरयः)—योग्य एवं कर्मठ विद्वानों के पथ-प्रदर्शन में—(वयं स्वराज्ये आयतेमहि)—हम सब ऐसे आदर्श एवं श्रेष्ठतम राज्य में मिलकर सभी के कल्याण के लिए सदैव प्रयत्न करते रहें।

और यह तो सर्व विदित ही है कि इस पुण्य भू-भारत के वासी अपने सनातन धर्म को श्रुति स्मृति पुराणोक्त धर्म ही मानते हैं। श्रुति का अर्थ ही वेद है तथा संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् भी श्रुति अर्थात् वेदान्तर्गत ही है।

आज भी हम सनातन धर्मावलम्बी भारतवासी अपने इष्ट देवादि की आराधना में नित्य ही वैदिक मंत्र पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुए अपनी गौरवमयी शासन-व्यवस्था का इन शब्दों में स्मरण करते हैं।

ऊँ। स्वस्ति। साम्राज्यं, भौज्यं, स्वाराज्यं, वैराज्यं, पारमेष्ठयं राज्यं, महाराज्यं, आधिपत्यमयं, समन्तपर्यायीस्यात्, आदि।

वेदादि में हमारे यहाँ जो उपर्युक्त आठ प्रकार के राज्यों अर्थात् शासन व्यवस्था के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है उनके स्वरूप पर भी हम संक्षेप में विचार करें।

(१) साम्राज्य—(शासन व्यवस्था)

इस शासन व्यवस्था में राज्य सार्वभौम शक्ति से युक्त हुआ करता था लेकिन इसकी मुख्य विशेषता यह थी कि इस शासन प्रणाली के अन्तर्गत विजयी राष्ट्र विजित राष्ट्र पर अत्याचार एवं अनाचार कर के सुखोपभोग के लिए धन-सम्पदादि नहीं लूटा करता था, बल्कि विजयी राष्ट्र अपना आर्ष विधान विजित राष्ट्र को सौंप कर, उसका पालन करने का निर्देश देते हुए उसको अथवा उसके वंशजों को राष्ट्रभार भी दे दिया करते थे।

इस साम्राज्य शासन प्रणाली का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया—भगवान श्रीराम ने लङ्का को जीतकर—लंकेश रावण के ही भाई विभीषण को आर्ष विधान के साथ राज्य भार सौंपकर।

(२) भौज्य—(राज्यशासन व्यवस्था)

इस शासन प्रणाली के दो रूपों का पता लगता है।

(अ) प्रथम तो वह राज्य, भौज्य राज्य कहलाता था, जिस राज्य की सीमा मनुष्य के द्वारा नहीं बल्कि प्रकृति ने सागर, नदी, पर्वत आदि के द्वारा निर्मित की हो और उस भू-भाग पर किया जानेवाला शासन—भौज्य राज्य कहलाता था, परन्तु इस राज्य की सीमा हमेशा छोटी ही हुआ करती थी।

(ब) दूसरा वह राज्य भी भौज्य राज्य कहलाता था, जिस राज्य की जनता को अन्न, वस्त्र, आवास, शिक्षा स्वास्थ्य एवं सुरक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व राजा (शासक) पर रहता था तथा जनता राजाज्ञा का पालन प्रत्येक परिस्थिति में करती थी। और यह राज्य भी छोटा ही हुआ करता था।

(३) स्वाराज्य—(शासन व्यवस्था)

स्वाराज्य और स्वराज्य में बाह्यदृष्टि से मात्र स्वरभेद है, परन्तु शासन व्यवस्थादि की दृष्टि से बड़ा अन्तर दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि एक में शासक स्वयं को धर्माचरणों से नियंत्रितादि करके जनहित के लिए राज्य करते थे, तो दूसरे में राजा (शासक) स्वयं को पूर्व स्वतन्त्र रखकर शासितों पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हुए राज्य करते थे।

(४) वैराज्यं—(शासन व्यवस्था)

राज्यहीनं वैराज्यं—अर्थात् इस शासन प्रणाली में राजा, शासक या अध्यक्ष आदि नाम का कोई पद ही नहीं होता था। उस राज्य क्षेत्र की जनता अपने सद् कर्तव्यों का पालन स्वयं ही इस ढंग से करती थी कि उससे किसी दूसरी शक्ति को बलपूर्वक सद्कर्तव्यों का पालन करावे—इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी।

(५) पारमेष्ठ्यं राज्यं—(शासन व्यवस्था)

पारमेष्ठ्य का अर्थ है—सर्वोच्च उपाधि। इसलिए पारमेष्ठ्य राज्य का सीधा-सा अर्थ हुआ सर्वोच्च उपाधि वाले अर्थात् सर्वशक्तिमान ईश्वर का राज्य।

और इस राज्य शासन-प्रणाली की यह विशेषता भी थी कि एक ओर जहाँ जनता राजा की आज्ञा का पालन ईश्वर की आज्ञा की भाँति करती थी, वहीं दूसरी ओर राजा (शासक) भी अपनी जनता के हित में पिता की भाँति अहर्निश कर्तव्यरत रहते थे।

(६) महाराज्य—(शासन व्यवस्था)

इस शासन प्रणाली में—अनेक राज्य अपने-अपने स्वत्त्व को यथावत रखते हुए मानवीय धरातल पर सर्व-हितकारी आर्ष विधान के अन्तर्गत

परस्पर सहयोग की पुनीत भावना से एकत्रित होकर आदर्श शासन व्यवस्था में अपनी श्रद्धा व्यक्त करते थे। इसी विश्व हितकारी सामूहिक शासन-व्यवस्था को ही महाराज्य कहा जाता था।

(७) आधिपत्यमयं—(शासन व्यवस्था)

इस राज्य (शासन) प्रणाली के अन्तर्गत मुख्य रूप से दो शासक ही सम्पूर्ण राज्य पर शासन करते थे। प्रधान शासक राज्यपति और दूसरा शासक राज्य अधिपति कहलाता था तथा दोनों ही शासक जनता के कल्याणार्थ स्वकर्तव्यों का पालन प्रतिस्पर्धा के व्रत के साथ करते से प्रतीत होते थे।

(८) समन्त पर्यायी—(राज्यशासन व्यवस्था)

इस राज्य शासन प्रणाली में भी अनेक सामन्त मिलकर विचार-विमर्श के माध्यम से सुसंस्कृत शासन विधान के अन्तर्गत एक विशाल भू-भाग पर राज्य करते थे। इस शासन प्रणाली की यह विशेषता थी कि अपराधी चाहे छोटा हो या बड़े-से-बड़ा सामन्त ही क्यों न हो, परन्तु यदि अपराध किया है तो उसे भी दण्ड व्यवस्था की गई थी। और इसके साथ ही वैदिक ऋषियों की राज्य कल्पना में तो—

'सार्वभौमः सार्वायुषः आन्ताद् आपरार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्तायाः एकराड्'—इति।

अर्थात् समुद्र मेखला पर्यन्त जितना भी भू-भाग है उस सम्पूर्ण भू-भाग पर पूर्व शक्तिशाली एवं सर्वहितकारी एक ही राजा का राज्य, वैदिक प्रणाली अर्थात् श्रुति स्मृति प्रणाली के अनुसार चिरकाल तक रहे।

कविकुल दिवाकर भक्त शिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने भी मानव की सर्वतोमुखी और सच्ची सुख शान्ति के लिए वेदशास्त्रादि के अनुशासन को ही सर्वोत्तम मानते हुए उद्घोषित किया है कि—

वरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥

परन्तु उन्हीं महाकवि के शब्दों में सखेद यह भी कहना पड़ रहा है कि आज—

वरन धर्म नहीं आश्रम चारी।
श्रुति विरोध रत सब नर नारी॥

फोटो स्टेट कापी
निम्न स्थानों से प्राप्त करें
फोटो स्टेट सेन्टर
शिवाला, वाराणसी
फोन : ६४९९२
फोटो स्टेट सेन्टर
दीवानी कचहरी वाराणसी के सामने कटरे में
फोन : ६३९९२
साइक्लोस्टाइल—अमोनिया प्रिण्ट्स की भी व्यवस्था है
संचालक :— अग्रवाल रेडियो शिवाला * वाराणसी
फोन : ६२९९२ * ६५९९२ * ६४९९२ * ६७११७

सनातनधर्म संरक्षक यतिचक्रचूड़ामणि

श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज की ७५ वीं वर्षगाँठ पर

परमेश्वर से दीर्घायु की कामना सहित

शतशत नमन

मेसर्स महावीर ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन

फाफाडीह, रायपुर (म० प्र०)

साष्टांग प्रणाम

—राजमल सर्राफ

फर्म :—

श्रीगुलाबचंद्र राजमल अग्रवाल सर्राफ

सर्राफा बाजार, विदिशा (म० प्र०)

श्रीकृष्ण-कालिग्यै नमः

श्री विद्यापीठ व्यवस्था समिति

(प्रस्तावित योजना)

श्री विद्यादेवी दरबार व्यवस्था समिति

(वर्तमान में)

३८, श्रीरामपुरा (इब्राहीमपुरा), भोपाल

संस्थापक, संचालक, अधिष्ठाता :—

पं० देवेन्द्रकुमार पाठक

धर्मसंघ प्रचार मंत्री, धर्मसंघ

भोपाल ब्राह्मण परिषद्

धर्माधिकारी कार्यालय श्रीयंत्र, (चल व अचल) श्री विद्या व दस महाविद्याओं के फोटो व पूजा सम्बन्धी सामग्री-साहित्य मिलने का स्थान

कोटिशः प्रणाम

ब्रह्मलीन श्रीस्वामी आत्मदेवाश्रम

के विदिशापीठ बीजमठ विदिशा

के संरक्षक

श्री आत्मानन्द जी

विदिशा (म० प्र०)

वैदिक धर्म का स्वरूप

● श्री स्वामी वेदान्ती जी महाराज ●

सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमात्मा अनादि जीवों के कर्मों के अनुसार सृष्टि रचकर उनके कल्याणार्थ अनादि वेदों को व्यक्त करते हैं। कहना न होगा कि जैसे जागने और सोने की परम्परा अनादि है, वैसे ही सृष्टि और प्रलय की परम्परा भी अनादि ही है। जैसे जागने के उपरान्त प्राणियों की चेष्टाएँ उन चेष्टाओं से सम्बद्ध होती हैं, जो सोने के पहले थीं, वैसे ही सृष्टि के बाद की समस्त जीवचेष्टाएँ प्रलय से प्रथम की चेष्टाओं से असम्बद्ध नहीं रहतीं। किसी भी राजा या नियन्ता की प्रजाओं या नियम्यों पर शासन करने के लिए एक शासनपद्धति अपेक्षित होती है। कालपरिच्छिन्न सादि राजा की प्रजाशासन (निग्रहानुग्रह)-पद्धति कालपरिच्छिन्न ही होती है। परन्तु जहाँ सनातन, अनादि परमेश्वर को अनादि जीवरूप प्रजा पर शासन करना है, वहाँ तो शासनपद्धति भी सनातन एवं अनादि ही होनी चाहिए। अल्पज्ञ राजा को समस्त देश, काल, परिस्थितियों का बोध नहीं रहता, अतः जैसे जैसे ज्ञान होता जाता है, वैसे-वैसे उसके नियमों में परिवर्त्तन होता है। परन्तु सर्वज्ञ, सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् को तो समस्त देश, काल, परिस्थितियों का विज्ञान रहता है, अतः उनकी शासन या निग्रहानुग्रह-पद्धति अभ्रान्त और अपरिवर्त्तनीय होनी ही चाहिए। वही ईश्वरीय शासनपद्धति हमारे वेद हैं। उनमें भिन्न-भिन्न देश, काल, परिस्थितियों का स्वयं ध्यान रखा गया है। उसी की सीमा के भीतर ही महर्षियों की भिन्न-भिन्न स्मृतियाँ निर्मित हुई हैं। वेद ईश्वर के समान ही अपौरुषेय और अनादि हैं। जैसे प्राणी का प्राण के साथ अविच्छेद्य सम्बन्ध है, वैसे ही परमेश्वर का उसके निःश्वासभूत वेद के साथ सम्बन्ध है। सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की सर्वज्ञता, सर्मशक्तिमत्ता का भी वेदों के निर्माण में नहीं, किन्तु वेदार्थ-विचार में ही उपयोग होता है। वेद निःश्वास की तरह प्रयत्न-निरपेक्ष और अकृत्रिम हैं। वे पौरुषेय अर्थात् स्वतन्त्र पुरुषबुद्धिप्रसूत नहीं हैं। अतएव पुरुषाश्रित भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा आदि दोषों से दूषित नहीं, अतएव अप्रामाण्य-शङ्का-कलङ्क का उनमें स्पर्श भी नहीं है। इसीलिए उनका स्वतन्त्र प्रामाण्य है।

मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेदों में भले ही अनेकों लौकिक, पारलौकिक आख्यानों तथा विविध आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तत्त्वों का वर्णन हो, फिर भी उनका अवान्तर तात्पर्य्य कर्म तथा उपासनाओं में और महातात्पर्य्य सर्वाधिष्ठान शुद्ध परब्रह्म परमेश्वर में ही है। आनुषङ्गिकरूप से नैतिक, आर्थिक, विविध लौकिक-पारलौकिक कर्मों, इतिहासों, आख्यानों एवं आविष्कारों का अवगम भी उनसे अवश्य ही होता है। परन्तु वही परमार्थतः वेदार्थ है यह मनु, वशिष्ठ, व्यास, जैमिनि, कात्यायन, शबर, शङ्कर, कुमारिल, मण्डन, वाचस्पति, सायणादि की वैदिकी दृष्टि से अत्यन्त विरुद्ध है। वस्तुतः प्राणियों के जीवन के अवान्तर उद्देश्य और महोद्देश्य की पूर्ति में जो जो भी उपाय कर्म, ज्ञानादि आवश्यक हैं, उन सभी का प्रतिपादन वेदों में मिल सकता है। विशिष्ट प्राणी को आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्तिस्वरूप मोक्ष या भगवत्प्राप्ति की अपेक्षा होती है। साधारण प्राणी को विविध प्रकार के वैषयिक सुख और उसके साधनों की अपेक्षा होती है। इसी को धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप चार पुरुषार्थ कह सकते हैं। लौकिक वैषयिक सुखभोग और उसकी विभिन्न सामग्रियाँ अर्थ और काम में आ जाती हैं। आधुनिक भौतिक विज्ञान और उसकी चमत्कृतियाँ भी अर्थ और काम के भीतर आ जाती हैं। इन्हीं के लिए नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद, रसायनशास्त्र, गान्धर्वशास्त्र, सङ्गीत, कामशास्त्र आदि अनेक शास्त्र आवश्यक होते हैं। इन सब का उद्गम वेदों से ही है। लौकिक विविध विचित्र आनन्दों एवं आनन्द सामग्रियों में भी धर्म अपेक्षित होता है। इसके अतिरिक्त धर्म के ही प्रभाव से विविध लौकिक उपाय और उनकी सफलता प्राप्त होती है। परन्तु पारलौकिक सुख और तत्साधनीभूत धर्म, मोक्ष और तदुपयुक्त निष्काम कर्म, उपासनाएँ, तत्त्वज्ञान आदि का, जिनमें कि विशेष रूप से वेदों का तात्पर्य है, अवगम तो वेदों से ही तोता है। अतः सनातन परमेश्वर के सनातन अंशभूत जीवों को सनातन परमपदप्राप्ति के लिए वेद-प्रतिपादित सनातन मार्ग ही सनातन 'वैदिक धर्म' है।

सर्वाधिष्ठान, स्वप्रकाश, परमानन्दघन भगवान् का ही अंशभूत चेतन, अमल, सहज सुखस्वरूप जीवात्मा अनादि काल से मल, विक्षेप और आवरणरूप दोषों से संसृष्ट होकर अनेकानर्थपरिप्लुत विविध योनियों में परिभ्रमण करता है। जन्मजन्मान्तरों के सुकृतसञ्चय से अनुकूल होकर भगवान् जब मानवजन्म प्रदान करते हैं, तभी उसे आत्मोद्धार की सुविधा होती

विश्ववंदनीय श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज के ७५ वें जन्म दिवस पर

शतशत प्रणाम

रमा इंडस्ट्रीज

बी ३१, औद्योगिक आस्थान

जोधपुर - ३४२००३

फोन : कार्यालय–२४२७५ निवास : २५९००
२१२०८

शाखा–७१, वालकृष्ण निवास, तीसरा माला
२, पंजारा पोल लेन, बंबई–४
फोन : ३८३०२१

Dealers in Finest Quality :
S. S. Sheets Rolling in Hot & Cold Press
Tele : "LORD RAMA"

कोटिशः नमन

– रामनिवास अग्रवाल

अग्रवाल लॉज

(सुखद आवासीय स्थान)

स्टेशन रोड, जोधपुर

साष्टांग प्रणाम

– बजरंगलाल लीला

लीला टेक्सटाइल्स

२४, लाइट इंडस्ट्रीज एरिया

I. T. I. के सामने, जोधपुर (राज०)

दैनन्दिन नमन

– राधेश्याम हिसारिया

हिसारिया ब्रदर्स

हनुमानगढ़ जंक्शन

(राजस्थान)

है। उसमें वैदिकधर्म के अनुकूल वातावरण, देश, काल, सत्पुरुष-समागम, सच्छास्त्र-सम्बन्ध अधिक सहायक होते हैं। वेदों का कहना है कि मातृमान्, पितृमान्, आचार्य्यवान् पुरुष ही वैदिक धर्मरहस्य को जान सकता है—"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।"

अर्थात् प्रशस्त आचार-विचारवाली माता का सद्भावना, आचरण एवं उपदेशों से शिक्षित तथा पिता के आचारों एवं उपदेशों से विनीत, आचार्य्यवान् पुरुष ही तत्त्व को जान सकता है। इन्हीं सब बातों का ध्यान रखकर वैदिक लोग गर्भाधान से ही सन्तान का संस्कार प्रारम्भ करते हैं। सद्धर्म कर्मपरिनिष्ठित माता-पिता द्वारा सद्भावना के साथ विधिवत् गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, चौलकर्म, मौञ्जी-बन्धनादि संस्कारों से सन्तान के शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण वैसे ही पवित्र होते हैं, जैसे खान से उत्पन्न मणि संस्कार द्वारा निर्मल होकर दीप्त होती है। उसमें भी अधिक प्रभाव माता-पिता के आचरणों और भावनाओं का पड़ता है। इस तरह प्रशस्त माता-पिता की शिक्षा से शिक्षित होकर पुनः प्रशस्त आचार्य्य से उपनीत होकर गुरु और अग्नि की शुश्रूषा, भूमिशयन, ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करता हुआ बालक शौच, आचार आदि शिक्षणपूर्वक चारों पुरुषार्थों के परमकारण दिव्य वेदादि सच्छास्त्रों के जानने में प्रवृत्त होता है। पवित्र आचार-विचारसम्पन्न सहज कोमल हृदय में दिव्य, अभ्रान्त ज्ञान के सुस्थिर संस्कार होने पर सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति में सुविधा मिलती है। सद्बुद्धि, सदिच्छा एवं सत्प्रयत्नों से प्राणी दुर्गम से दुर्गम कार्यों को कर सकता है। कहा जाता है कि प्राणी अपने भाग्य का विधाता स्वयं हो सकता है। जैसे पुरुषों का सहयोग, जैसे श्रद्धेयों का सेवन किया जाता है, श्रद्धासम्पन्न पिघली हुई लाख की तरह कोमल चित्त में वैसी ही ज्ञानभावना बनती है। जैसी ज्ञानभावना होती है, वैसी ही प्राणी की इच्छा होती है। इच्छा के अनुसार उत्कट उत्कण्ठापूर्वक प्रयत्न से वैसा ही हो सकता है। परन्तु इसके लिए श्रद्धेय उत्तम पुरुषों के समागम, सेवन, सदिच्छा और सत्प्रयत्न की अपेक्षा है। उससे ही राष्ट्र में सौमनस्य, सङ्घटन आदि सब कुछ सम्पन्न होता है और समाज, राष्ट्र एवं विश्व में सर्वत्र अभ्युदय और शांति स्थापित होती है।

विधिपूर्वक साङ्ग वेदादि शास्त्रों का ग्रहण, धारण, अर्थज्ञान सम्पादन करने के उपरान्त प्राणी को सर्वबन्धनविनिर्मुक्त होकर सर्वान्तरात्मा भगवान के मङ्गलमय श्रीअङ्क में समासीन होने के लिए अपने आपको शुद्ध करना चाहिए। परन्तु इसमें मल विक्षेप और आवरण प्रतिबन्धक हैं। कर्मकाण्ड से मल की, उपासनाकाण्ड से विक्षेप की और ज्ञानकाण्ड से आवरण की निबृत्ति होती है। इसलिए प्रथम शास्त्रानुसार विवाह करके अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, ज्योतिष्टोम आदि कर्मकलापों द्वारा पितृदेवादिरूप में अनेकधा विराजमान भगवान् की आराधना करके दिव्य पुण्य या अदृष्टों से अपने पापों का प्रक्षालन करना चाहिए। इन कर्मों का कामनासहित अनुष्ठान करने से पशु, पुत्र, धन, ग्राम, स्वराज्य, स्वर्ग आदि फलों की प्राप्ति होती है। निष्काम भाव से, भगवच्चरण-पङ्कजसमर्पण बुद्धि से, उन्हीं कर्मों का अनुष्ठान करने से अन्तःशुद्धि और ज्ञानादिक्रमेण भगवत्प्राप्ति दिव्य महाफल प्राप्त होता है। फिर भी जैसे गुरुच-पान का रोगवृत्ति ही मुख्य फल है, वैसे ही अन्तःकरणशुद्धि,ज्ञानक्रमेण भगवत्प्राप्ति ही कर्मों का मुख्य फल है। इतर फल तो वैसे ही केवल रोचनार्थ हैं, जैसे कड़ुआ गुरुच पान कराने के लिए कल्याणमयी, करुणामयी पुत्रवत्सला जननी अपने शिशु को लड्डू का प्रलोभन देती है और पी लेने के बाद मोदक दे भी देती है। वह अदीर्घदर्शी बालक गुरुचपान का फल लड्डू समझता है, परन्तु माता तो रोगनिवृत्ति को ही मुख्य समझती है। सर्वदृश्यविवर्जित स्वप्रकाश, परमानन्दघन भगवान् का उपलम्भ (प्राप्ति) देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार के अत्यन्त प्रशान्त, निर्मल, निर्वृत्तिक होने पर ही होता है। परन्तु प्रथम उनकी निर्वृत्तिकता होनी सहसा असम्भव है, अतः पहले सात्विक, सरल प्रवृत्तियों का अवलम्बन करके राजसी, तामसी उच्छृङ्खल प्रवृत्तियों का रोकना अपेक्षित होता है। अनन्तर अन्तरङ्ग-अन्तरङ्ग सात्विकी प्रवृत्तियों का भी निरोध किया जाता है। अन्त में सर्वान्तिरङ्ग मन, बुद्धि की सात्विकी प्रवृत्ति "विषं विषान्तरं जरयति, स्वयमपि जीर्य्यति" (एक विष दूसरे विष के प्रभाव को शान्तकर स्वयं शान्त हो जाता है) इत्यादि न्याय से स्वपरविरोधिनी अन्तिम चरमावृत्ति से शान्त होकर पूर्ण निर्वृत्तिकता होने पर प्रत्यक्चैतन्याभिन्न, स्वप्रकाश परमात्म-स्वरूप की अवगति और तदात्मना अवस्थिति होती है। यही श्रौतस्मार्त्तशृङ्खलानिबद्ध देहेन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कारादि की चेष्टाओं से अर्थात् श्रौतस्मार्त्त काम, कर्मों एवं ज्ञानों से, स्वाभाविक काम-कर्म ज्ञानरूप मृत्यु का अतितरण है—

"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा।"

जिस समय प्राणी की समस्त चेष्टाएँ शास्त्र परतन्त्र होने लगती हैं, उस समय उच्छृङ्खल पाशविकी चेष्टाओं का लोप होता ही है। वैदिक सिद्धान्त में स्वप्रकाश परमानन्द भगवान् की प्राप्ति मुख्य उद्देश्य है। उसकी पूर्ति के लिए सामाजिक, नैतिक, आर्थिक विविध कर्मों की अपेक्षा होती है। यदि भगवान् का स्मरण करते हुए भगवदाराधनार्थ भगवत्समर्पणबुद्धि से लौकिक, पारलौकिक सभी कर्मों का अनुष्ठान किया जायगा, तो अन्तःशुद्धिक्रमेण उपासना का भाव बढ़ेगा और फिर कर्माङ्ग उपासनाओं में या उपासनाप्रधान कर्मों में प्रवृत्ति होगी। उपासना में ही मूर्त्तिपूजा, सगुण, साकार राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, शक्ति, गणपति, सूर्य्य आदि

सनातन धर्मध्वज उन्नायक धर्मसम्राट् श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के
७५वें जन्मदिवस के शुभ अवसर पर

शतशः नमन

—शंकरलाल शारदा

घेरूलाल बालचन्द शारदा

भटिण्डा (पंजाब)

कोटिशः प्रणाम

गोपाल ब्रदर्स

१८, धानमण्डी

श्रीगंगानगर (राजस्थान)

दण्डवत्–प्रणाम

—वैद्य सूर्यकांत शर्मा

दिवाकर औषधालय

स्वामी दयानंद मार्ग

श्रीगंगानगर (राजस्थान)

शतशत नमन

विनोद एण्ड कम्पनी

जनरल मर्चेण्ट एण्ड कमीशन एजेंट

नोहरा नं० १०७, धानमण्डी

श्रीगंगानगर, (राजस्थान)

फोन : दुकान–९९६ निवास : ११९६

◆

दुर्गा दाल एण्ड जनरल मिल

१६, औद्योगिक आस्थान

श्रीगंगानगर (राजस्थान)

फोन : फैक्ट्री–४७१ पी. पी. निवास : ११९६

पञ्चदेवताओं की आराधनाएँ अन्तर्भूत हो जाती हैं। इन उपासनाओं से अन्तःकरण की निर्मलता होती है और विक्षेप, चञ्चलता निवृत्त होती है। भगवान् के विशेषानुग्रह से तत्त्व-साक्षात्कार एवं आवरणनिवृत्ति में बड़ी ही सुविधा होती है। भगवान् के परमाकर्षक, मधुर, मनोहर, मङ्गलमय स्वरूप में सहज ही मन की एकाग्रता हो जाती है। इसके अतिरिक्त सगुण-निराकार एवं निर्गुण-निराकार की भी उपासनाएँ होती हैं। उनसे तत्त्वसाक्षात्कार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। इस तरह कर्म एवं उपासना से मल और विक्षेप मिटा देने के अनन्तर आवरण मिटाने के लिए ज्ञान की अपेक्षा होती है। नित्यानित्य-वस्तु-विवेकी, शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु, श्रद्धावान्, समाहित एवं तीव्रमुमुक्षासम्पन्न होकर वेदान्तों का श्रवण करना चाहिए। इसके अनन्तर तर्कशास्त्र की सहायता से मनन और योगशास्त्र की सहायता से निदिध्यासन करके तत्त्वसाक्षात्कार द्वारा आवरणभङ्ग करना चाहिए। बस फिर तो वह प्रत्यक्चैतन्याभिन्न शुद्ध ब्रह्मात्मभाव में ही स्थित होता है और सब का अन्तरात्मा होकर सब को अपने ही में देखता है। उसका व्यष्टिभाव—परिच्छिन्नता का अभिमान—मिट जाता है। वह सब का और सब उसके हो जाते हैं। ज्ञानियों का 'सर्वभूतहिते रत' होना स्वाभाविक लक्षण है।

जगत् में एक दूसरे के साथ अनिवार्य सम्बन्ध एवं उपकार्य्य-उपकारकभाव है। यह कोई भी नहीं कह सकता कि हम स्वतंत्र हैं, हमें किसी की अपेक्षा नहीं है। भगवान् के आकाश, वायु, तेज, जल, भूमि, अन्न के विना किसी का भी काम नहीं चल सकता। इस तरह प्राणी पर अनेकों के उपकार का ऋण रहता है। समस्त विश्व के प्रति जैसे परमेश्वर की कारणता है, वैसे ही शुभाशुभ कर्मों एवं अदृष्टों द्वारा जीवों की भी कारणता है। जिन वस्तुओं या जिन देहियों से जिनको, जितने अंशों में सुख पहुँचता है, उतने अंशों में वे उनके शुभ कर्मों के फल हैं। जितने अंशों में, जिनसे, जिनको दुःख पहुँचता है, उतने अंशों में वे उनके अशुभ कर्मों के फल हैं। एक ही वस्तु या व्यक्ति से बहुतों को सुख और बहुतों को दुःख पहुँचता है और कभी देशकाल-भेद से एक व्यक्ति को भी सुख-दुःख पहुँचता है। इस तरह अनेकों प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों से एक ही वस्तु का निर्माण होता है। अतः प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र सब का सम्बन्ध है, अतएव श्रौत-स्मार्त्त यज्ञों द्वारा देवताओं का, वेदादि शास्त्रों के स्वाध्याय द्वारा ऋषियों का, श्राद्ध, तर्पण, सन्तानोत्पादनादि द्वारा पितरों का तर्पण किया जाता है। बलि-वैश्वदेव, अतिथिसत्कार द्वारा सर्वभूतों को सन्तुष्ट किया जाता है। इस तरह पारस्परिक सद्भावना और सौहार्द उत्पन्न होकर सामाजिक, राष्ट्रिय तथा अन्तर्राष्ट्रिय भावों का संघटन और सामञ्जस्य होता है। सर्व-विश्व का धारक-पोषक होने से वैदिक धर्म में 'धारणाद्धर्मः' यह परिभाषा चरितार्थ होती है। इसका क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसमें लौकिक, पारलौकिक, आर्थिक, नैतिक सभी कर्म आ जाते हैं। सन्ध्यावन्दन, तर्पण, श्राद्ध, बलि-वैश्वदेव, अतिथिसत्कार आदि कर्मों से भावशुद्धि, शक्ति और तेज की वृद्धि होती है। जैसे किसी भी यन्त्र के संचालन में उसके मार्जन, प्रक्षालन आदि की अपेक्षा होती है, क्योंकि वैसा न होने से उसके नष्ट या विकृत हो जाने की सम्भावना होती है, वैसे ही विविध व्यापारों से श्रान्त एवं मलिन देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार का मार्जन एवं प्रक्षालन करके उन्हें दिव्य शक्ति और तेज से सम्पन्न करके लौकिक, पारलौकिक कार्य्यकरणक्षम बना देना, यह भी कार्य इन्हीं कर्मों का है। आत्मयाजी समस्त कर्मों का अनुष्ठान आत्मसंस्कारार्थ ही करता है। शौच, सन्तोष, स्वाध्याय, तप, ईश्वर-प्रणिधान, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन यम-नियमों की बड़ी ही महत्ता और आवश्यकता है।

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।"

इस भगवदुक्ति के अनुसार लौकिक, वैदिक समस्त कर्मों का भगवदर्पणबुद्धि से अनुष्ठान करने पर व्यवहारों और भावों की शुद्धि होती है। जब सभी कर्मों को भगवान् में अर्पण करना है, तब उनकी शुद्धि पर अधिक ध्यान रहेगा। भगवान् को अपवित्र कर्म न समर्पित हों इसलिए सदा शास्त्रपरिशोधित ही कर्मों का अनुष्ठान किया जायगा। लौकिक, पारलौकिक, नैतिक, धार्मिक, आर्थिक सभी कर्मों में धर्म-अधर्म का समावेश रहता है। नीति और धर्म का क्षेत्र पृथक्-पृथक् न होने से धर्म की परिभाषा ही हमारे यहाँ यह है कि वेदादिशास्त्र के अनुकूल देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार की चेष्टाएँ अर्थात् हलचलें धर्म और उसके विपरीत चेष्टाएँ अधर्म हैं—

"चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः",

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाण ते कार्य्याकार्य्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।"

धर्म की रक्षा के लिए यथावसर सिद्ध ज्ञानी और उनके ध्येय, ज्ञेय परमाराध्य परमतत्त्व भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं।

सामान्यरूप से कर्मयोग (प्रवृत्तिमार्ग) और सांख्ययोग (निवृत्तिमार्ग) में ही समस्त वेदों का तात्पर्य है—

"द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तश्च विभावितः ।।"

कर्मयोग में सभी धार्मिक, नैतिक, आर्थिक आदि कर्म आ जाते हैं। इनमें ही पूर्वमीमांसा, कर्मकाण्डपरक वेद, धर्मशास्त्र आदि का उपयोग हो जाता है। सांख्ययोग में कपिल, पातञ्जल, वैयासिक दर्शनों का उपयोग हो जाता है। इतिहास, पुराण, तन्त्र इन सभी का तात्पर्य उक्त दो ही निष्ठाओं में हो जाता है। वर्णधर्म, आश्रमधर्म भी इन दोनों में अन्तर्भूत हो जाते हैं।

विश्वपूजनीय यतिचक्रचूड़ामणि श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के
७५वीं वर्षगाँठ के शुभ अवसर पर

कोटि-कोटि प्रणाम

✻ रामचंदर नरसिंहदास

कमीशन एजेन्ट्स
दुकान नं० १५, पो० बॉ० ५२
श्री गंगानगर (राजस्थान)
फोन : ६९१, १४९१ तार : "अनज्वाला"

✻ लक्ष्मी ट्रेडिंग कम्पनी

१५, धानमण्डी, श्रीगंगानगर
फोन : कार्यालय–१४९१, ६९१ निवास–५३५

✻ श्रीलक्ष्मी इन्टरप्राइजेज

मर्चेण्ट्स एण्ड कमीशन एजेन्ट्स
१५, धानमण्डी, श्री गंगानगर
फोन : कार्यालय–१४९१, ६९१ निवास : १११

शत-शत नमन

लीला फैन्सी क्लाथ स्टोर

(बिड़धीचंद बद्रीप्रसाद)
३१, प्रताप मार्केट, श्रीगंगानगर
फोन : दुकान–१४४
निवास–१७१९

विनोद टेक्सटाइल्स

साड़ी निर्माता
सी १५-ए, जोधपुर (राज०)

शतशत प्रणाम

सेठ मनोहरलाल लीला

७३, 'सी' ब्लाक
श्रीगंगानगर (राज०)

शततः प्रणाम

अग्रवाल साहित्य सदन

कोतवाली रोड
श्रीगंगानगर–३३५००१ (राज०)
फोन : दुकान –४४२
निवास–७५४

कर्मों के लिए प्रकृति, योग्यता, अधिकार के भेद से भिन्नता होनी युक्त ही है। पक्षी के जन्म से ही उड़ने, मछली को जन्म से ही तैरने का सामर्थ्य होता है। मल्लाह और बढ़ई नाव चलाने और काठ की कारीगरी में अधिक कुशल होते हैं। वैश्य व्यापार में, क्षत्रिय युद्ध में, ब्राह्मण वेदरक्षण में अधिक कुशल होते हैं, क्योंकि आचार-विचार एवं इच्छा का प्रभाव रज-वीर्य पर पड़ता है। उनसे उत्पन्न सन्तान में वैसे संस्कार स्वाभाविक होते हैं। उन्हीं के अनुकूल जन्मना वर्णव्यवस्था और तदनुसार ही कर्मों के पार्थक्य हैं। इसी प्रकार स्त्री-पुरुषों के कर्तव्यों में भी पार्थक्य है। पतिशुश्रूषण, गृहव्यवस्था, शिशुसङ्गोपन, वैधव्य-पालन आदि कर्म स्त्रियों के लिए विहित हैं। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास इन चार आश्रमों का भी उक्त निष्ठाओं में ही अन्तर्भाव हो जाता है। वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार कर्म, उपासना, ज्ञान में ही हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग का भी अन्तर्भाव है। मूर्त्तिवाद, अवतारवाद, साकार-वाद, सगुणवाद, निर्गुणवाद ये सभी वाद ब्रह्मवाद में आ जाते हैं। सभी तरह की उपासनाएँ उपासना में आ जाती हैं। शास्त्रानुकल धार्मिक एवं तदविरुद्ध नैतिक, आर्थिक आदि कर्म कर्मकाण्ड में आ जाते हैं। अध्ययन, यजन और दान ये तीनों वर्णों के धर्म हैं। अध्यापन, याजन, प्रतिग्रह यह ब्राह्मण की जीविकाएँ हैं। क्षत्रिय की शौर्य्य, वीर्य्य, युद्ध, प्रजापालनादि एवं वैश्य की कृषि, गोरक्षा, वाणिज्यादि जीविकाएँ हैं और सेवा शूद्र का धर्म है। वैदिकधर्म की यही विशेषता है कि संसार के मनुष्यमात्र अपने-अपने अधिकारानुसार इसका समाश्रयण कर सर्वविध कल्याण को प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् की भक्ति, भगवान् के चरित्र-श्रवण, भगवान् के स्वरूप का ध्यान यह सब ऐसे पवित्र हैं कि इनसे सभी का कल्याण हो सकता है। इतिहास-पुराण-श्रवण द्वारा स्वधर्मज्ञान एवं तदनुष्ठानपूर्वक भगवान् की भक्ति से प्राणिमात्र का कल्याण हो सकता है। इस तरह ईश्वरीय 'वैदिकधर्म' से सम्पूर्ण संसार के प्राणियों का कल्याण हो सकता है।

हमारे पूज्यगुरुदेव विश्ववन्द्य स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज का वेद के सन्दर्भ में यही सुविचारित मन्तव्य हैं। इसी के अनुसरण से समाज-राष्ट्र विश्व का संगठन एवं पोषण होगा।

मन्जुघोषयन्त्रम्

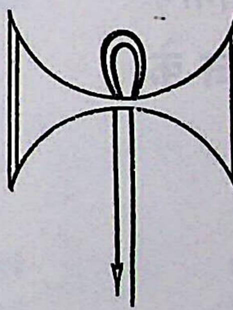

धर्मसम्राट् विश्ववंदनीय

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वें जन्मदिवस पर

सादर प्रणाम

श्री गंगाप्रसाद पुरुषोत्तम लाल

फाजिलका (पंजाब)

सनातन धर्म संरक्षक यतिचक्रचूड़ामणि

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५वीं वर्षगाँठ पर

सहस्र नमन

— ईश्वरदास सारड़ा
— गौरीशंकर सारड़ा

सारड़ा ट्रेडिंग कम्पनी

जस्सूसर गेट के बाहर, बीकानेर (राजस्थान)

फोन : आफिस–४६५७
घर –३१०२ P. P.

श्रीचरण में नमन

● डा० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी ●

(१)

स्वामिचरण का अवतरण साधुमात्र का त्राण
दैवीसम्पति की विजय असुरशक्ति निर्वाण

(२)

दर्शन से धवलित दिशा धवलित भारतवर्ष
स्वामिचरण ने दे दिया जन जन को शुभ हर्ष

(३)

धर्म मात्र की जय सदा हो अधर्म का नाश
प्राणिमात्र सद्भाव में करें सदा विश्वास

(४)

मेरा तेरा क्यों करें विश्वमात्र कल्याण
दुर्लभ सारे मन्त्र ये स्वामी जी के दान

(५)

तपः पूत काया बना परब्रह्म से खेल
स्वामी जी में हो गया जीव ब्रह्म का मेल

(६)

गोस्वामी जी ने दिया असम राम का नाम
स्वामी जी ने वेद का फैलाया शुभ धामः

(७)

कोटि होम कोई हुआ सुना नहीं था पूर्व
स्वामी जी ने कर दिया वह भी दृश्य अपूर्व

(८)

देवों का इस देश से हुआ पुनः सम्बन्ध
पूज्यचरण माध्यम हुए जन जन का निर्बन्ध

(९)

कोटि कोटि जनता जुड़ी वेदों के विद्वान्
स्वाहाकारों के सहित था आहुति प्रदान

(१०)

उन दृश्यों को देखने देव मण्डली नित्य
नभ में एकत्रित हुई यमुना तीर विविक्त

(११)

'नारायण' कहते हुए कोटि कोटि के मध्य
पूज्यचरण निज चरण से विचरण करते सद्य

(१२)

भारत सारा कर दिया पादस्पर्श पुनीत
दिव्य ज्योति को देखता जन जन हुआ विनीत

(१३)

अर्ध रात्रि पर्यन्त था चलता वचन प्रवाह
मन्त्र मुग्ध लाखों बने सदा श्रवण की चाह

(१४)

व्यासदेव वाल्मीकि या शंकरार्य अवतार
रामानुज वल्लभ सभी इनमें हैं साकार

(१५)

जन जन का दुख देख कर विह्वलपूज्य महान्
उठा न कुछ रखते कभी चाहे जाये प्राण

(१६)

फैला जो संसार में यह अधर्म का जाल
इससे सारा दुःख है दूर करें तत्काल

(१७)

धर्म मार्ग का कर दिया इतना शुभ विस्तार
कोई भी छूटा नहीं धर्म मर्म का द्वार

(१८)

कन्या से कश्मीर तक अटक कटक के बीच
यज्ञों के विस्तार से धर्म वल्लरी सींच

(१९)

आज जहाँ भी धर्म है पूज्य चरण ही हेतु
युद्ध अधर्मों से किये खूब बनाये सेतु

(२०)

नित्य नये धर्माचरण प्रवचन लेखन नित्य
पूजा भक्ति समाधि के पूरे अनुभव नित्य

(२१)

राजनीति हो धर्ममय ऐसी ठानी आन
धर्म विरोधी वर्ग के निकल ही गए प्राण

(२२)

शतशत वर्षों बाद यह प्रकट हुआ है सन्त
जिसकी दिव्य सुगन्ध से सुरभित दसों दिगन्त

(२३)

परब्रह्मभगवान् के गुण सारे साकार
श्रद्धा का यह केन्द्र है परज्योति आगार

(२४)

कालिदास वामन हुए छोटे तुलसीदास
उन जैसों का हाल यह अपने को क्या आस

(२५)

अपनी अपनी शक्ति है अपनी अपनी भक्ति
अपनी सीमा में रही सबकी ही अनुरक्ति

(२६)

विद्वानों के झुण्ड हैं आते शिक्षण हेतु
निर्मल ज्ञानामृतपिया स्वयं बन गए सेतु

(२७)

हरि हैं हर हैं और हैं मूर्ति मान आनन्द
अपने करका पात्र है भोजन हैनिश्छन्द

(२८)

ज्ञान और विज्ञान का देखा महासमुद्र
स्वामीजी के रूप में भ्रमण शील निस्तन्द्र

(२९)

ग्रन्थरत्न इतने दिये तोड़ दिये भ्रम जाल
नष्ट हुए गरलाभ वे फैले जो थे व्याल

(३०)

देख लिया था आपने तर्कवाद उद्दण्ड
होकर विचरण कर रहा फैल रहा पाखण्ड

(३१)

निर्मल शास्त्र ज्ञान की धाराओं से शान्त
सारे विप्लव कर दिये स्वयं बैठ एकान्त

(३२)

स्वामीजी को कोटिशः नमन कर रहा देश
विश्वेश्वर रक्षा करें प्राणों के प्राणेश

धर्मसम्राट् अनंतश्री विभूषित श्री स्वामी करपात्री जी महाराज की
७५वीं वर्षगाँठ पर

शत-शत नमन्

श्री जगन्नाथ दीनदयाल
फाजिल्का (पंजाब)

कोटिशः प्रणाम

मेसर्स किशनाराम फत्ताराम
अबोहर (पंजाब)

साष्टांग प्रणाम

—देवकीनन्दन डंग
एवं समस्त परिवार

राधाकिशन विशनदास एण्ड संस
नयागंज, हाथरस (उ० प्र०)

अचार-मुरब्बों के थोक व्यापारी

दण्डवत् प्रणाम

रामलाल भगवानदास
(गल्ला व्यापारी तथा कमीशन एजेण्ट)
नोहर, श्रीगंगा नगर—३५५५२३

फोन : 2 N.M. 104 (Offi.) 51 R.D., 100 R.L. (Resi.)
तार : 'मोदी'
संबंधित फर्म :

- मोदी इण्टरप्राइजेज
  बी-१२, कांकरी नगर, नई दिल्ली (फोन : ५३०५५४)
- मोदी इण्टरप्राइजेज
  २५, चिन्ना थम्बी स्ट्रीट, मद्रास
  (फोन : ३४६७३, तार : 'नोहरवाले')
- हिन्दुस्तान लिड एण्ड पेंसिल कं०
  २२, पिराँ गली, नई दिल्ली
  (फोन : ५०३७४४, ८७३६०)
- श्री महालक्ष्मी दाल मिल्स
  नोहर (राजस्थान)

अनंतश्री विभूषित स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के

७५ वीं वर्षग्रन्थि पर

सहस्र नमन

✻

मेसर्स जमुना सिंह एण्ड संस

जमुना नगर, जैना मोड़

जि० गिरीडीह (बिहार)

With the Best Compliments from :

Bhatkawa Tea Company, Limited

Manufacturers of Orthodox,

C. T. C. and Quality Teas

"McLeod House"
3, Netaji Subhas Road,
CALCUTTA—700 001

Telephone : 23-9161 23—6938
Telex : 021-2384 BREW CALCUTTA

With Best Compliments From :

WAVERLEY INVESTMENTS Ltd.

McLeod House
3, Netaji Subhas Road
CALCUTTA-700 001.

Phone : 23-9161

FAMOUS THROUGHOUT THE WORLD

FOR DIGNITY STYLE AND FASHION

TIGER BRAND

JUTE CARPETS

Wilton
Wilton
Jacquard

Woollen

Dobby Special
Dobby
School Mattings

Attractive Patterns :

FANCIFUL DESIGNS

CHARMING COLOURS

Also Varieties of :

Jute Webbing Hessians and Sackings

Manufactured by :

Shree Hanuman Jute Mills Pvt. Ltd.,

36, Chowringhee Road,
CALCUTTA-700 016.

Gram : WEBMATS

Phone : 24-7936.
24-0854/55

विश्ववन्द्य धर्मसम्राट् अनन्त श्री विभूषित परम पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज
की ७५ वीं पुण्य वर्षगाँठ पर भगवान् आशुतोष सदाशिव
से उनके दीर्घायु के लिए प्रार्थना करते हैं ।

ऋषि एण्ड कम्पनी (कानपुर)

उत्तरप्रदेश के लिए 'स्काइलार्क' अल्ट्रामेरीन ब्लू के अधिकृत विक्रेता

७६।१७४, सब्जी मण्डी, कानपुर--२०८००१

टेलि : ५२७६३]

[ग्राम : 'SKYLARK'

यतिचक्रचूड़ामणि

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

श्रीचरणों में

शतशत प्रणाम

देवीदयाल पन्नालाल

७६।५२५, कुली बाजार

कानपुर

फोन : कार्यालय : ६८६०७
४३०५५
निवास : ४२१९५

विश्ववंदनीय स्वामी

श्रीकरपात्रीजी महाराज के

चरणकमलों में शतशत प्रणाम

सुधीरकुमार शाह

बिहारीलाल

४९।१९, नौधड़ा वाली गली

कानपुर

फोन : दुकान ६५१६४

आवास : ६६८२७
६६८४२

धर्मसम्राट् स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के

७५वें जन्म दिवस के शुभ अवसर पर

सद्भक्तिपूर्ण नमन

एच० एम० टी०, टाइम स्टार एवं पुरेवाल हाथ की घड़ियों

का उचित मूल्य पर प्राप्तिस्थान

जोशी एण्ड सन्

घड़ी विक्रेता

77, एस्प्लेन्डे रोड, चाँदनी चौक,

दिल्ली—110 006

फोन—260342, 275327 निवास—254839

यतिचक्रचूडामणि श्रीस्वामी करपात्रीजी के

चरणों में शतशत नमन

✤ एल पाइरिन

हर प्रकार के दर्दनाशक द्रव्यों से निर्मित टिकिया।

✤ बेल सल्फ़

आधुनिक रसायनों के मिश्रण से निर्मित आँव-दस्त तथा हर प्रकार के दस्तों पर तत्काल प्रभावी।

विटामिन कंपाउण्ड, टिंचर, स्प्रिट तथा औषधियों के निर्माता-

भारत फार्मा एण्ड केमिकल्स

ए ५-६, औद्योगिक आस्थान, हाथरस

[फोन : कार्यालय–५९८, निवास–६३९]

शतशत नमन

श्रीगुरुचरणों में

आपके परिवार के लिए

गुडमैन्स

गैस

टोन

कम्पाउन्ड

गैस
टोन
कम्पाउन्ड

भूख बढ़ाये

पाचन शक्ति प्रबल

बनाये और

खून बढ़ाये

पेट के गैस विकारों

का दुश्मन

निर्माता:

डा० गंगा प्रसाद गुप्ता एण्ड संस

मोती बाजार, हाथरस (यू. पी.)

BLOCK CENTER H.T.S

धर्मसम्राट् श्री करपात्री जी महाराज के

शतायु की ईश्वर से प्रार्थना

फोन : ६६३१४ कार्यालय ● ६३८२१ निवास

बनारसी साड़ियों, हैण्डलूम साउथ सिल्क साड़ियों

तथा सिल्क प्रिन्टेड साड़ियों

के

प्रमुख निर्माता एवं अढ़तिया

एस० रतनचन्द किशनचन्द

कुंजगली, वाराणसी

— सहयोगी प्रतिष्ठान —

आ० के० ट्रेडर्स

कुंजगली, वाराणसी

तूलिका

कुंजगली, वाराणसी

परम पूज्य गुरुदेव स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के
७५ वें जन्म दिवस पर हमारा और हमारे परिवार को
ओर से शत-शत नमन

उनकी दीर्घायु के लिए ईश्वर से प्रार्थना

•

पन्नालाल वैश्य

दुकान :
श्री माताबदल पंसारी
११८, अमीनाबाद, लखनऊ

७५वें जन्म दिवस पर धर्म-प्राण
पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के
श्री चरणों में शत-शत प्रणाम

•

पौष्टिकं मधुरं स्वादु
मिष्टान्नं निर्मितं प्रियम्

राम आसरे

स्थापित--१८०५ ई० फोन--८२३७७

वानवालीगली, चौक, लखनऊ

पूज्य गुरुदेव के
श्री चरणों में सादर नमन

•

मेसर्स
चौथमल केजरीवाल

बोकारो स्टील सिटी, पो० चास
धनबाद (बिहार)

परम पूज्य धर्मसम्राट्
श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के
श्री चरणों में कोटिशः प्रणाम
परमपिता परमेश्वर से दीर्घायु की कामना के साथ—

लक्ष्मीनारायण हार्डवेयर स्टोर्स

बोकारो स्टील सिटी, पो० चास
धनबाद (बिहार)

फोन : ३१० निवास : २१६

शंकरावतार, धर्मप्राण
भारत हृदय सम्राट्
स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज के
७५ वें वर्धापन दिवस पर
श्री चरणों में सहस्र नमन

फकीरचन्द हजारीलाल
(मर्चेन्ट्स एण्ड कमीशन एजेंट्स)
६५, मीरगंज, इलाहाबाद – २११ ००३
फोन : गद्दी – ५४६९८, ५३६९८, निवास : ५३७७१

संबंधित फर्म :

- फकीरचन्द हजारीलाल, महाबीरगज, अलीगढ़
- हजारीलाल बद्रीप्रसाद, महाबीरगंज, अलीगढ़
- यू० पी० बिहार मिनरल सप्लाई एजेंसी, महाबीरगंज, अलीगढ़

फोन : गद्दी – ३४८५, निवास : ४११६, तार : "दास"

धर्मसम्राट् परमपूज्य स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज
के
श्री चरणों में शतशत नमन

"गदा छाप तम्बाकू" तम्बाकू जगत में अनुपम

निर्माता : **यतीन्द्रनाथ शुक्ल कम्पनी**
९६।१२, परेड, कानपुर
फोन : दुकान – ६०६४२, आफिस – ४६५२१, निवास – ४०११४

सहयोगी प्रतिष्ठान : **हजारीलाल बाबूलाल** (तम्बाकू विक्रेता)
हटिया, कानपुर
फोन : ६८०५१

* **कैलाशनाथ केदारनाथ एण्ड कम्पनी** (तम्बाकू विक्रेता)
अग्रवाल मार्केट, जूही, कानपुर
फोन : ६९५८८

परम श्रद्धेय सनातनधर्म संरक्षक श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५ वें जन्मदिवस पर सतत: नमन

फोटो स्टेट कापी

(जेरॉक्स मशीन द्वारा)

फोटो स्टेट मशीन व संबंधित सामान

कॉटन ऊल फिक्सर, प्लेट क्लीनर, फोटो प्लेट व बल्ब के विक्रेता

शर्मा इलेक्ट्रिकल्स म्यूजियम

आंध्रा बैंक बिल्डिंग गौदौलिया, वाराणसी

फोन : ६६३०९

डॉ० बी० के० अग्रवाल

एस० एन० चिल्ड्रेन हॉस्पिटल

चर्चलेन, इलाहाबाद

फोन :
कार्यालय : ५३०६४
घर : ५३६००

भारतीय संस्कृतति के संरक्षक को

शतशत नमन

प्रकाशन केन्द्र

सीतापुर रोड, लखनऊ—२२६००७

हमारे प्रमुख प्रकाशन :—

(1) मुद्रा राक्षसम्—महाकवि विशाखदत्त, टीकाकार—धर्मेन्द्र नाथ शास्त्री और डा० राजकिशोर सिंह
(2) उत्तराम चरितम्—महाकवि भवभूति, टीकाकार—डॉ० राजकिशोर झा
(3) कादम्बरी कथा मुखम्—वाणभट्ट, टीकाकार डा० राजकिशोर सिंह
(4) आचार्य मम्पट और काव्य प्रकाश—लेखक डॉ० राजकिशोर सिंह
(5) अभिज्ञान शाकुन्तलम्—महाकवि कालिदास, टीकाकार—तारिणीश झा
(6) लघु सिद्धान्त कौमुदी
(7) रत्नावली नाटिका—महाकवि हर्षदेव, टीकाकार डॉ० रमेश कुमार झा
(8) कठोपनिषद्—टीकाकार जगमोहन विकसित

धर्मचेता मनीषी

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के

५वें जन्मदिवस पर

सहस्र प्रणाम

अशोक सहकारी गृह निर्माण समिति

सारंग, वाराणसी

With Best Compliments :

BILASPUR SPINNING MILLS
&
INDUSTRIES LTD.

12, Government Place East
CALCUTTA - 700 069

Manufacturers of Best quality Synthetic and Cotton Yarn

Gram : 'BILAS MILL' CALCUTTA
Phone : 22-9336 (4 - Lines)
Telex : '21-2074 NPNY-IN'

Mills at :

BILASPUR (M. P.)

Gram : **'BILASMILL' Bilaspur**

Phone : **Bilaspur 4 3 9**

धर्मसम्राट्

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

की

७५ वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में

शुभकामनाएँ

मुकुलबाड़ी कनोई टी इस्टेट प्रा० लि०

रजिस्टर्ड आफिस

13/2, बालीगंज पार्क रोड, कलकत्ता-19

प्रणामाञ्जलि

श्री स्वामी करपात्री जी महाराज

के

७५वें जन्म दिवस पर शततः नमन

रामेश्वर प्रसाद मुरारका
महालक्ष्मी मार्केट
चाँदनी चौक, दिल्ली

महन्त देशराज जी
मंदिर गोसाईं राम लाल जी
बाजार खूबम्बेवाला, अमृतसर

अमरजीत मलहोत्रा
B-87, रवीन्द्रपुरी
वाराणसी

देवी साइकिल स्टोर्स
साइकिल एवं साइकिल पार्टस तथा घड़ियों के
प्रमुख डीलर
लहुराबीर-वाराणसी
फोन : कार्यालय-६३६१० निवास : ६२८१४

आर० जी० पेपर एण्ड स्ट्रॉ बोर्ड मिल्स
मैन्यूफैक्चरर्स ग्राफ् ग्राटोमेटिक सनड्राइंग बोर्ड प्लान्ट्स
हाइ क्वालिटी मिल बोर्ड एण्ड स्ट्रॉ बोर्ड
रानी मिल्स, मुर्सान गेट, हाथरस (उ. प्र.)
फोन : आफिस ३९, निवास-१५१, ३१, ग्राम-HIRAN

राम कुमार तिवारी
अखिल भारतीय गोरक्षा महाभियान समिति के
प्रमुख सदस्य
२१७२, यमुना बाजार
दिल्ली-६
फोन नं० २२४७८१

माता मीरा बाई
सतसंग भवन रोड नं० ७
सरदारपुरा-जोधपुर

रमाधार ब्रह्मचारी
मंदिर श्री राम हनुमान बाटिका
रामलीला मैदान आशफ अली रोड
नयी दिल्ली

कुन्दन लाल बजाज
अबोहर-पंजाब

गिरधारी लाल बुलाकीदास
३५, धानमंडी -श्री गंगानगर (राज०)

७५ वें शुभ जन्म दिवस पर

परमपूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के

श्री चरणों में सादर नमन

●

जनरल मार्केटिंग एण्ड मैनुफैक्चरिंग कं० लि०

●

डिस्ट्रीब्यूटर्स आफ् हेवी अर्थमूविंग, माइनिंग, कन्स्ट्रक्शन
एण्ड एलाइड इक्वीप्मेन्ट

●

समस्त भारत में शाखाएँ फैक्ट्रियाँ एवं एजेन्सियाँ

देश की मिट्टी
देश की हवा
देश का पानी
देश की दवा

बैद्यनाथ
दवाएँ

देश की दवाएँ

बिना टिकट यात्रा करना बहुत बड़ी सामाजिक बुराई है इससे राष्ट्रीय आय में बहुत भारी हानि होती है।
बिना टिकट यात्री वास्तविक यात्री के सुख को बड़ी मात्रा में कम करता है। वह वास्तविक यात्रियों के उचित अधिकारों को छीनता है और भीड़ को बढ़ाता है।
बिना टिकट यात्रा करना लाचारी नहीं बल्कि लोगों की आदत बन गई है। यह एक फैलने वाली गम्भीर सामाजिक बुराई है।
यह सभ्य नागरिकों पर दूषित प्रभाव डालती है।

अपने अधिकारों और सुखों की रक्षा करें। बिना टिकट यात्रियों का सामना करें और अपराधियों को पकड़ने में हमारी सहायता करें।

याद रखें कि बिना टिकट यात्रा करना भारतीय रेल अधिनियम की धारा 112 के अधीन गम्भीर अपराध है।

अच्छे नागरिक बनें—राष्ट्रीय आय की बचत करें—बिना टिकट कभी भी यात्रा न करें।

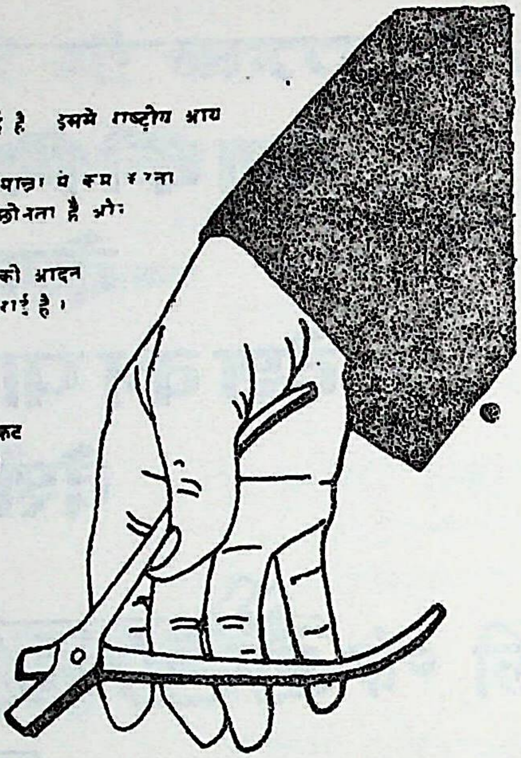

बिना टिकट यात्रा
एक सामाजिक बुराई है

गाड़ी में
चढ़ने से
पहले
अपना
टिकट खरीदें

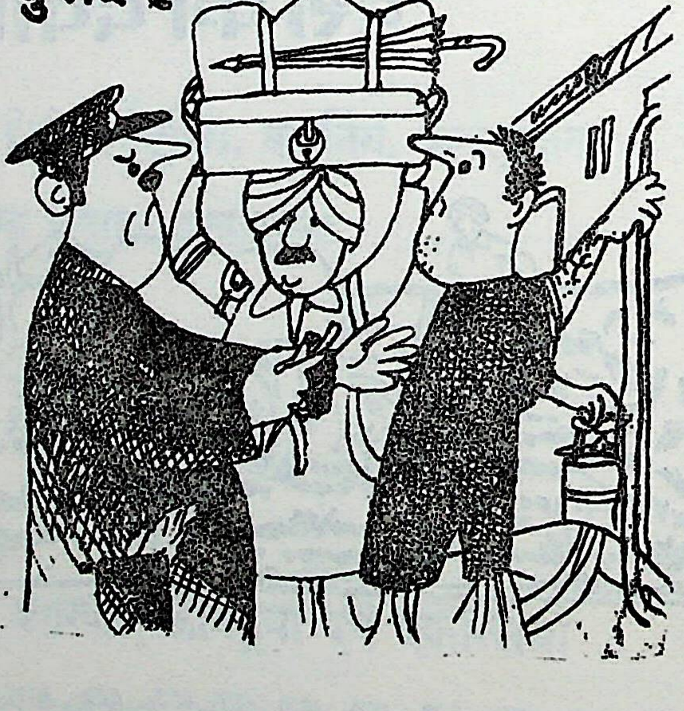

उत्तर रेलवे
मुख्य जन सम्पर्क अधिकारी द्वारा प्रचारित।

डाक घर
सावधि जमा में

ब्याज की अब अधिक दरें
यह लोकप्रिय बचत योजना आपको
अब अधिक आकर्षित करेगी

डाक घर सावधि जमा (डा० घ० सा० ज० के नाम से ज्ञात) में अब पहले से अधिक रिटर्न।

2 मार्च, 1981 से लागू संशोधित दरों पर नजर डालें और देखें कि क्या वे अतुलनीय नहीं?

1 वर्षीय– 8.5%
2 वर्षीय– 9.5%
3 वर्षीय–10.5%

ब्याज छमाही आधार पर जोड़कर वार्षिक रूप से देय।

सर्वोत्तम योजना में अपना धन लगाएं।

अधिक जानकारी के लिए कृपया सम्पर्क करें:

- ● कोई भी डाकघर
- ● अधिकृत एजेंट
- ● जिला बचत अधिकारी द्वारा कलैक्टोरेट
- ● लघु बचत निदेशालय (राज्य सरकार)
- ● रा० ब० सं० का क्षेत्रीय कार्यालय (भारत सरकार)

या लिखें:–

राष्ट्रीय बचत संगठन
12, सेमिनेरी हिल्स, नागपुर-440006

डीएवीपी 81/4

भारतीय संस्कृति के उन्नायक
धर्म सम्राट्
पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज की
७५ वीं वर्षगाँठ पर
हमारी शुभकामनाएँ

—राजकृष्ण दास
उपाध्यक्ष—उ० प्र० उद्योग व्यापार प्रतिनिधि मंडल
संरक्षक—काशी व्यापार प्रतिनिधि मंडल

• **एच० के० दास अग्रवाल एजेन्सीज**
राजादरवाजा, वाराणसी
फोन ६६२१५; ५३२५७

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज की
७५ वीं जन्म तिथि पर
हमारी शुभकामनाएँ

• **कन्हैयालाल मुकुन्दलाल सर्राफ**
राजादरवाजा, वाराणसी

प्रथम बार

वाराणसी (उ० प्र०) में

स्वाभाविक रंगीन फोटोग्राफी

स्टूडियो एवं आउटडोर

हर प्रकार के

रंगीन इन्लार्जमेण्ट्स १५ दिन में प्राप्त करें

ब्राइट स्टूडियो

कलर प्रोसेसिंग डिवीजन

गोदौलिया, वाराणसी

फोन : 64345

यज्ञयुग प्रवर्तक, सनातन धर्म स्तम्भ

श्री करपात्रीजी महाराज के श्रीचरणों में श्रद्धावनत

•

श्री नवसंवत्सर मानस समिति

कल्याणी देवी, इलाहाबाद

(फोन : ५२१११)

•

प्रतिवर्ष चैत्र सुदी प्रतिपदा से चैत्र सुदी नवमी तक (नवरात्रपर्यंत) मानस सम्मेलन एवं विशेष धार्मिक आयोजन किया जाता है। आयोजन में सम्मिलत होकर पुण्य के भागी बनें।

When in coal town of Dhanbad

stay at

HOTEL DHANBAD

M/s. Goodwill Properties

Katras Road

DHANBAD.

With Best Compliments :

MADHURI DAS NARAIN DAS

Distributors, Merchants & Commission Agents

157, Meergunj, ALLAHABAD

Tele : Office – 50693, 50805

Resi. – 51659, 50693

Gram : CHINI

Distributors of :

- Ganesh Flour Mils Co· Ltd. Kanpur
- Indian Explosives Ltd., Kanpur
- Hindustan Steel Ltd. Calcutta.
- Delhi Cloth & Gen. Mills. Co. Ltd. Delhi.

Sister Concern :

Narain Das Sheo Prasad, ALLAHABAD

वाराणसी विकास प्राधिकरण, वाराणसी।

सन्मार्ग वेद विशेषांक की सफलता की शुभकामनाओं सहित नागरिकों का हार्दिक अभिनन्दन करता है ।

नागरिकों के सूचनार्थ

१—आवासीय भूखण्डों को क्रय करने के पूर्व यह सुनिश्चित करलें कि भूखण्ड किसी अनधिकृत कालोनी में तो नहीं है। प्रायः कुछ व्यक्ति एक बड़े भूखण्ड का अनधिकृत रूप से विभाजन कर विक्रय कर देते हैं और उसमें निर्धारित खुले भाग एवं सड़कों का प्राविधान नहीं करते यह आवश्यक है कि भूखण्डों को नगर योजना और विकास अधिनियम के प्राविधानों के अन्तर्गत वाराणसी विकास प्राधिकरण, वाराणसी से विन्यास तथा सबडिवीजन स्वीकृत करा लें। यदि कोई व्यक्ति बिना विन्यास अथवा सबडिवीजन स्वीकार कराये कोई भूखण्ड वेचता है अथवा खरीदता है तो भूखण्ड का मानचित्र स्वीकार नहीं हो पाएगा ।

२—वाराणसी विकास प्राधिकरण, वाराणसी से बिना पूर्व स्वीकृति के किसी भी प्रकार का निर्माण कार्य न करायें। यह दण्डनीय अपराध है। अनधिकृत भवनों को गिराया जा सकता है जिससे आर्थिक क्षति होगी।

३—भूमि खरीदने से पूर्व यह अवश्य देख लें कि उक्त भूमि वाराणसी महायोजना या अन्य योजनाओं से प्रभावित तो नहीं है तथा अवाप्ति में तो नहीं है ताकि नक्शा स्वीकृति के समय अनावश्यक कठिनाई न हो यह जानकारी प्राधिकरण, कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।

४—जिन लोगों ने प्राधिकरण से मकान हेतु ऋण लिया है या हायर परचेज पर मकान लिया है या किराये पर दुकाने/कार्यालय/भवन लिया है या उनके विरुद्ध अन्य किसी प्रकार का बकाया है, उसका नियमित भुगतान करें अन्यथा जिलाधिकारी के माध्यम से वसूली कराने पर दस प्रतिशत और देना पड़ेगा।

(देवीदयाल)
उपाध्यक्ष

(जे० एन० द्विवेदी)
सचिव

परमपूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज
के
७५ वें जन्म-दिन पर
श्री चरणों में कोटिशः प्रणाम

श्री अन्नपूर्णा मिल्स

विद्यापीठ रोड, वाराणसी

फोन : ५४२१८ आफिस
६४४७३ } आवास
६४३७४ }

पूज्य श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज के

७५ वीं वर्षगाँठ पर श्रीचरणों में नित्यनमन

INDIAN OPTICAL Co. (Regd.)

111, MODEL BASTI,
NEW DELHI—110 005

Phones : 520775 & 513281 *Cables* : 'OPTIKINDIA' New Delhi

*** सभी प्रकार के चश्मों के थोक व्यापारी ***

सनातन धर्म के अवतार

पूज्यपाद स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

के

७५ वें वर्धापन दिवस पर कोटिशः प्रणाम

—पुरुषोत्तम लाल शारदा

फर्म :—घेरूलाल बालचन्द शारदा

अबोहर, पंजाब

पूज्यस्वामी श्री करपात्रीजी के ग्रन्थ

वेदार्थ पारिजात	रु० १८०)
रामायण मीमांसा	,, ५०)
श्रीविद्यारत्नाकर	,, ३०)
मार्क्सवाद और रामराज्य	,, २५)
विचार पियूष	,, २२)
श्रीभगवत्तत्व	,, २०)
भक्ति-सुधा	,, ४५)
चातुर्वण्य संस्कृति विमर्श प्र० भाग	,, ५)
,, ,, ,, द्वि० भाग	,, २०)
संकीर्तन मीमांसा एवं वर्णाश्रमधर्म	,, २)५०
श्रीविद्यावरिवश्या (२ भाग)	,, ८)
वेद का स्वरूप और प्रामाण्य	,, ७)५०
अहमर्थ और परमार्थसार	६)

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिन्दू धर्म	रु० ५)
भक्ति रसार्णव	,, ५)
वेदस्वरूप विमर्श	,, ७)
पूंजीवाद, समाजवाद और रामराज्य	,, ५)
संघर्ष और शान्ति	,, ४)
क्या संभोग से समाधि	,, २)२५
राहुलजी की भ्रान्ति	,, ४)
वेद प्रामाण्य मीमांसा	,, १)
तिथ्यादि निर्णय कुम्भ निर्णयश्च	,, १)
धर्म और राजनीति	,, १)
संक्षिप्त जीवनी	,, १)
दसनामापराध	,, १)
ईश्वर साध्य एवं साधन	,, १)

प्रकाशक

श्री स्वामी वेदान्तीजी, धर्म संघ, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

सन्मार्ग के संस्थापक

पूज्य गुरुदेव अनन्तश्री विभूषित

स्वामी करपात्रीजी महाराज

के श्रीचरणों में शत-शत नमन

—सन्मार्ग परिवार

सम्पादकीय कार्यालय :
दैनिक 'सन्मार्ग'
पो. बा. १२८, गोलघर
वाराणसी—२२१००१,
फोन : ६३५२०

व्यवस्था कार्यालय :
दैनिक 'सन्मार्ग'
तुलसी मन्दिर, तुलसी घाट
वाराणसी :
फोन ६३४५८

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित—

Thums Up

The refreshing Cola

Thums Up
Thums Up
Thums Up

प्रस्तुतकर्त्ता—वाराणसी बाटलिंग कम्पनी, पहड़िया, वाराणसी फोन : ८२६९

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित—

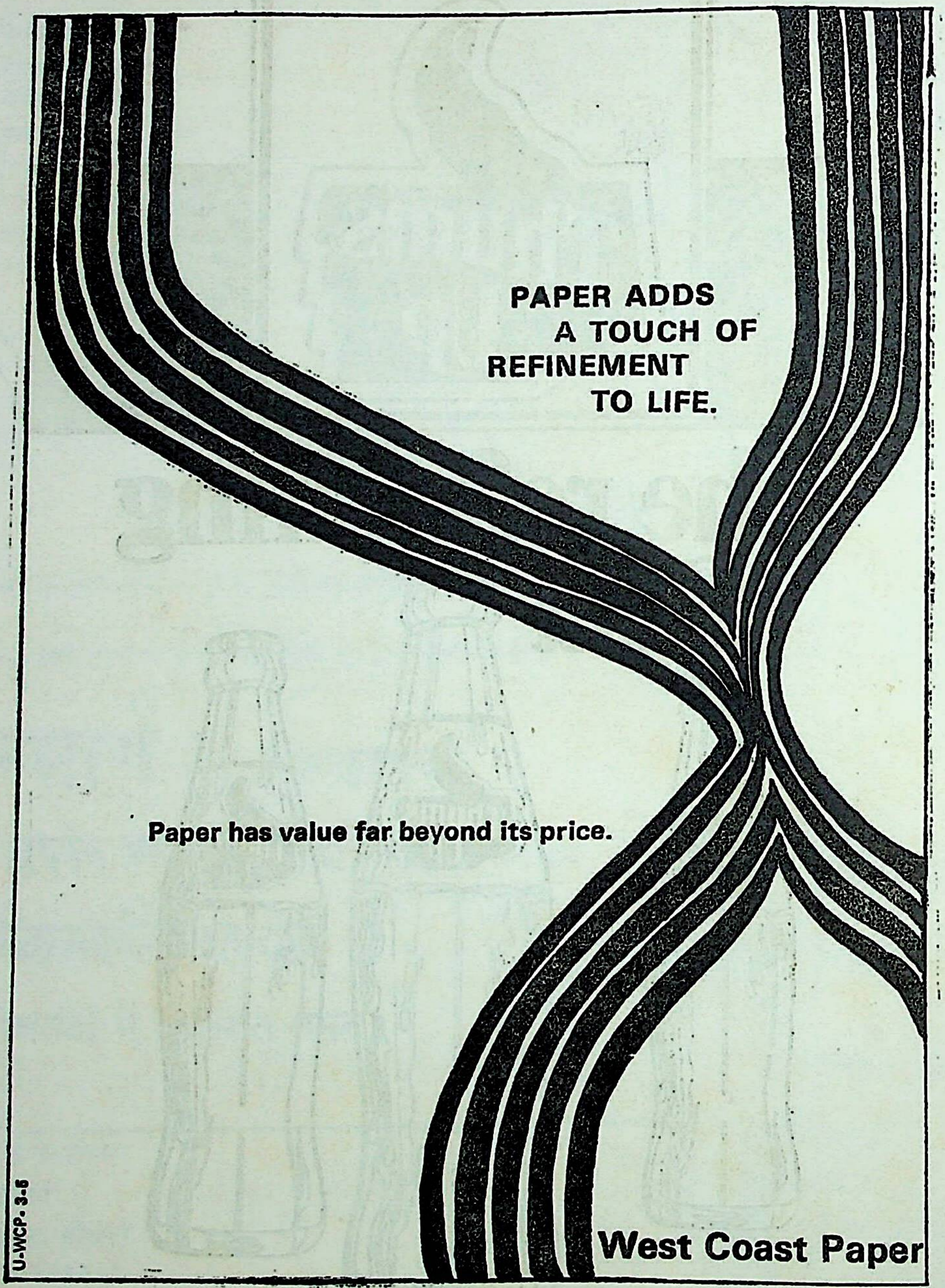
PAPER ADDS
A TOUCH OF
REFINEMENT
TO LIFE.
Paper has value far beyond its price.
U-WCP-3-5
West Coast Paper

3349

Over three decades back a ray of hope dawned on our enterprising spirit. Today, it has blossomed into brilliant sunshine.
From a modest beginning, we have come a long way. Today we manufacture a wide range of chemicals used in such industries as •Rubber •Paper •Textiles •Chemicals •Paints •Printing ink •Soap •Perfumery etc.

Known like the Arunodaya

The trust and co-operation of our valued customers have helped us achieve our current reputation. Thanks to you, we have grown with branches all over India. As we grow further, we promise to serve you even better, with chemicals for the future. Just as the sun never fails to rise day after day, so sure and consistent shall be the quality of our products and service. Forever.
No wonder, we are Known like the Aronodaya

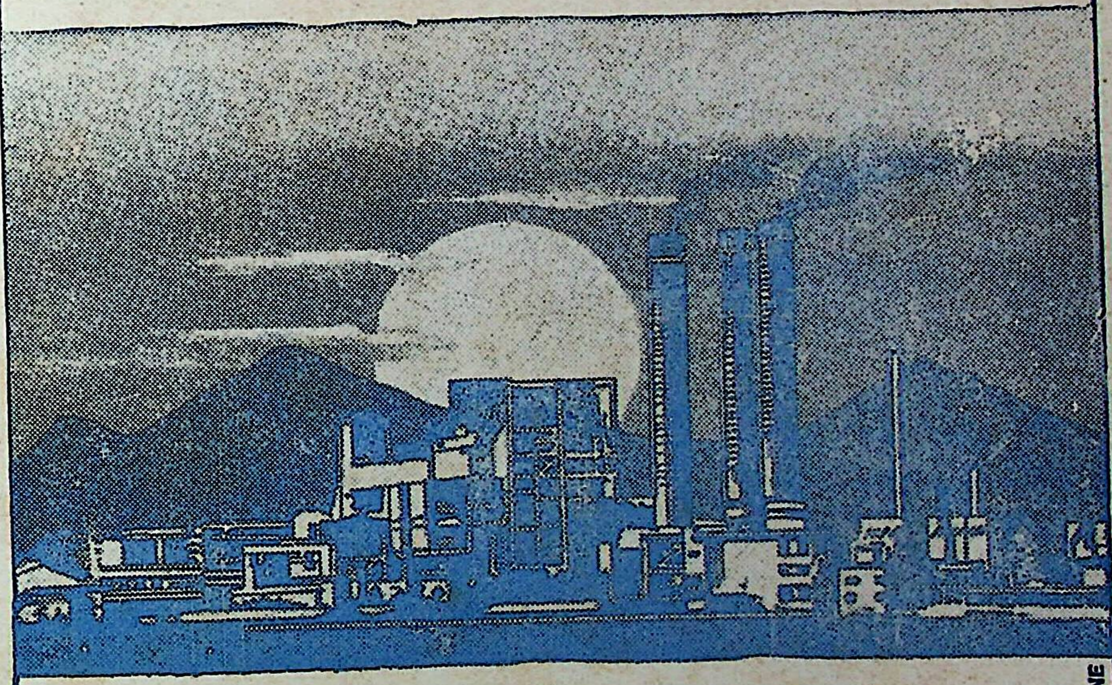

RPC/ONE+ONE

PRABHAT
GENERAL AGENCIES
Where progress shines with every new sun-rise.

195 KALBADEVI ROAD BOMBAY 400002
TELEX: PGA-IN 11-4161 GRAM: EXPANSION
TEL: OFF: 310359 (3 LINES) RES: 298407 · 291708

Our Products:
- ROSIN, TURPENTINE, PINE OIL
- SYNTHETIC RESINS, ALKYDS
- DIPENTINE, TERPENE CHEMICALS
- COUMARONE INDENE TYPE RESINS
- ROSIN DERIVATIVES, PINE TAR ETC.

FACTORY : HOSHIARPUR BRANCHES NEW DELHI CALCUTTA MADRAS JAMMU TAWI HALD'VANI

SANMARG VED VISHESHANK—Rs. 8/- AUGUST 1981
Regd. No. L-/RN/139

With Best Compliments from :

UTKAL AUTOMOBILES LTD.

(Body Building Divn.)
Post. Box No. 2
Adit判pur Kandra Road
Adityapur, JAMSHEDPUR-831013.

Phone : 87241 (4 lines)
Gram : "PARIKHS"
Telex : 0626-292

अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ की ओर से महंत वीरभद्र मिश्र द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित
मुद्रक : भार्गव भूषण प्रेस, त्रिलोचन, वाराणसी–२२१ ००१ । (१२/६-'८१)